क्या महाभारत-युद्ध रोका नहीं जा सकता था ?

(महाविनाश की अनदेखी करने वाले कौन ?)

सत्यानन्द-वेदवागीश

ओ३म्

क्या महाभारत-युद्ध रोका नहीं जा सकता था?

(लाखों वीरों की होनेवाली अकाल मृत्यु, लाखों निरपराध पशुओं के सम्भाव्य वध, लाखों ललनाओं के भविष्यत् वैधव्य और लाखों बच्चों की सम्भाव्य अनाथता की अनदेखी करने वाले कौन?)

लेखक-प्रकाशक : सत्यानन्द-वेदवागीश

प्रथम आवृत्तिः

प्र.ज्ये. अमावास्या वि.सं. २०६४ वि.

मूल्यम् ७६.००

प्राप्तिस्थानानि–

१. सत्यानन्द-वेदवागीशः

(i) ए-१३१, सेक्टर-५५, नोएडा - २०१३०१ (उ.प्र.)

(ii) C/o वेकेशंस् अन्लिमिटेड्,
४०७/८, क्रिस्टल माल, जयसिंह हाईवे,
बनीपार्क, जयपुर – ३०२०१८ (राज.)

२. वेदधर्मप्रचारसमितिः,
एन.एन. सेंट सी. मा. विद्यालय,
वेदमन्दिरम्, मुक्ताप्रसाद नगर, बीकानेर-३३४००४

३. आर्षशोधसंस्थानम् (गुरुकुलम्)
डाक.-अलियाबाद, मं. शामीरपेट,
जिला-रंगारेड्डी (आन्ध्र प्रदेश)-५०००७८

४. आर्यसमाज, सैजपुर बोघा,
अहमदाबाद (गुजरात) ३८२३४५

५. विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द,
४४०८, नई सड़क, दिल्ली - ११०००६

लेज़र टाईप सैटिंग :
फ्रेण्ड्स कम्प्यूटर्स
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर (राज.)
फोन - ०१४१-२५६२२८८

मुद्रणः इण्डियन मैप सर्विस, जोधपुर-342003 फोन-0291-2612874

ओ३म्

अनुकरणीय आदर्श 'आर्यजी'-परिवार

श्री स्व. लाला वंघूरामजी (लुंड) चौधरी जब अपने पुत्र श्री लाला किशनलालजी की जीवनसंगिनी के रूप में श्रीमती देवीबाईजी को ब्याह कर लाये, तो वास्तव में ही परिवार में देवत्व का पदार्पण हो गया। सबसे पहले कान्ता के रूप में एक दिव्य आत्मा ने अवतार लिया। फिर सतीश और सतपाल अवतरित हुए। इनके पीछे सुनीति ने घर की शोभा बढ़ाई। चारों बहिन-भाईयों में अपने माता-पिता के उत्तम संस्कारों का संक्रमण हुआ। परिश्रम, स्वावलंबन, पारस्परिक प्रेम, निःस्वार्थता, विनम्रता, शुचिता, दृढ़ता, प्रगतिशीलता और परोपकार आदि सद्गुणों का इन्होंने खूब विकास किया। अतः इनके नाम के साथ 'आर्य' विशेषण लग गया। इनके पुत्र-पुत्रियों और पौत्र-पौत्रियों में भी इन गुणों का समुदय हुआ है।

बड़ी बहिन श्रीमती कान्ता जी आर्या करनाल के एक उदात्त परिवार में ब्याही गई हैं और अपने परिवार में सानन्द स्वस्थ हैं। श्री सतीश जी आर्य B.A.,D. Farma अपने पुश्तैनी कृषि फार्म की देखभाल करते हैं। किन्तु ये बन्धु अपना पर्याप्त समय वैदिक धर्म-प्रचार एवं देशोन्नति के कार्य में लगाते हैं। २८ वर्षों से धर्मप्रचार, यज्ञ-आयोजन और परोपकार में निरत 'वैदिक यज्ञसमिति' (पंजीकृत) के आप सूत्रधार हैं। सोनीपत-आर्यजनों के भीष्म पितामह श्री विश्वनाथ जी कोहली के निर्देशन में तथा अन्य आर्य बन्धुओं एवं माताओं की प्रीति-छाया में श्री सतीश जी आर्य अपनी पूरी टीम के साथ संलग्न रहते हैं। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती इन्दु जी आर्या अपने पूरे परिवार के संचालन के साथ ही सामाजिक गतिविधियों में अपने पतिदेव को सहयोग करती हैं। श्री सतपाल जी आर्य अपने बड़े भाई के प्रति उतने ही प्रेमपगे हैं, जितने श्री भरत श्रीराम के प्रति थे। ये दोनों भाई दो शरीर एक आत्मा के समान हैं। दोनों भाईयों का पूरा परिवार एक साथ घुल-मिलकर रहता है। श्री सतपालजी एक व्यवसाय संभालते हैं। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती कान्ताजी आर्या अपनी जेठानी सौ. इन्दुजी के साथ घर-परिवार संभालती हैं। सौ. इन्दुजी की सरसता और आह्लाद के साथ सौ. कान्ताजी की कमनीयता और

प्रसन्नता के सम्मिश्रण के कारण दोनों जेठानी-देवरानी में अटूट प्रेम, सहृदयता और सांमनस्य है। उसका परिणाम यह था, कि दोनों के ५-६ बच्चे जब छोटे थे, तो उनको यह पता नहीं था, कि कौन हममें से हमारा सगा भाई या बहिन है। उनसे कोई पूछता, कि 'तुम लोग कितने भाई-बहिन हो? तो उत्तर होता था —'हम छः भाई-बहिन हैं'। श्री सतीशजी की छोटी बहिन श्रीमती सुनीति जी आदर्शनगर, दिल्ली में अपने परिवार के साथ सुखी हैं।

श्री सतीश जी आर्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री सुधीर आर्य दिल्ली में अपना व्यवसाय करते हैं। सुधीर आर्य की धर्मपत्नी श्रीमती पूनम आर्या M.A., N.T.T. वास्तव में पूर्णिमा ही हैं। ये अपनी पुत्री आयुष्मती सोम्या आर्या और पुत्र आयुष्मान् संयम आर्य के साथ घर के वातावरण को खुशियों से परिपूर्ण कर रही हैं। मध्यम पुत्र श्री सुशील आर्य B.E.;M.B.A. गुड़गांव में 'हीरो होण्डा' प्रतिष्ठान में इंजीनियर हैं। कनिष्ठ पुत्र श्री सुनील आर्य सोनीपत में ही स्व-व्यवसाय करते हैं।

श्री सतपाल जी आर्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री सन्दीप आर्य दिल्ली में व्यवसायरत हैं। इनकी सद्योविवाहिता धर्मपत्नी श्रीमती टीना आर्या नूतन आर्य-परिवार में, दूध में चीनी के समान एकाकार हो रही हैं। सतपालजी की पुत्री श्रीमती संगीता आर्या पानीपत में ब्याही गई है और परिवार-सहित सुप्रसन्न है। कनिष्ठ पुत्र श्री सुमित आर्य कुरुक्षेत्र-स्थित गुरुकुल में संस्कार एवं सुशिक्षा के सञ्चय में संलग्न है।

इस 'आर्यजी' परिवार के समस्त सदस्यों में विनम्रता, बड़ों का सम्मान, कर्त्तव्य-परायणता, अतिथि-सत्कार, सत्पात्र में दान, पञ्चमहायज्ञ-सम्पादन और समाजोत्थान आदि विशेष गुण हैं। श्री लाला किशनलाल जी के इन पुत्रों और पौत्रों ने वैदिक धर्म-संस्कृति के प्रचार-प्रसार में समयदान, शक्तिदान और द्रव्यदान करने के साथ ही वैदिक तथा देशोन्नति-कारक साहित्य के प्रकाशन में भी मौन भाव से, बिना प्रसिद्धि की लालसा के दिल खोलकर दान दिया है। इस पुस्तक के मुद्रण का श्रेय भी इसी परिवार को है। परम समर्थ परमेश्वर इस समस्त परिवार को भक्ति, शक्ति और सम्पत्ति से सदा भरपूर बनाये रखे।

वर्त्तमान में यह परिवार अपने नवनिर्मित म.नं. १९७, सैक्टर-१४, सोनीपत में प्रभु की कृपाओं का अनुभव कर रहा है।

प्र. ज्येष्ठ शुक्ल दशमी वि.सं. २०६४

निवेदक —
सत्यानन्द वेदवागीश

स्व. श्री लाला किशनचंद जी (लुंड) आर्य स्व. श्रीमती देवीबाई जी (लुंड) आर्य
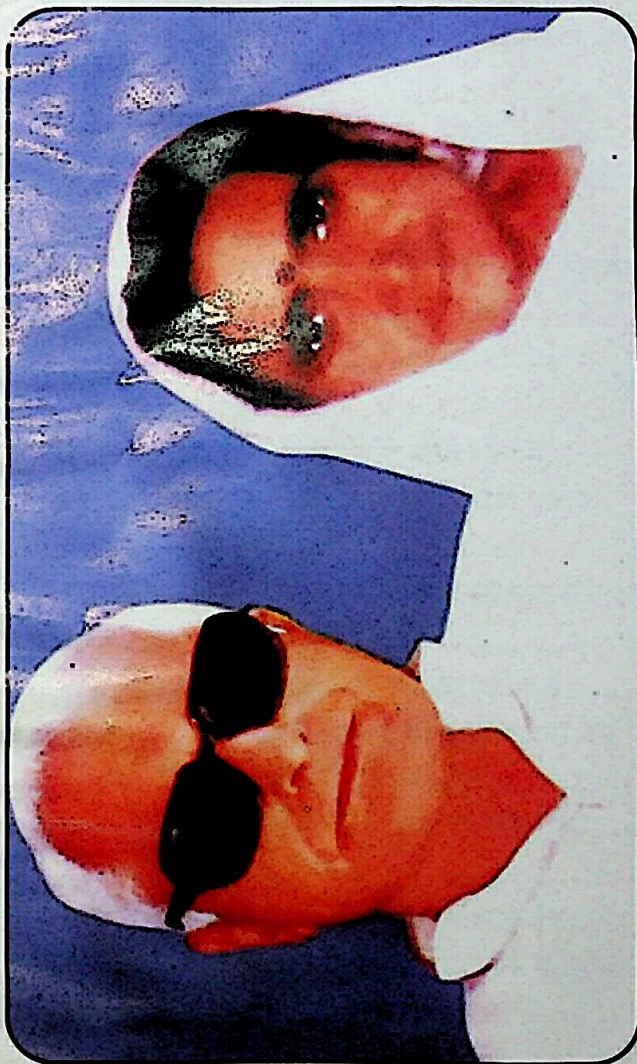
इनके सुपुत्र श्री सतीशजी आर्य एवं श्री सतपालजी आर्य और सुपौत्रों द्वारा प्रदत्त सात्त्विक आर्थिक सहयोग से इस पुस्तक का मुद्रण हुआ है।

विषयानुक्रमणिका

१. पुरोवाक् ८-१८
२. ग्रन्थ-चर्चित-मुख्य-व्यक्ति-परिचय १९-२३
३. भीष्म-प्रकरण ८-७२
(१) दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को जला मारने को वारणावत भेजना और भीष्म पितामह ८
(२) कपटद्यूत का आयोजन और भीष्म पितामह १३
(३) द्रौपदी को भरी सभा में लाने का दुर्योधन का हठ और भीष्म पितामह १६
(४) द्रौपदी का भरी सभा में घोर अपमान और भीष्म पितामह १९
(५) सभा में द्रौपदी का प्रश्न और भीष्म का उत्तर २१
(६) कपटद्यूत द्वारा पराजित पाण्डवों का वन-प्रस्थान और भीष्म पितामह ३३
(७) कौरवों द्वारा विराट-गोहरण और भीष्म पितामह ३६
(८) कृतघ्न दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण-निग्रह-योजना और भीष्म पितामह ४९
(९) अर्थदासता के कारण भीष्म का कौरवों की ओर से लड़ना....... ५५
४. श्रीकृष्ण-प्रकरण ७३-१०७
(१) श्रीकृष्ण द्वारा दुर्योधन को नारायणी सेना का दान ७४
(२) कौरवसभा में शान्तिदूत श्रीकृष्ण को दुर्योधन द्वारा कैद करने के विचार पर श्रीकृष्ण का व्यवहार ८७
(३) कुरुक्षेत्र के रणाङ्गन में दो महासेनाओं के बीच कृष्ण ९२
५. द्रोणाचार्य-प्रकरण १०८-१४५
(१) द्रोणाचार्य और एकलव्य का दक्षिण-अङ्गुष्ठकर्त्तन १०८
(२) दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में पाण्डवों को जलाने की योजना और द्रोण ११५
(३) कपटद्यूत-सभा और द्रोणाचार्य ११७
(४) भरी सभा में रजस्वला द्रौपदी को लाने का दुर्योधन का हठ और द्रोण ११८
(५) द्यूत-सभा में द्रौपदी का घोर अपमान और द्रोण ११९

(६) कपट से पराजित पाण्डवों का वनप्रस्थान और द्रोण १२१
(७) दुर्योधन-दल द्वारा विराट-गोहरण और द्रोणाचार्य १२२
(८) शान्तिदूत श्रीकृष्ण के प्रस्ताव का द्रोण द्वारा समर्थन और दुर्योधन का उत्तर १२३
(९) युद्धभूमि में युधिष्ठिर से द्रोणाचार्य का क्लीबवचन १३८
६. कृपाचार्य-प्रकरण १४६-१८०
(१) कृपाचार्य और कपट-द्यूत-सभा १४६
(२) भरी सभा में द्रौपदी का अपमान और कृपाचार्य............... १४६
(३) पाण्डवों का वनवासार्थ प्रस्थान और कृपाचार्य १४७
(४) दुर्योधन द्वारा विराट-गोहरण और कृपाचार्य १४८
(५) अज्ञातवास के समय पाण्डवों का पता लगाने में कृप की अग्र सम्मति १४९
(६) कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में युधिष्ठिर को कृपाचार्य का उत्तर १६६
(७) अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में शिविर में सोती हुई पाण्डव-सेना का वध और कृप १७१
७. शल्य-प्रकरण १८१-१९३
(१) कपटद्यूत और शल्य १८१
(२) पाण्डवों की ओर से शल्य को रणनिमन्त्रण और शल्य का व्यवहार १८२
(३) कुरुक्षेत्र के रणाङ्गन में युधिष्ठिर को शल्य का उत्तर १८७
८. युधिष्ठिर-प्रकरण १९४-२४१
(१) द्यूतक्रीडा और युधिष्ठिर.. १९४
(२) पुनः द्यूतक्रीडा और युधिष्ठिर २०१
(३) गन्धर्वों द्वारा दुर्योधन का निग्रह और युधिष्ठिर की दया २१०
(४) दुर्योधन को दत्तवचन शल्य का पाण्डवों के पास आना और युधिष्ठिर २१५
(५) श्रीकृष्ण द्वारा रणभूमि में अर्जुन को उपदेश और युधिष्ठिर २१८
(६) कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में भीष्म-द्रोण-कृप-शल्य द्वारा कहे गये आशीर्वचन और युधिष्ठिर................................ २२६
(७) सरोवर में छिपे दुर्योधन का, ललकारने पर युद्धार्थ बाहर आना और युधिष्ठिर २२९

(८) महाप्रस्थान करते हुए द्रौपदी आदि का गिरना और युधिष्ठिर .. २३३

९. धृतराष्ट्र-प्रकरण २४१-२६६

(१) क्रुद्ध धृतराष्ट्र द्वारा भीमसेन (नकली) को भुजाओं से पीसना ... २४१

(२) पाण्डु-देहावसान के बाद राजा बने धृतराष्ट्र का व्यवहार २४४

(३) कपटद्यूत के लिये धृतराष्ट्र की अनुमति २४८

(४) पुनः कपटद्यूत और धृतराष्ट्र २४९

(५) पाण्डवों द्वारा अज्ञातवास-सहित तेरह वर्ष के वनवास रूपी शर्त की पूर्त्ति और धृतराष्ट्र २५१

(६) शान्तिदूत कृष्ण को दुर्योधनादि की कैद करने की योजना और धृतराष्ट्र २५३

(७) युद्ध के चौथे दिन अपने आठ पुत्रों के और आठवें दिन सत्रह पुत्रों के मारे जाने पर धृतराष्ट्र का व्यवहार २६१

(८) अपने पुत्रादि के श्राद्ध के लिये धृतराष्ट्र द्वारा युधिष्ठिर से धन मांगना २६४

१०. गान्धारी-प्रकरण २६६-२७७

(१) युधिष्ठिर-जन्म-समाचार पर गान्धारी द्वारा स्वोदर-ताडन २६६

(२) पुनः कपटद्यूत और गान्धारी २६८

(३) सबकी अवहेलना करने वाला दुर्योधन और गान्धारी २६९

(४) गान्धारी द्वारा पाण्डवों को शाप २७२

(५) भीम द्वारा दुर्योधन के जङ्घाभंग पर गान्धारी द्वारा धर्म की दुहाई . २७४

(६) पुत्रादि-वध से क्रुद्धा गान्धारी द्वारा श्रीकृष्ण को शाप २७६

११. कुन्ती-प्रकरण २७८-२९१

१२. अर्जुन-प्रकरण २९२-३०१

(१) द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य के दक्षिण अङ्गुष्ठ को कटवाना और अर्जुन २९२

(२) कपटद्यूत और अर्जुन २९४

(३) द्वैतवन में गन्धर्वों द्वारा दुर्योधनदल का निग्रह और अर्जुन २९७

(४) विराट की अपहृत गौओं को दुर्योधनदल से मुक्त करवाते समय अर्जुन का व्यवहार २९९

१३. अब क्या करना है? ३१२

ओ३म्

पुरोवाक्

प्राचीनकाल में भारतवर्ष (आर्यावर्त्त) अति उन्नत एवं वैभवपूर्ण था। यहाँ के साक्षात्-कृत-धर्मा ऋषियों ने ही परमज्ञान-निधि परमेश्वर से समाधिस्थ अवस्था में वेदज्ञान प्राप्त किया। यहीं के मनीषियों ने प्राणिमात्र-कल्याण-कारिणी वैदिक संस्कृति और सभ्यता से स्वयं को सुसंस्कृत और सभ्य बनाया। उस संस्कृति-सभ्यता से समन्वित चरित वाले आर्यावर्तीय विद्वानों ने संसार के अन्य मानवों को चरित्रवान् बनाने का उपक्रम किया। इसीलिये महाराज मनु ने पृथिवी भर के सभी मनुष्यों को निर्देश दिया था, कि इस आर्यावर्त के अग्रणी चरित्रवान् विद्वानों से सब लोग सच्चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें[A]। आर्यावर्त्त के जितेन्द्रिय सम्राटों, राजाओं और महाराजाओं ने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया। यहाँ के अनेक सम्राट् चक्रवर्ती राजा हुए। उनमें—सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्यश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य और अक्षसेन आदि अग्रगण्य थे[B]।

अन्य भी अनेक आर्यावर्त्तीय राजा हुए, जिन्होंने अपनी धवल यशोगाथा से सब दिशाओं को गुञ्जित किया। उनमें—मनु, इक्ष्वाकु, बाण, पृथु, धुन्धुमार, मान्धाता, सुसन्धि, ध्रुवसन्धि, भरत, मरुत्त, असित, सगर, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, ककुत्स्थ, रघु, सुदर्शन, अग्निवर्ण, मरु, नाभाग, अज, दशरथ और श्रीराम विशेष रूप से गणनीय हैं।

सर्वत्र माण्डलिक एवं स्वदेशीय राजा भी होते थे। किन्तु वे चक्रवर्त्ती सम्राट् के अन्तर्गत स्व-स्वदेश का राजकार्य करते थे। इस व्यवस्था के कारण कोई निरङ्कुश होकर प्रजा का उत्पीड़न नहीं कर पाता था। जब तक रघु सम्राट् थे, तब तक लङ्काधिपति भी उनके अनुशासन में था। उसके बाद लङ्का के राजा उच्छृङ्खल होने लगे। उनमें लङ्केश रावण तो अतिसीम होने लगा। तब श्रीराम ने उसे समूल नष्ट करके, उसके धार्मिक भाई विभीषण को लङ्का का राजा बनाया।

महाभारत काल से द्वितीय सहस्राब्दि पूर्व से अनुशासनहीनता बढ़ने लगी। अतः स्वार्थपरायणता, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, अत्याचार और प्रमाद (=अनवधानता=बुद्धिमान्द्य) का प्रसार होने लगा। इन सबके परिणामस्वरूप महाभारत-युद्ध हुआ। जिसमें उत्तमोत्तम वीर, ब्रह्मास्त्र आदि के ज्ञाता प्रशिक्षक महान् विद्वान् आचार्य, उद्भट महारथी आदि मृत्यु के ग्रास बन गये। उनके साथ ही नाना विद्याएँ भी काल के कराल गाल में समा गईं। हमारा अति प्राचीन भूतकाल बहुत श्रेष्ठ था, किन्तु जो अधःपतन हुआ उसके विषय में भी विचार करना आवश्यक है। जो राष्ट्र और जो जाति अपने भूतकाल के उत्कर्ष के ही गीत गाती रहती है और अपने पूर्वकाल की अवनति के कारणों पर विचार नहीं करती, वह पुनः अपने पूर्वतन अभ्युदय को प्राप्त नहीं कर सकती।

महाभारत-युद्ध हुआ था और अवश्य हुआ था। उसका विवरण वर्तमान में महाभारत ग्रन्थ से मिलता है। बहुत से लोग महाभारत ग्रन्थ में वर्णित इतिहास को काल्पनिक मानते हैं। ऐसे लोग रामाण और महाभारत आदि को कपोलकल्पित कथाओं के ग्रन्थ मानते हैं। यह एक महान् भ्रम है। इस भ्रम को फैलाने वाले हैं ईसाई पक्षपात से ग्रसित जर्मन, फ्रेंच, इंग्लिश तथा अमरीकन आदि पाश्चात्त्य इतिहास-लेखक और परप्रत्ययनेय-बुद्धि स्वगौरवभावना से शून्य कतिपय भारतीय इतिहास-लेखक।

इन लोगों ने अपने स्वार्थ-साधन हेतु भारत के विषय में अनेक मिथ्या बातों का पूरे जोर-शोर से प्रचार किया।

पाश्चात्त्यों ने यह भ्रम फैलाया कि 'अंग्रेजों ने ही भारत को एक इकाई के रूप में स्थापित किया। इससे पहले भारत का कभी एक देश के रूप में अस्तित्व नहीं रहा था। सदा यहाँ अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य होते थे। भारत नाम की एक इकाई कभी नहीं रही'। यह बात सर्वथा मिथ्या है। भारत का ही प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है। मनुस्मृति में-पूर्वसमुद्र और पश्चिमसमुद्र के मध्य तथा हिमालय और विन्ध्याचल के विस्तार पर्यन्त स्थित देश को 'आर्यावर्त्त' कहा गया है[C]। महामति सञ्जय ने धृतराष्ट्र को कहा था—जहाँ गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, महानदी, शतद्रू, चन्द्रभागा, यमुना, वेत्रवती, इरावती आदि सहस्रों नदियाँ बहती हैं, वह भारतवर्ष है[D]। यह भारतवर्ष महाराज इन्द्र, वैवस्वत मनु, पृथु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, शिबि, ऋषभ, नृग, कुशिक, गाधि, सोमक और महाराज दिलीप तथा अन्य पराक्रमी क्षत्रिय

राजाओं को अत्यन्त प्रिय था[E]। जब इतने प्राचीन राजाओं के समय में भी भारत एक देश के रूप में व्यवस्थित था। तो पक्षपाती लेखकों की बात कैसे मान्य हो सकती है ?

अंग्रेजों से पहले भारत पहुँचे फ्रांसीसी लोगों में से एक 'लुई जैकालियट' (जो चन्द्रनगर में प्रधान न्यायाधीश) थे ने सन् १८६८ में अपनी पुस्तक 'भारत में बाइबिल' में लिखा था – 'प्राचीन भारत भूमि! मनुष्यजाति के जन्मस्थान! तेरी जय हो! पूजनीय और समर्थधात्री, जिसको नृशंस आक्रमणों की शताब्दियों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नहीं दबाया, तेरी जय हो! श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृभूमि तेरी जय हो ! क्या कभी ऐसा दिन भी आयेगा, जब हम अपने पाश्चात्त्य देशों में तेरे अतीत काल की सी उन्नति देखेंगे'।

जब सन् १८६८ में भी एक निष्पक्ष विदेशी विद्वान् भारत को प्राचीनकाल से एक देश के रूप में अवस्थित एक इकाई के रूप में सादर स्मरण कर रहा है, तब पक्षपाती पाश्चात्त्यों की मनघड़न्त बात तिरस्कार्य ही है।

इन यूरोपियन और अमेरिकन लेखकों ने दूसरा यह भ्रम फैलाया कि प्राचीन भारतीय लोग इतिहास लिखना ही नहीं जानते थे। यह भी सर्वथा मिथ्या है। भारतीय लोग तो प्रतिदिन सन्ध्यादि के पूर्व सृष्टि के आरम्भ से लेकर मन्वन्तर, युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि का उच्चारण करते थे[F]। जिससे दिन-दिन का इतिहास सुरक्षित रहता था। 'इतिहास' शब्द तो भारत के प्राचीन ग्रन्थों में सहस्रों बार प्रलिखित है। अकेले महाभारत ग्रन्थ में शताधिक बार 'इतिहासं पुरातनम्' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अकेले शान्तिपर्व में ५३ बार इसका उल्लेख है। इतिहास के पूर्ण अथवा आंशिक पर्यायवाची के रूप में १९ और शब्दों का व्यवहार प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है । वे हैं – ऐतिह्य, पुराकल्प, इतिवृत्त, पुरावृत्त, अवदान, आख्यान, आख्यायिका, उपाख्यान, अन्वाख्यान, चरित, अनुचरित, कथा, परिकथा, अनुवंश श्लोक, गाथा, नाराशंसी, राजशासन, पुराण और परकृति[G]।

हीनभावनाग्रस्त पाश्चात्त्य लेखकों ने भारतीय उपलब्धियों को, भारतीय गौरव को, भारतीय वैभव को, भारतीय सम्पन्नता को, भारतीय संस्कृति को हीन और अतिहीन बताने का प्रयास किया। 'रॉथ, वेबर, ह्विटलिंग, कूहन आदि लेखक इस बात के लिये कृतसंकल्प थे, कि जिस प्रकार से भी हो, भारत का प्राचीन गौरव नष्ट किया जाय। उनके लिये यह असह्य था, कि जब उनके पितर वनचरों के समान गुजारा कर रहे थे, उस

समय आर्यों के भारतवर्ष में पूर्ण सभ्यता और आनन्द का डंका बज रहा था। भारतीय गौरव के प्रति ईर्ष्यात्मक घृणा उनके हृदय में चरम सीमा तक घर कर गई थी। उसका एक ताजा उदाहरण है।

राजस्थान के पाली जिले के जाडन ग्राम के क्षेत्र में एक आश्रम है श्री माधवानन्दजी पुरी का। उसमें जितने भी साधक हैं, वे प्रायः पश्चिम देशों के हैं। वे गेरुआ वस्त्रधारी हैं और राजेश पुरी, गोविन्द पुरी आदि नामधारी हैं। इन पंक्तियों का लेखक ४-५ वर्ष स्वयं उस आश्रम को देख चुका है। उस आश्रम की एक शाखा यूरोप (आस्ट्रिया) में भी है। माधवाश्रम के वर्तमान अध्यक्ष श्री महेश्वरानन्दजी को आस्ट्रिया के शिक्षाविभाग के डायरेक्टर ने अपने स्कूलों के छात्रों के लिये एक शारीरिक-विकास-योजना बनाने को कहा। स्वामीजी ने योजना बनाकर दी। उसमें 'योग' शब्द भी था। 'योग' शब्द को देखकर डायरेक्टर ने उस योजना को निरस्त कर दिया यह कहकर कि 'योग' शब्द के प्रयोग से तो भारत का गौरव बढ़ता है। कितना द्वेष है भारत के प्रति !!

पाश्चात्त्य लेखकों ने जानबूझकर भारतीय घटनाओं को - इतिहास को अधिकाधिक अर्वाचीन सिद्ध करने का प्रयास किया। वे इस देश की उच्च स्थिति हरगिज नहीं देखना चाहते थे। अतः उन्होंने भारत के इतिहास व संस्कृति के स्रोतों को झूठा सिद्ध करने का कुचक्र रचा। इस कार्य के लिये प्राचीन साक्ष्यों के कहीं शब्द बदले गये तो कहीं अक्षर। राजाओं और उनके कालों को जानबूझकर पीछे ले जाया गया। भारतीय संवतों को नकार कर काल्पनिक कालगणना की कोशिश की गई। पुरातात्त्विक साक्ष्यों को भ्रमपूर्ण बताकर अस्वीकार कर दिया गया तथा प्राचीन ग्रन्थों और अभिलेखों में फेरबदल की गई आदि[H]।

रामायण और महाभारत आदि में वर्णित घटनाओं को = इतिवृत्त को काल्पनिक सिद्ध करने के लिये उन्होंने Mythology नामक एक मिथ्या सिद्धान्त घड़ा जिसका अर्थ है — देवी-देवताओं की कहानियाँ या पौराणिक कहानियाँ। किन्तु सत्य तो सत्य ही है। महाभारत ग्रन्थ में वर्णित कौरव-पाण्डव आदि से सम्बद्ध घटनाएँ अवश्य घटी थीं। इसकी पुष्टि में हम कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं —

(i) महाभारत में जिन शतशः देशों, राष्ट्रों, राज्यों या नगरों का उल्लेख है। उनमें से कुछ आज भी उस नाम से प्रसिद्ध हैं । जैसे — चीन, केरल, द्रविड, आन्ध्र, बंग, उत्कल (उड़ीसा), कश्मीर, पञ्चनद (=पञ्चआप=पंजाब), मरुभूमि

(मरुधरा=मारवाड़), गण्डक, कम्बोज, मत्स्य, अयोध्या, हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, रोहीतक (रोहतक), विदर्भ, वारणावत (बरणावा), काशी आदि।

(ii) महाभारत में उल्लिखित नदियों में से कई नदियाँ आज भी उसी नाम से जानी जाती हैं। जैसे—गङ्गा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, कृष्णवेणा (=कृष्णा), वेत्रवती (बेतवा), गण्डक, चर्मण्वती (चम्बल) आदि।

(iii) महाभारत काल के प्रसिद्ध अच्छे व्यक्तियों के नामों पर आज तक भी भारतीय आर्य (हिन्दू) अपने बच्चों के नाम रखते हैं। जैसे देवव्रत, शान्तनु, कृष्ण, बलराम, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, सहदेव; नकुल, सोमदत्त, द्रौपदी, दमयन्ती, कृष्णा, सत्यवती, अम्बिका, सुभद्रा, सत्यभामा आदि तथा उस समय के प्रसिद्ध निकृष्ट नामधारियों के नाम कोई नहीं रखता। जैसे दुर्योधन, शकुनि, कणिक आदि।

(iv) महाभारत में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम उनके गोत्र या पितृनाम सहित; महाभारत काल के पश्चात् रचित साहित्य में मिलते हैं यथा—

(क) विचित्रवीर्यपुत्र धृतराष्ट्र — काठक संहिता १०.६ में लिखा है — ...'बको दाल्भिरब्रवीत्—'यूयमेवैतान् विभजध्वम्' अहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि' = दल्भ के पुत्र 'बक' ने कहा 'इन पशुओं को आप लोग ही बांट लो, मैं तो पशु-प्राप्ति के लिये विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र के पास जाऊँगा'। काठकसंहिता का प्रवचन महाभारतयुद्ध से लगभग ६५ या ७० वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय धृतराष्ट्र ३०–३५ वर्ष का था। क्योंकि दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण आदि भी पूर्ण युवावस्था में युद्ध लड़ रहे थे। वे धृतराष्ट्र के पौत्र थे। सो धृतराष्ट्र की युवावस्था के समय प्रोक्त काठक में इस घटना का उल्लेख होना सम्भव ही है।

(ख) प्रतीपपुत्र बाह्लीक — महाराज प्रतीप के कनिष्ठ पुत्र बाह्लीक के विषय में माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण १२.९.३.३ में लिखा है — 'तदु ह बाह्लिकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा' =कुरुकुल के राजा बाह्लीक ने जो प्रतीप का पुत्र था, उसने इस बात को सुना। ये प्रतीप वही हैं, जिनका पुत्र शान्तनु था और जिसका पौत्र देवव्रत भीष्म था। बाह्लीक का पुत्र सोमदत्त तथा पौत्र भूरि, भूरिश्रवा और शल। ये दादा, पुत्र और पौत्र तीन पीढ़ियों के वीर योद्धा कौरवपक्ष की ओर से लड़े थे। युद्ध के १४वें दिन भीमसेन के हाथों बाह्लीक परलोकगामी हुए।

(ग) नग्नजित् गान्धार – इसके विषय में शतपथ ब्राह्मण ८.१.४.१० में लिखा है– 'अथ ह स्माह स्वर्णजिन्नाग्नजितः = तब नग्नजित् का पुत्र स्वर्णजित् बोला'। नग्नजिद्वा गान्धारः' =यह नग्नजित् गान्धार का राजा था। यह नग्नजित् सुबल का पिता और शकुनि, अचल, वृषक तथा गान्धारी का दादा था। यह प्रह्लाद का शिष्य था। 'प्रह्लादशिष्यो नग्नजित्, सुबलश्चाऽभवत्ततः।... गान्धारराजपुत्रोभूत् शकुनिः सौबलस्तथा। दुर्योधनस्य जननी...? (महाभा.आदि. ६३.१११,११२)

(घ) व्यास पाराशर्य – तैत्तिरीय आरण्यक १.९.३५ में लेख है – स होवाच व्यासः पाराशर्यः = पराशर का पुत्र व्यास बोला। बृहदारण्यक (श. १४.५.५.२१) में लिखा है 'पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्' =व्यास ने जातूकर्ण्य से विद्या प्राप्त की। इन कृष्ण द्वैपायन व्यास को सत्यवती ने जन्म दिया था। सत्यवती पीछे शान्तनु को ब्याही गईं, जिनके चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य दो पुत्र हुए। महाभारत में कहा है–'सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यबतीसुतः' (महाभा.शा.)

(ङ) कृष्ण देवकीपुत्र – छान्दोग्य उपनिषद् ३.१७.६ में लिखा है - 'तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वा..' =तब अङ्गिरा के पुत्र घोर ने देवकीपुत्र कृष्ण के लिये प्रवचन करके..। महाभारत में बहुत्र कृष्ण को देवकीपुत्र के रूप में स्मरण किया गया है – 'वसुदेवात् तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशाः' (महाभा.आदि. ६३.९९) 'कृष्णो वा देवकीपुत्रः' (महाभा.भी.)।

(च) शिखण्डी याज्ञसेनि – कौषीतकी ब्राह्मण ७.४ – 'शिखण्डी वा याज्ञसेनो यो वा स आस' = यज्ञसेन का पुत्र शिखण्डी जो था। यह यज्ञसेन अपरनाम द्रुपद का पुत्र था। यह धृष्टद्युम्न और द्रौपदी का भाई था। महाभारत में इसे – 'शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि' (द्रो. १०.४५)। 'विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम्' (द्रो. २५.३६)। इस प्रकार यज्ञसेन का पुत्र कहा गया है। यह अपने जीजा पाण्डवों की ओर से लड़ा था। यह युद्ध में तो नहीं मारा गया। किन्तु युद्ध की समाप्ति पर रात्रि में जब वह शिविर में सोया हुआ था, तब अश्वत्थामा द्वारा मारा गया (महाभा.सौ. 8-65)।

(v) युधिष्ठिर-संवत् – महाभारतयुद्ध के पश्चात् प्रारम्भ हुए संवतों में युधिष्ठिर संवत् सबसे पहला संवत् है। इसका प्रयोग प्राचीनकाल से ही अनेक भारतीय

ग्रन्थों में होता आया है। जगद्गुरुओं की सूचियाँ युधिष्ठिर-संवत् के आधार पर ही रखी गई हैं। कई पंचाङ्गों में युधिष्ठिर-संवत् का उल्लेख रहता है[1]।

(vi) संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध अनेक नाटकों तथा महाकाव्यों की रचना महाभारतकालीन घटनाओं के आधार पर की गई है। यथा – माघ का 'शिशुपाल-वध', भट्टनारायण का 'वेणीसंहार नाटक', भारवि का 'किरातार्जुनीय' काव्य, भास के ऊरुभङ्ग और दूतघटोत्कच, अनन्तभट्ट का भारतचम्पू और कविराज का 'राघव-पाण्डवीय' आदि।

इस प्रकार के अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि महाभारत ग्रन्थ में उल्लिखित इतिहास वास्तविक इतिवृत्त है, काल्पनिक कहानी नहीं । चाहे महाभारत ग्रन्थ में कितना ही प्रक्षेप या विक्षेप हुआ हो और अतिशयोक्तियाँ भी हुई हों, तथापि उसमें वर्णित सम्बद्ध घटनाएँ, व्यक्ति, स्थान, देश, नदियाँ आदि वास्तव में सत्य हैं। राजाओं के, ऋषि-मुनियों के, आचार्यों के तथा अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध और उनके वंश, गोत्र तथा कुल आदि सत्य हैं।

इस महाभारतयुद्ध से महाविनाश हुआ। जिसका फल अनेक प्रकार से भारत की आर्य (हिन्दू) जनता आज तक भोग रही है। हमारा दृढ़ मत है, कि यह महायुद्ध रोका जा सकता था। इस महायुद्ध के मूल कारण महा दुर्हठी दुर्योधन की जिद्दों पर यह महायुद्ध हुआ। किन्तु उस समय कुछ लोग थे। जो समय रहते अपने कर्त्तव्य को निभाते और महायुद्ध से सम्भाव्य महाविनाश की अनदेखी न करते, तो यह युद्ध रुक सकता था। हमने उनमें से कुछ व्यक्तियों के आचरण की सप्रमाण समीक्षा की है।

भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ने धृतराष्ट्रसम्मत दुर्योधन रचित वारणावत के लाक्षागृह के षड्यन्त्र और तत्सम्बद्ध काल की घटनाओं की अनदेखी अथवा उपेक्षा करके दुर्योधन के कुकृत्य-भाव को पवन प्रदान किया। इन तीनों मनीषियों ने दुर्योधनाभिलषित शकुनिरचित कपटद्यूत और पुनः कपटद्यूत को रोकने में सक्षम प्रयत्न नहीं किया। यह द्यूत उस युद्ध के मूल की मोटी शाखा थी। इन तीनों ने तथा कुछ अन्य बुजुर्गों ने एकवस्त्रा, रजस्वला द्रौपदी को सभा में लाने का, उसको कुवाच्य कहने का और वस्त्र उतार कर नग्न करने के प्रयास का घोर विरोध नहीं किया, उसे रोका नहीं। द्रौपदी द्वारा अपने प्रश्न द्वारा, अपने ऊपर किये जाते हुए अपमान के औचित्य के विषयं में पूछने पर इनका अनुचित व्यवहार रहा। वह था मौन अथवा व्यर्थ की धर्मसमीक्षा।

सर्वस्वलुम्पित पाण्डवों के द्रौपदी-सहित वनप्रस्थान के समय ये लोग कठपुतली के समान मूकदर्शक बने रहे। दुर्योधन द्वारा निरपराध विराटराज की गौओं के अपहरण=लूट में ये सभी सम्मिलित हुए। इस प्रकार दुर्योधन-चौकड़ी के दुष्कृत्यों में सहायक बन कर इन्होंने उसके दुस्साहस को बढ़ाया। कृतघ्न दुर्योधन द्वारा शान्तिदूत कृष्ण को कैद करने की योजना के समय इन्होंने उसका प्रभावी प्रतीकार नहीं किया। जबकि ये लोग श्रीकृष्ण को मान्य और गुरुतुल्य मानते थे। कुरुक्षेत्र के रणाङ्गन में युद्धारम्भ से पूर्व युधिष्ठिर द्वारा भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य को प्रणाम करने, युद्धानुमति लेने और आशीर्वाद-प्राप्ति हेतु जाने पर इन चारों ने मनुष्य की अर्थदासता की झूठी दुहाई दी और दुर्योधनादि द्वारा अपने भरण-पोषण की भ्रान्त बात कह कर कौरव-पक्ष की ओर से लड़ने के अपने निर्णय का मूर्खतापूर्ण औचित्य ठहराया।

भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को नारायणी सेना देकर अपात्र को = कुपात्र को दान देकर, महाभारत-युद्ध में कौरवपक्ष की प्रथम सहायता की। कौरव-सभा में शान्तिदूत बनकर गये श्रीकृष्ण को कैद करने के षड्यन्त्र का जब सात्यकि द्वारा भण्डाफोड़ किया गया तब उन्होंने समर्थ होते हुए भी दुर्योधन का निग्रह नहीं किया। कुरुक्षेत्र में दोनों सेनाओं के मध्य में युद्ध के दुष्परिणामों का विचार आने पर अर्जुन को युद्ध से वैराग्य हो गया, तब भगवान् ने अर्जुन को लम्बा उपदेश देकर युद्ध के लिये सन्नद्ध कर लिया, किन्तु युद्ध के भारी कुपरिणामों की अनदेखी कर दी। अपना विश्वरूप दिखाकर – अपना महासामर्थ्य प्रकट करके अर्जुन को तो भयभीत कर दिया, किन्तु उस अपने अति सामर्थ्य के प्रदर्शन से दुर्योधन को, दुर्योधन-चौकड़ी को तथा कौरवसेना को नहीं डराया। शान्तिवार्त्ता के लिये हस्तिनापुर जाने से पहले इनसे महाबली भीम ने जब युद्ध से होने वाले महासंहार की कल्पना करके बिना युद्ध के ही किसी हल होने की बात उपप्लव्य नगर में कही थी, तब भगवान् ने उसे उत्तेजित करते हुए कहा था, कि यदि दुर्योधन मेरी बात नहीं मानेगा और शर्त्तानुसार तुम्हारा राज्य नहीं लौटायेगा तो वह मेरे द्वारा वध्य होगा= 'मैं उसे मार डालूंगा'। इस अपने वचन के अनुसार लाखों वीरों की हत्या को टालने के लिये उस कुलांगार दुर्योधन का वध, श्रीकृष्ण को उस समय कर देना चाहिये था। युद्ध के तीसरे दिन और फिर आठवें दिन भीष्म के प्रति अर्जुन की मृदुयुद्धता को देखकर और भीष्म के द्वारा पाण्डवसेना के किये जाते हुए महासंहार को निहार कर, श्रीकृष्ण भीष्म को मारने को झपटे। अर्जुन ने बड़ी कठिनाई से भगवान् को रोका।

वास्तव में तो भगवान् को उस समय महासंहार के मूल दुर्योधन का सिर उसी प्रकार काट देना चाहिये था जैसे राजसूय के समय शिशुपाल का काटा था।

द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की सर्वश्रेष्ठ धनुर्धरता की अक्षुण्णता के लिये निरपराध एकलव्य के अंगूठे को कटवाकर क्रूरता और अन्याय का काम किया।

पाण्डव जब वनवस के बारह वर्ष बिताने के बाद अज्ञातवास का समय काट रहे थे, तब उनका किसी भी प्रकार से पता लगाने के लिये कृपाचार्य ने दुर्योधन को उकसाया। इस प्रकार कृप ने दुर्योधन के पहले से ईर्ष्याग्रस्त और हिंस्र मन में पाण्डवों के प्रति और भी विष भरने का काम किया। युद्ध के अठारहवें दिन जब कौरवपक्ष के शेष रहे चार वीरों में से दुर्योधन भीम के द्वारा सरोवरतट पर मारा गया, उसी रात्रि में शिविर में सोते हुए पाण्डवपक्ष के वीरों का वध अश्वत्थामा ने किया। तब कृपाचार्य ने भी कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा का सहयोग किया और शिविर के तीन ओर कृप-कृतवर्मा ने आग लगा दी।

नकुल-सहदेव का, पाण्डवों का मामा मद्रराज शल्य धन का लोभी था। माद्री को पाण्डु के लिये भीष्म को उसने तभी दिया, जब भीष्म से उसके बदले में बहुत सा धन ले लिया। कपटद्यूत के दोनों अवसरों पर शल्य भी उपस्थित था। पर उसने न तो शकुनि आदि को रोका और न भानजे पाण्डवों को द्यूत खेलने से अलग किया। रणनिमन्त्रण शल्य को भेजा तो पाण्डवों ने था, पर अपनी हीनवृत्ति के कारण, दुर्योधन द्वारा किये गये थोड़े से सेवा-सत्कार से वह अपनी भारी सेना के साथ उसी के पक्ष में हो गया।

युधिष्ठिर की बुद्धिमन्दता, विचारहीनता और भविष्यत् के परिणाम के चिन्तन की न्यूनता भी इस महायुद्ध का कारण बनी। वह दो-दो बार मूर्खतापूर्ण ढंग से द्यूतक्रीड़ा में उतरा। दूसरी बार बुजुर्गों के द्वारा वर्जने पर भी शत्रुओं की बेतुकी शर्त पर द्यूत खेला। वनवास की अवधि में पाण्डवों को चिढ़ाने के लिये जब दुर्योधन दलबलसहित द्वैतवन में गया, तब गन्धर्वों द्वारा कुटुम्बसहित बन्दी बनाये हुए दुर्योधन को, युधिष्ठिर ने कुपरिणामी दया दिखाकर अपने भाईयों द्वारा छुड़वाकर मूर्खतापूर्ण कार्य किया। कुरुक्षेत्र में युद्ध से पूर्व युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को तथा भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य को उनका कर्त्तव्य स्मरण नहीं कराया अपितु उनकी हाँ में हाँ मिलाई। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के छोटे-छोटे दोष तो अपने हृदय में संजोये रखे, पर अपनी बड़ी-बड़ी भूलों को नहीं स्वीकारा।

धृतराष्ट्र का अन्ध पुत्रमोह भी महाभारत-युद्ध का कारण बना। वह राजा बना।

पर उसने राजा के कर्त्तव्यों का पालन नहीं किया। कणिक की कूटनीति से दुर्योधन की प्रसन्नता के लिये उसने छल से पाण्डवों को वारणावत्त में जल मरने को भेजा। कपटद्यूत भी धृतराष्ट्र ने करवाया। दूसरी बार सबके मना करने पर और पत्नी गान्धारी के भी उसके विरुद्ध होने पर भी कपटद्यूत करवाया। वनवास-अज्ञातवास के तेरह वर्ष बीत जाने पर भी शर्तानुसार वह पाण्डवों को उनका राज्य नहीं दिलवा सका।

युद्ध में प्रतिदिन सहस्रों वीर मारे जा रहे थे, जिनका विवरण धृतराष्ट्र को सञ्जय से मिल रहा था, किन्तु उसने युद्ध रोकने का प्रयास नहीं किया। चतुर्थ दिन जब धृतराष्ट्र के आठ पुत्र और आठवें दिन जब सत्रह पुत्र मारे गये तब भी उसने युद्ध को रोकने का प्रभावी प्रयत्न नहीं किया।

गान्धारी की ईर्ष्यावृत्ति का ही सङ्क्रमण दुर्योधन में हुआ। पुनः कपटद्यूत के लिये उसने मना तो किया, पर उसे रोकने का समुचित उपाय नहीं किया। शान्तिवार्त्ता-सभा में गान्धारी ने दुर्योधन के हठ और लोभ का मूल कारण अपने पति को बताया, पर वह पुत्रमोह के कारण दुर्योधन को सन्मार्ग पर नहीं ला सकी। सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद वह पाण्डवों और श्रीकृष्ण को तो शाप देने से नहीं चूकी, पर युद्ध से पूर्व और युद्ध के दिनों में भी प्रतिदिन प्रातः विजयार्थ आशीर्वाद मांगने हेतु आयें दुर्योधन को शाप न देकर, महाविनाश को रोकने में असफल रही।

माता कुन्ती भी परोक्ष रूप से इस महाविनाश में कुछ कारण बनी। अपने दत्तकगृहीत पिता कुन्तिभोज के घर में कौमार्यावस्था में दुर्वासादत्त पराविद्या से देव (=दिव्य भौतिक पदार्थ) में स्थित रेतस् के धारण के द्वारा कर्ण को जन्म देने की बात को अपने पिता आदि को न बताकर, बालक कर्ण का परित्याग करके, फिर वन में पुत्रप्राप्ति की अदम्य लालसा वाले अपने पति पाण्डु को कर्णजन्म की बात को न बताकर तथा कौरव-पाण्डवों के शस्त्रप्रदर्शन के समय कर्ण के द्वारा अर्जुनसमान अस्त्रकौशल दिखाने के समय "कर्ण मेरा पुत्र है और पाण्डवों का अग्रज है" इस बात को छिपाकर कुन्ती ने बड़ा अनुचित कार्य किया। रङ्गभूमि में प्रवेश के समय यदि कुन्ती साहस करके वास्तविकता को प्रकट कर देती, तो पाण्डव पांच नहीं छः होते। दुर्योधन भी युद्धमदान्ध नहीं बनता।

अर्जुन ने अपने यश के लिये निरपराध एकलव्य का अंगूठा कटवाकर अपने गुरु द्रोण से महाअन्याय करवाया। अर्जुन अपने, अन्दर-बाहर से समान स्वभाव वाले अग्रज भीमसेन के साथ मिलकर युधिष्ठिर को द्यूतक्रीडा से रोक सकता था। वनवास

काल में चित्रसेन गन्धर्व की कैद से दुर्योधन को छुड़वाकर अर्जुन ने अदूरदर्शिता वाली दुष्परिणामिनी दया दिखाई। फिर विराट की गौओं के दुर्योधन-दस्यु-दल से छुड़वाने के प्रसंग में द्रोण-कृप-कर्ण-भीष्म को पराजित करने के बाद सामने आये दुर्योधन को जानबूझकर भागने का अवसर देकर अर्जुन ने मूर्खतापूर्ण कार्य किया।

इन्हीं सब बातों का इस पुस्तक में विस्तार से सप्रमाण विवेचन किया गया है। हो सकता है, अनेक विषयों में मेरे से बहुतों का मतवैभिन्य हो। मेरा इस पुस्तक को लिखने का यही प्रयोजन है, कि हम इस महाविनाशक युद्ध के कारणों से शिक्षा लें और साथ ही अन्याय-अत्याचार के मूकदर्शक न बनें। झूठी दया दिखाकर पापी अत्याचारी के पाप अत्याचार को बढ़ावा न दें। सदा न्याय और धर्म का पक्ष लें।

प्र.ज्येष्ठ कृष्णा दशमी वि.सं. २०६४ — पुरोवक्ता—

जयपुर — सत्यानन्द वेदवागीश

टिप्पणियाँ –

A. एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः' (मनु. २.२०)

B. अतः किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्त्तिनःकेचित् सुद्युम्न-भूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्न-कुवलयाश्व-यौवनाश्व-वद्ध्र्यश्वाश्वपति-शशबिन्दु-हरिश्चन्द्राऽम्बरीष-ननक्तु-शर्याति-ययाति-अनरण्याक्षसेनादयः। अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः' (मैत्रायण्युप. १.५)

C. आसमुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योगर्यावर्त्तं विदुर्बुधाः' (मनु. २.२२)

D. आर्याम्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो। नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम्। गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम्...। (महाभा.भी. ९.१३,१४)

E. अत्र ते कीर्त्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्। प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च॥ पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः। ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च। तथैव मुचुकुन्दस्य शिवेरौशीनरस्य च। ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा। कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः। सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव

च। अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम्। सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्॥ (महाभा.भी. ९.५-९)

F. ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो दिवसे द्वितीये प्रहरे तदुत्तरार्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे... वैक्रमाब्दे... अयने... ऋतौ... मासे... पक्षे... तिथौ... नक्षत्रे... द्वीपे...देशे...नगरे...।

G. विस्तृत विवरण के लिये देखें – भगवद्दत्त कृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास (प्रथम भाग, पृ. १–१७)

H. 'जाह्नवी' (रघुनन्दन प्रसाद शर्मा)

I. रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, 'जाह्नवी' नवंबर, २००१

ग्रन्थ में चर्चित मुख्य व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय

अञ्जनपर्वा – घटोत्कच का पुत्र। हिडिम्बा और भीमसेन का पौत्र।

अधिरथ – कर्ण का पालक पिता। राधा का पति। संग्रामजित् का पिता।

अनिरुद्ध – प्रद्युम्न का पुत्र। श्रीकृष्ण का पौत्र। वज्र का पिता।

अनुविन्द – धृतराष्ट्र का पुत्र। दुर्योधन का भाई।

अभिमन्यु – अर्जुन और सुभद्रा का पुत्र। उत्तरा का पति। परिक्षित् का पिता।

अम्बा – काशिराज और कौसल्या की ज्येष्ठ पुत्री।

अम्बालिका – काशिराज और कौसल्या की पुत्री। विचित्रवीर्य की द्वितीय पत्नी। पाण्डु की माता।

अम्बिका – काशिराज और कौसल्या की पुत्री। विचित्रवीर्य की प्रथम पत्नी। धृतराष्ट्र की माता।

अर्जुन – पाण्डु और कुन्ती का पुत्र। युधिष्ठिर और भीम का अनुज। विचित्रवीर्य का पौत्र। सुभद्रा, चित्राङ्गदा और उलूपी का पति। श्रुतकीर्त्ति, अभिमन्यु, बभ्रुवाहन और इरावान् का पिता।

अश्वत्थामा – द्रोण और कृपी का पुत्र। कृपाचार्य का भानजा।

उत्तर – विराट और सुदेष्णा का पुत्र। शङ्ख और श्वेत का भाई।

उत्तरा – विराट और सुदेष्णा की पुत्री। अर्जुन (बृहन्नला) की शिष्या। अभिमन्यु की पत्नी। परिक्षित् की माता।

उपकीचक – विराट के सेनापति कीचक के छोटे भाई।

ऋतायन – मद्रराज शल्य और माद्री के पिता। नकुल-सहदेव के नाना।

कर्ण – कुन्ती का जाया पुत्र। राधा और अधिरथ द्वारा पालित पुत्र। चित्रसेन आदि का पिता।

काशिराज – अम्बा-अम्बिका-अम्बालिका के पिता। कौसल्या के पति।

कीचक – सूतराज केकय और मालवी का पुत्र। विराट-पत्नी सुदेष्णा का भाई। विराट का सेनापति।

कुन्तिभोज – शूरसेन के फुफेरे भाई। पुरुजित् का सहोदर भाई। कुन्ती के पालक पिता।

कुन्ती – शूरसेन की पुत्री। कुन्तिभोज की दत्तक पुत्री। बाल्यकाल का नाम पृथा। पाण्डु की पत्नी। युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन की माता।

कृपाचार्य – शरद्वान् का पुत्र। कृपी का भाई। द्रोण का साला। अश्वत्थामा का मामा।

कृपी – शरद्वान् की पुत्री। कृपाचार्य की बहिन। द्रोण की पत्नी। अश्वत्थामा की माता।

कृष्ण – वसुदेव और देवकी के पुत्र। शूरसेन के पौत्र। सुभद्रा के भाई। रुक्मिणी और सत्यभामा के पति। प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण के पिता। अर्जुन के अजर्य सखा।

कौसल्या – काशिराज की पत्नी। अम्बा आदि की माता। कहीं-कहीं अम्बालिका को भी कौसल्या कहा गया है।

{क्षत्रंजय, क्षत्रदेव, क्षत्रधर्मा, क्षत्रवर्मा}– धृष्टद्युम्न के पुत्र। द्रुपद यज्ञसेन के पौत्र।

गङ्गा – शान्तनु की पत्नी। देवव्रत भीष्म की माता। प्रतीप की पुत्रवधू।

गान्धारी – गान्धारराज सुबल की पुत्री। शकुनि, अचल और वृषक की बहिन। धृतराष्ट्र की पत्नी, दुर्योधन आदि की माता।

घटोत्कच – हिडिम्बा और भीमसेन का पुत्र। अञ्जनपर्वा का पिता।

चित्रसेन – एक गन्धर्वराज। कर्ण का एक पुत्र।

चित्राङ्गद – शान्तनु और सत्यवती का ज्येष्ठ पुत्र। विचित्रवीर्य का अग्रज।

दुःशासन – धृतराष्ट्र-गान्धारी का पुत्र। दुर्योधन का अनुज।

दुर्योधन – धृतराष्ट्र-गान्धारी का ज्येष्ठ पुत्र। लक्ष्मण का पिता।

दुर्विषह – धृतराष्ट्र-गान्धारी का पुत्र। दुर्योधन का अनुज।

देवकी – देवक की पुत्री। उग्रसेन की भतीजी। वसुदेव की पत्नी। श्रीकृष्ण की जननी।

द्रुपद – पृषत् के पुत्र। अपरनाम-यज्ञसेन। धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के पिता।

द्रोणाचार्य – भरद्वाज के पुत्र। कृपी के पति। अश्वत्थामा के पिता। कृपाचार्य के बहनोई। कौरव-पांण्डवों के गुरु।

द्रौपदी – अपरनाम-कृष्णा। द्रुपद की पुत्री। धृष्टद्युम्न की बहिन। पाण्डव-पत्नी। प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्त्ति, शतानीक और श्रुतकर्मा की माता। इन्द्रप्रस्थ-साम्राज्य की महारानी।

धृतराष्ट्र – विचित्रवीर्य+अम्बिका का पुत्र। गान्धारी का पति। दुर्योधन तथा युयुत्सु आदि और दुःशला का पिता। पाण्डु का अग्रज।

धृष्टद्युम्न – द्रुपद का पुत्र। द्रौपदी का भाई। पाण्डवसेना का सेनापति।

नकुल – माद्री का बड़ा पुत्र। सहदेव का अग्रज। शल्य का भानजा। चतुर्थ पाण्डव। करेणुमती का पति। निरमित्र का पिता।

परिक्षित् – अभिमन्यु+उत्तरा का पुत्र। जनमेजय का पिता। युधिष्ठिर के बाद हस्तिनापुर का राजा।

पाण्डु – विचित्रवीर्य+अम्बालिका का पुत्र। कुन्ती का पति। पाण्डवों का पिता।

प्रतीप – प्रतिश्रवा के पुत्र। शैव्या-सुनन्दा के पति। देवापि, शान्तनु और बाह्लीक के पिता। देवव्रत भीष्म के दादा।

बलराम – वसुदेव+रोहिणी के पुत्र। श्रीकृष्ण के अग्रज।

बाह्लीक (बाह्लिक) – प्रतीप + सुनन्दा के कनिष्ठ पुत्र। कौरव सेना के एक सेनापति। सोमदत्त के पिता। भूरि, भूरिश्रवा और शल के दादा।

भीमसेन – पाण्डु+कुन्ती के मध्यम पुत्र। हिडिम्बा और बलन्धरा के पति। घटोत्कच, सर्वग और सुतसोम के पिता। युधिष्ठिर के अनुज। अर्जुन के अग्रज।

भीष्म – देवव्रत भीष्म। शान्तनु+गङ्गा के पुत्र। कौरव-पाण्डवों के पितामह। देवापि और बाह्लीक के भतीजे। कौरव-सेना के मुख्य सेनापति।

भूरिश्रवाः – सोमदत्त का पुत्र। बाह्लीक का पौत्र। भूरि और शल का अग्रज।

माद्री – मद्रराज ऋतायन की पुत्री। शल्य की बहिन । पाण्डु की द्वितीय पत्नी। नकुल-सहदेव की माता।

युधिष्ठिर – पाण्डु+कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र। देविका का पति। प्रतिविन्ध्य और यौधेय का पिता।

युयुत्सु – धृतराष्ट्र और वैश्यजातीया महारानी का पुत्र।

राधा – सूत अधिरथ की पत्नी। संग्रामजित् की माता। कर्ण की पालनकर्त्री माता।

वज्र – अनिरुद्ध का पुत्र। प्रद्युम्न का पौत्र। श्रीकृष्ण का प्रपौत्र। पाण्डवों के पश्चात् इन्द्रप्रस्थ का राजा।

विकर्ण – धृतराष्ट्र+गान्धारी का पुत्र। दुर्योधन का अनुज। न्याय-पक्ष-ग्राही।

विदुर – विचित्रवीर्य+अम्बिका-सेविका के पुत्र। धृतराष्ट्र और पाण्डु के भाई। धृतराष्ट्र के उपदेष्टा नीतिमान् निर्भीक सत्यवक्ता मन्त्री।

विन्द – धृतराष्ट्र+गान्धारी का पुत्र।

विराट – मत्स्यदेश के राजा। सुदेष्णा और सुरथा के पति। उत्तर, उत्तरा, शङ्ख और श्वेत के पिता।

विविंशति – धृतराष्ट्र+गान्धारी का पुत्र।

शकुनि – गान्धारराज सुबल का पुत्र। गान्धारी, अचल और वृषक का भाई। उलूक का पिता। दुर्योधन का कपटद्यूती मामा।

शङ्ख – विराट+सुदेष्णा का पुत्र। उत्तर और उत्तरा तथा श्वेत का भाई।

शल्य – मद्रराज ऋतायन का पुत्र। माद्री का भाई। नकुल-सहदेव का मामा।

शान्तनु – प्रतीप+शैव्यासुनन्दा के पुत्र। गङ्गा और सत्यवती के पति। देवव्रत भीष्म, चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के पिता। देवापि और बाह्लीक के भाई।

शाल्व – आकाशचारी 'सौभ' नामक विमान का स्वामी राजा। अम्बा का मनचीता पति।

शिशुपाल – चेदिदेश का राजा। दमघोष का पुत्र।

शैव्या सुनन्दा – प्रतीप की पत्नी। देवापि, शान्तनु और बाह्लीक की माता। देवव्रत भीष्म की दादी।

श्रुतकीर्त्ति – अर्जुन-द्रौपदी का पुत्र।

श्वेत – विराट+सुरथा का पुत्र। उत्तर, उत्तरा और शङ्ख का भाई।

संग्रामजित् – सूत अधिरथ और राधा का पुत्र।

सत्यभामा – सत्रजित् की पुत्री। श्रीकृष्ण की पत्नी।

सत्यवती – उपरिचरवसु+अद्रिका की पुत्री। दाशराज की पालित पुत्री। शान्तनु की द्वितीय पत्नी। चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य की माता।

सहदेव – पाण्डु+माद्री का पुत्र। नकुल का अनुज। पञ्चम पाण्डव। शल्य का भानजा।

सात्यकि(युयुधान)– वृष्णिवंशी सत्यक के पुत्र। शिनि के पौत्र। यौयुधानि के पिता।

सुदेष्णा – अपरनाम चित्रा। केकयराज की पुत्री। विराट की द्वितीय पत्नी। उत्तर, उत्तरा और शङ्ख की माता।

सुबल – गान्धार देश का राजा। गान्धारी, शकुनि, अचल और वृषक का पिता।

सुभद्रा – वसुदेव+देवकी की पुत्री। श्रीकृष्ण और सारण की सगी बहिन। अर्जुन की पत्नी। अभिमन्यु की माता।

सोमदत्त – बाह्लीक के पुत्र। प्रतीप के पौत्र। भूरि, भूरिश्रवा और शल के पिता।

हिडिम्बा – भीमसेन की राक्षसजातीया पत्नी। घटोत्कच की माता।

०००

॥ ओ३म् ॥

क्या महाभारत–युद्ध रोका नहीं जा सकता था?

(लाखों नरवीरों की होने वाली हत्या, लाखों निरपराध पशुओं के सम्भाव्य वध, लाखों स्त्रियों के भविष्यत् वैधव्य और लाखों बच्चों की होने वाली अनाथता की अनदेखी करने वाले कौन ?)

सोये हुए पाण्डवपक्ष के लोगों के वध के पश्चात् अश्वत्थामा का मरणासन्न दुर्योधन को सन्देश–

'हे राजन् दुर्योधन ! यदि आपमें कुछ प्राणशक्ति मौजूद हो, तो मेरी एक बात सुनिये । इससे आपके कानों को बड़ा आनन्द मिलेगा । अब पाण्डवों के पक्ष में वे पाँचों भाई, श्रीकृष्ण और सात्यकि; ये सात वीर बचे हैं और हमारी ओर मैं, कृतवर्मा और आचार्य कृप–ये तीन बाकी हैं । द्रौपदी के सब पुत्र, धृष्टद्युम्न के बच्चे तथा समस्त पाञ्चाल और युद्ध से बचे हुए मत्स्य वीरों का सफाया कर दिया गया है । पाण्डवों को जो बदला चुकाया गया है, उस पर ध्यान दीजिये । अब उनके भी बच्चे मार दिये गये हैं। आज उनके शिविर में जितने योद्धा और हाथी घोड़े थे उन सभी को मैंने तहस–नहस कर दिया है । आज पापी धृष्टद्युम्न को भी मैंने पशु की तरह पीट–पीट कर मार डाला है'[1] ।

---

[1]'अश्वत्थामा समुद्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् । दुर्योधन ! जीवसि त्वं वाक्यं श्रोत्रसुखं शृणु ॥ सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास् त्रयो वयम् । ते चैव भ्रातरः पञ्च. वासुदेवोऽथ सात्यकिः ॥ अहं च कृतवर्मा च कृपः शारद्वतस्तथा ॥ द्रौपदेयाः हताः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः । पञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्यशेषं च भारत ॥ कृते प्रतिकृतं पश्य हतपुत्रा हि पाण्डवाः ॥ सौप्तिके शिविरं तेषां हतं सनरवाहनम् ॥ मया च पापकर्माऽसौ धृष्टद्युम्नो महीपते। प्रविश्य शिविरं रात्रौ पशुमारेण मारितः'॥ (महाभा. सौ. ९.४७–५२)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में सुप्तावस्था में मारे गये वीरों और प्राणियों की संख्या–

दुर्योधन के युद्धभूमि से तालाब में छिपने हेतु भागते समय पाण्डवपक्ष के निम्न. गणनानुसार योद्धा आदि बचे थे। २०४०० बीस हजार चार सौ मनुष्य, ९००० नौ हजार घोड़े, ७०० सात सौ हाथी[2]। उनमें से ९ नौ (पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, युयुत्सु, धृष्टद्युम्न का सारथि) शिविर के बाहर गये हुए होने के कारण शेष रहे। अर्थात् क्रूर अश्वत्थामा ने उल्लू के कृत्य का अनुसरण करते हुए, कृतवर्मा और कृपाचार्य के सहयोग से रात्रि में सोये हुए २०३९१ बीस हजार तीन सौ इकराणवे नरवीरों का, ९००० नौ हजार घोड़ों का और ७०० सात सौ हाथियों का वध शस्त्रों के द्वारा तथा अग्निदाह के द्वारा कर दिया[3]।

वेदद्वारा निन्दित उलूक-कृत्य का अश्वत्थामा द्वारा अनुसरण –

वेद में उल्लू के आचरण को राक्षसी कृत्य कहा गया है और इस कृत्य के विनाश की हिदायत दी गई है[4]।

किन्तु पठितवेद होते हुए भी वेदादेश की अवहेलना करते हुए अश्वत्थामा ने

---

[2]'रथानां द्वे सहस्रे तु सप्त नागशतानि च। पञ्च चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः। एतच्छेषमभूद् राजन् पाण्डवानां महद् बलम्' (महाभा.शल्य २९.२३)

[3]'तांस्तु निष्पतितान् त्रस्तान् शिविराजीवितैषिणः। कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः। विस्रस्तयन्त्रकवचान् मुक्तकेशान् कृताञ्जलीन्। वेपमानान् क्षितौ भीतान् नैव कांश्चिदमुञ्चताम्॥ नामुच्यत तयोः कश्चित् निष्क्रान्तः शिविराद् बहिः। कृपश्चैव महाराज! हार्दिक्यश्चैव दुर्मतिः। भूयश्चैव चिकीर्षन्तौ द्रोणपुत्रस्य तौ प्रियम्। त्रिषु देशेषु ददतुः शिविरस्य हुताशनम्'॥ (महाभा.सौ. ८.१०६-११०)

[4]'उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र'॥ (ऋ. ७.१०४.२२)

[5]क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत। न वै स्म स जगामाथ निद्रां सर्प इव श्वसन्॥ ...न लेभे स तु निद्रां वै दह्यमानो हि मन्युना। अपश्यत्तं महाबाहुर्न्यग्रोधं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

उल्लूकृत्य का अनुसरण किया–'क्रोध और उद्वेग से भरा हुआ अश्वत्थामा तब वन में सो नहीं सका और सर्प के समान फुंफकारता रहा।...। मन्यु से सुलगते हुए उसको नींद आई ही नहीं। उसने उस समय कौओं के घोंसलों से युक्त विशाल वट वृक्ष की ओर देखा।... उस पर चारों ओर कौए बेखटके सोये हुए थे। तभी अश्वत्थामा ने उस वृक्ष पर एक विशाल उल्लू को देखा।...उस उल्लू ने सोये हुए बहुत से कौओं को मार डाला और अत्यन्त प्रसन्न हुआ। शायद उसने दिन का बदला लिया हो। उल्लू के द्वारा रात्रि में किये गये इस कपटपूर्ण कृत्य को देखकर अश्वत्थामा के भी वैसे ही भाव बन गये। द्रोणपुत्र ने इसे उल्लू द्वारा दिया गया साचरण उपदेश समझा। उसने निश्चय किया, कि मैं युद्ध में तो पाण्डवों को मार नहीं सकता, सो अब छलकपट से शत्रुओं का नाश करके अपने लक्ष्य को सफल बनाना चाहिये[5]।

द्रोणाचार्य भी अश्वत्थामा को चंचलमति और असत्पथगामी मानते थे –

'वही परमास्त्र उन्होंने प्रसन्न होकर अर्जुन को भी दिया है। अश्वत्थामा बड़ा असहनशील है। उसने तो अकेले अपने आपको ही (=ब्रह्मास्त्र को) सिखाने की प्रार्थना की थी। आचार्य इसकी चपलता ताड़ गये थे और उन्होंने इसे यह आदेश दिया,

---

वायसैर्युतम् ॥ ... सुप्तेषु तेषु काकेषु विश्रब्धेषु समन्ततः। सोऽपश्यत् सहसा यान्तमुलूकं घोरदर्शनम् ॥... सुप्तान् जघान सुबहून् वायसान् वायसान्तकः।... तांस्तु हत्वा ततः काकान् कौशिको मुदितोऽभवत् ॥ प्रतिकृत्य यथाकामं शत्रूणां शत्रुसूदनः। तद् दृष्ट्वा सोपधं कर्म कौशिकेन कृतं निशि। तद्भावकृतसंकल्पो द्रौणिरेकोऽन्वचिन्तयत्। उपदेशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे।...। शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तः कालश्च मे मतः। नाद्य शक्या मया हन्तुं पाण्डवा जितकाशिनः। छद्मना च भवेत् सिद्धिः शत्रूणां च क्षयो महान् ॥ (महाभा. सौ. १.३३...४६)

6'तन्महात्मा महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम्। प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनञ्जयम्। तं पुत्रोऽप्येक एवैनमन्वयाचदमर्षणः। ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव ॥ विदितः चापलं ह्यासीदात्मजस्य दुरात्मनः। सर्वधर्मविदाचार्यः सोऽन्वशात् ततः सुतम् ॥ परमापद्गतेनापि न स्म तात! त्वया रणे। इदमस्त्रं प्रयोक्तव्यं मानुषेषु

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कि 'बेटे! बहुत बड़ी आपत्ति में पड़ जाने पर भी तुम इसका प्रयोग मत करना, विशेषतः मनुष्यों पर तो इसे छोड़ना ही मत; क्योंकि मैं देखता हूँ, तुम सत्पुरुषों के मार्ग पर स्थिर रहने वाले नहीं हो[6]।

अश्वत्थामा की बुद्धि के चञ्चलमतित्व और असत् पुरुषों के अनुकरण का ही परिणाम था, कि उसने क्रोध में भर कर उल्लू-कृत्य का अनुसरण किया, जब कि वह युद्ध के बीच में ही दुर्योधन से लड़ाई रोकने और पाण्डवों के साथ सन्धि करके शान्त जीवन जीने की नेक सलाह दे चुका था –

'(हे धृतराष्ट्र!) तब (=कर्ण को सेनापति बनाने के समय) अश्वत्थामा ने दुर्योधन को सान्त्वना दिलाते हुए उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा – हे दुर्योधन! तुम प्रसन्न हो जाओ, शान्त होओ और पाण्डवों के साथ विरोध न करो। लड़ाई-झगड़े को धिक्कार है। महान् अस्त्रवेत्ता ब्रह्मा समान मेरे पिता द्रोणाचार्य मारे गये, तथा भीष्म पितामह आदि प्रमुख महारथी योद्धा भी मर चुके हैं। ...अब तुम पाण्डवों के साथ मिलकर चिरकाल तक राज्य करो। मेरे मना करने पर अर्जुन शान्त हो जायेगा। श्रीकृष्ण विरोध चाहते ही नहीं हैं। युधिष्ठिर तो सदा प्राणिमात्र के कल्याण की कामना वाले हैं। भीमसेन तथा नकुल-सहदेव युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। तुम्हारे द्वारा पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेने पर, प्रजाओं का कल्याण होगा। तुम अपनी इच्छा की दिशा बदलो। शेष बचे हुए बन्धुजन अपने-अपने नगरों को जावें और सभी सैनिक

विशेषतः। इत्युक्तवान् गुरुः पुत्रं द्रोणः पश्चादथोक्तवान्। न त्वं जातु सतां मार्गे स्थातेति पुरुषर्षभ'। (महाभा. सौ. १२.५-९)

[7]'अथाब्रवीद् द्रोणसुतस्तवात्मजं करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन्। प्रसीद दुर्योधन! शाम्य पाण्डवैरलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम्॥ हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित् तथैव भीष्म-प्रमुखा महारथाः। अहं त्ववध्यो मम... धनञ्जयः शाम्यति वारितो मया जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति। युधिष्ठिरो भूतहिते रतः सदा वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ॥ त्वया तु पार्थैश्च कृते च संविदे प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव। व्रजन्तु शेषाः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युद्धस्थली का त्याग कर दें। हे राजन्! यदि तुम मेरी बात अनसुनी करोगे, तो निश्चय ही तुम युद्ध में शत्रुओं के द्वारा मारे जाओगे[7]।

इतना ही नहीं, अश्वत्थामा आरम्भ से ही दुर्योधन-दल की कुनीतियों के विरुद्ध था। विराटराज की गौओं के हरण के समय युद्ध में भी उसने दुर्योधन और कर्ण से कहा था –

'भला जुए से राज्य पाकर कौन क्षत्रिय सन्तुष्ट हो सकता है? परन्तु इस धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन को इसी में सन्तोष है; क्योंकि यह क्रूर और निर्दयी है। जैसे शिकारी शठता और छलकपट से भरे हुए उपायों द्वारा जीवन-निर्वाह करता है, वैसे ही कपटपूर्ण वृत्ति से धन पाकर कौन बुद्धिमान् पुरुष अपने ही मुँह अपनी बड़ाई करेगा? दुर्योधन! तुमने जिन पाण्डवों का धन, कपटद्यूत के द्वारा हर लिया है; उनमें से धनञ्जय, नकुल या सहदेव किसको कब युद्ध में हराया है? वह कौनसा द्वन्द्व युद्ध हुआ था, जिसमें तुमने अर्जुन आदि में से किसी को जीता हो?॥ युधिष्ठिर अथवा भीमसेन तुम्हारे द्वारा किस युद्ध में परास्त किये गये हैं? आज जिस इन्द्रप्रस्थ पर तुम्हारा अधिकार है, उसे पहले तुमने किस युद्ध में जीता था?॥ हे दुष्ट कर्म करने वाले पापी? बताओ तो, कौनसा ऐसा युद्ध हुआ था, जिसमें तुमने द्रौपदी को जीत लिया हो? तुम लोग तो अकारण ही एकवस्त्रा बेचारी द्रौपदी को रजस्वलावस्था में सभा के भीतर घसीट लाये थे॥...। हम देखते हैं, मनुष्य हों या अन्य प्राणी; सबमें अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सहनशीलता की एक सीमा होती है। द्रौपदी को जो कष्ट दिये गये हैं, उन्हें अर्जुन कभी सहन नहीं कर सकते। कष्ट देने वालों को क्षमा नहीं कर सकते।...। धर्मज्ञों का कहना है, कि गुरु को पुत्र के बाद शिष्य ही प्रिय होता है; इस कारण से भी अर्जुन ही द्रोणाचार्य को प्रिय हैं॥ हे दुर्योधन! जैसे तुमने जुए का खेल किया, जिस तरह से तुमने इन्द्रप्रस्थ-राज्य का अपहरण

स्वपुराणि बान्धवा निवृत्तयुद्धाश्च भवन्तु सैनिकाः ॥ न चेद् वचः श्रोष्यसि मे नराधिप! ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभिर्युधि'॥ (महाभा.कर्ण.८८.२०-२४)

[8]'प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टुमर्हति। तथा नृशंसरूपोऽयं धार्तराष्ट्रो निर्घृणः॥ तथाऽधिगम्य वित्तानि को विकत्थेद् विचक्षणः। निकृत्या वञ्चनायोगैश्चरन्

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

किया और जैसे तुम भरी सभा में द्रौपदी को घसीट लाये, वैसे ही अर्जुन से युद्ध भी तुम्हीं करो॥ जैसे तुमने अपने कपटद्यूती शकुनि मामा के सहारे जुए का खेल रचा, उसी के सहारे अब युद्ध भी करो॥ भले ही दूसरे योद्धा युद्ध करें, मैं अर्जुन से युद्ध नहीं करूँगा[8]।

इस प्रकार ज्ञात हुआ, कि अश्वत्थामा युद्ध से पहले और युद्ध के मध्य में भी दुर्योधन द्वारा अपनाये गये नृशंस कार्यों के विरुद्ध था। यहाँ तक कि अपने पिता द्रोण के मर जाने पर भी इतना क्षुब्ध नहीं हुआ। द्रोण के सिर काटने वाले धृष्टद्युम्न को भी उसने उस समय सहन कर लिया। क्योंकि पुत्र के मृत्यु का समाचार (झूठा) सुनकर, द्रोण ने योगविधि से स्वतः प्राण त्याग दिये थे। तब निष्प्राण द्रोण के शरीर के सिर को धृष्टद्युम्न ने काटा था। उसी अश्वत्थामा ने उल्लू को देखकर आपा खोकर कुकृत्य किया।

महाभारत युद्ध में मारे गये नरवीरों और प्राणियों की संख्या

'धृतराष्ट्र ने...युधिष्ठिर से पूछा, 'युधिष्ठिर! इस युद्ध में जो सेनाएँ मारी गई हैं, उनके परिमाण का तुम्हें पता हो, तो हमें बताओ'। युधिष्ठिर ने कहा–महाराज! इस युद्ध में एक अरब, छासठ करोड़, बीस हजार वीर मारे गये हैं। इनके सिवा चौदह हजार

वैतंसिको यथा॥ कतमद् द्वैरथं युद्धं यत्राजैषीर्धनञ्जयम्। नकुलं सहदेवं वा धनं येषां त्वया हृतम्॥ युधिष्ठिरो जितः कस्मिन् भीमश्च बलिनां वरः। इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन् संग्रामे निर्जितं पुरा॥ तथैव कतमद् युद्धं यस्मिन् कृष्णा जिता त्वया। एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन् रजस्वला॥... यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे। अन्येषामपि सत्त्वानामपि कीटपिपीलकैः॥ द्रौपद्याः सम्परिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति॥... पुत्रादनन्तरं शिष्य इति धर्मविदो विदुः। एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः॥ यथा त्वमकरोर्द्यूतमिन्द्रप्रस्थं यथाऽऽहरः। यथाऽऽनैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम्॥... दुर्द्यूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह।... यथा सभायां द्यूतं त्वं मातुलेन सहाऽकरोः। तथा युध्यस्व संग्रामे सौबलेन सुरक्षितः॥ युध्यन्तां कामतो योधा नाहं योत्स्ये धनञ्जयम्॥ (महाभा.वि. ५१.८–२८)

[9]'जीवतां परिमाणज्ञः सैन्यानामसि पाण्डव! हतानां यदि जानीषे परिमाणं वदस्व मे॥ युधिष्ठिर उवाच–दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः। कोट्यः षष्टिश्च षट्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

योद्धा अज्ञात हैं और दस हजार एक सौ पैंसठ अन्य वीरों का भी पता नहीं है[9]।

इस कथन को अतिशयोक्तिपूर्ण भी मानें, तो भी अक्षौहिणी के परिमाण से भी कुल ४७,२३,९२० सैंतालीस लाख, तेईस हजार, नौ सौ बीस नर वीर, ९,९६,३०० नौ लाख, छियानवें हजार, तीन सौ घोड़े और ३,४५,०६० तीन लाख, पैंतालीस हजार, साठ हाथी, इतने ये अठारह अक्षौहिणी सेना में थे। क्योंकि एक अक्षौहिणी में २,६२,४४० पुरुष (=१०९३५० पदाति+४३७४० रथी योद्धा और सारथि+४३७४० गजयोद्धा और महावत+६५६१० घुड़सवार थे। इनको अठारह से गुणा करने पर ४७,२३,९२० पुरुष होते हैं। घोड़ों और हाथियों की संख्या ऊपर दी हुई है[10]।

अठारह अक्षौहिणी सेना के ४७,२३,९२० नरवीरों में से कुल बारह नरवीर (=पांच पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, युयुत्सु, धृष्टद्युम्नसारथि; अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा) बचे। अर्थात् ४७,२३,९०८ योद्धाओं का-वीरों का वध हो गया। परिणामस्वरूप आधा करोड़ स्त्रियाँ विधवा हो गईं। करोड़ों बच्चे अनाथ हो गये और १३,४१,३६० तेरह लाख, इकतालीस हजार, तीन सौ साठ हाथी-घोड़े, जो कि सर्वथा निरपराध थे, मृत्यु का ग्रास बने। रथ-वांहनादि की भौतिक क्षति भी बहुत अधिक हुई। वातावरण भी अत्यधिक प्रदूषित हुआ।

चैव ह्यस्मिन् राजन् मृधे हताः॥ अलक्षितानां वीराणां सहस्राणि चतुर्दश। दश चान्यानि राजेन्द्र! शतं षष्टिश्च पञ्च च॥ (महाभा.स्त्री. २६.८-१०)

10 'अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः। संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः॥ शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः। गजानां च परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्॥ ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि तथैव च। नराणामपि पञ्चाशच्छतानिं त्रीणि चानघाः॥ पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च। दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया॥ एतामक्षौहिणीं प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः॥ यां वः कथितवानस्मि विस्तरेण तपोधनाः॥ एतया संख्यया ह्यासन् कुरुपाण्डवसेनयोः। अक्षौहिण्यो द्विजश्रेष्ठाः पिण्डिताष्टादशैव तु॥ समेतास्तत्र वै देशे तत्रैव निधनं गताः। कौरवान् कारणं कृत्वा कालेनाद्भुतकर्मणा॥ (महाभा. आदि. २.२३-२९)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

नाश! महानाश!! अभूतपूर्व नाश!!! इस महानाश को देखकर काल भी सहम गया। ठहर गया। ऐसा क्यों हुआ? इस महाविनाश को रोका नहीं जा सकता था क्या?

इस अतिविनाश को रोकने में कुछ लोग समर्थ थे क्या? हाँ! कुछ अवश्य प्रभावी थे। उन प्रभावी समर्थ लोगों ने अपनी जिम्मेदारी निभाई क्या? काल ने पीछे मुड़कर देखा–

काल द्वारा सिंहावलोकन

काल सबसे पूर्व छः पीढ़ियों (१. प्रतीप, २. शान्तनु, ३. चित्राङ्गद-विचित्रवीर्य, ४. धृतराष्ट्र-पाण्डु-विदुर, ५. युधिष्ठिर-दुर्योधनादि, ६. अभिमन्यु-लक्ष्मण आदि) के साथी और सबसे वृद्ध शरशय्यासीन श्री भीष्म पितामह के पास पहुँचा –

भीष्म पितामह ? [१]

दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को जला मारने के लिये वारणावत भेजना और भीष्म पितामह

क्यों मान्यवर पितामह जी! जब दुर्योधन के कुचक्र के कारण धृतराष्ट्र के द्वारा पाण्डवों को वारणावत भेजे जाने का षड्यन्त्र रचा जा रहा था, क्या उसका आपको ज्ञान नहीं था? ज्ञान तो था, पर आप तटस्थ (=मध्यस्थ) रूप से देख रहे थे[11]।

पाण्डवों को मृत्यु के मुख में धकेले जाने का आपने विरोध क्यों नहीं किया? आपसे तो दासीपुत्र कहे जाने वाले महात्मा विदुर ही ठीक रहे, जिन्होंने दुर्योधन की

[11] दुर्योधन उवाच – 'मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः। यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः'। (महाभा.आदि. ४१.२०)

[12] 'पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सत्यधर्मवित्। बोधयन् पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत्॥ प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः। प्राज्ञं प्राज्ञः प्रलापज्ञः प्रलापज्ञं वचोऽब्रवीत्॥ यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम्। विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद् यथा॥ अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्त्तनम्। यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म–प्रकरण

कुचाल को भांपकर संकेत से युधिष्ठिर को सब कुछ समझाया ही नहीं, अपितु यथासमय अपने विश्वस्त खनक को पाण्डवों के पास वारणावत भेजकर लाक्षागृह में सुरंग खुदवाई और नाविक को भेजकर, लाक्षागृह से बच निकले पाण्डवों को गंगापार पहुँचवा दिया – 'सबके लौट जाने पर (=पाण्डवों को वारणावत जाने के लिये विदा करते समय) अनेक भाषाओं के ज्ञाता विदुरजी ने सांकेतिक भाषा में युधिष्ठिर से कहा–'नीतिज्ञ पुरुष को शत्रु का मनोभाव समझकर, उससे अपनी रक्षा करनी चाहिये। एक ऐसा अस्त्र है, जो लोहे का तो नहीं है, परन्तु शरीर को नष्ट कर सकता है (अर्थात् तुम्हारे लिये शत्रुओं ने ऐसा भवन तैयार किया है, जो आग से भड़कने वाले पदार्थों से बना है) आग घासफूस और सारे जंगल को जला डालती है, परन्तु बिल में रहने वाले जीव उससे अपनी रक्षा कर लेते हैं। यही जीवित रहने का उपाय है (अर्थात् उससे बचने के लिये तुम एक सुरंग तैयार करा लेना) अन्धे को रास्ते और दिशाओं का ज्ञान नहीं होता। बिना धैर्य के समझदारी नहीं आती। मेरी बात को भली-भाँति समझ लो (अर्थात् दिशा आदि का ज्ञान पहले से ही ठीक कर लेना, जिससे रात में भटकना न पड़े)। शत्रुओं के दिये हुए बिना लोहे के हथियार को जो स्वीकार करता है, वह स्याही के बिल में घुसकर आग से बच जाता है (अर्थात् उस सुरंग से यदि तुम बाहर निकल जाओगे, तो उस भवन की आग में जलने से बच जाओगे)। घूमने-फिरने से रास्ते का ज्ञान हो जाता है। नक्षत्रों से दिशा का पता लग जाता है। जिसकी पांचों इन्द्रियाँ वश में हैं, शत्रु उसकी कुछ भी हानि नहीं कर सकते (अर्थात् तुम पांचों भाई एकमत रहोगे, तो शत्रु तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा)। विदुर का संकेत सुनकर युधिष्ठिर ने कहा–"मैंने आपकी बात भली-भाँति

प्रतिघातविदं द्विषः ॥ कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः। न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति॥ नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः। नाधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः॥ अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम्। श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात्॥ चरन् मार्गान् विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः। आत्मना चात्मनः

समझ ली।' विदुर हस्तिनापुर लौट आये। यह घटना फाल्गुन शुक्ल अष्टमी रोहिणी नक्षत्र की है[12]।

'एक सुरंग खोदने वाला विदुर का बड़ा विश्वासपात्र था। उसने पाण्डवों के पास आकर कहा–'मैं खुदाई के काम में बड़ा निपुण हूँ' विदुर की आज्ञा से आपके पास आया हूँ। आप मुझ पर विश्वास कीजिये। विदुर ने संकेत के तौर पर मुझे बतलाया है–'चलते समय मैंने म्लेच्छ भाषा में कुछ कहा था। और उन्होंने 'मैंने आपकी बात समझ ली है' यह कहा था। पुरोचन जल्दी ही आग लगाने वाला है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ'। युधिष्ठिर ने कहा- 'भैया! मैं तुम पर पूरा विश्वास करता हूँ।... इस आग के भय से तुम हमें बचा लो...। तब सुरंग खोदने वाला कारीगर युधिष्ठिर को आश्वासन देकर, खाई की सफाई करने के बहाने अपने काम पर डट गया। उसने उस घर के बीचों बीच एक बड़ी भारी सुरंग बनाई और जमीन के बराबर ही किंवाड़ लगा दिये। पुरोचन आकर देख न ले इसलिये सुरंग का मुँह बिल्कुल बन्द रखा गया'[13]।

पञ्च पीडयन्ननुपीड्यते॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजो युधिष्ठिरः। विदुरं विदुषां श्रेष्ठं ज्ञातमित्येव पाण्डवः॥ (महाभा. आदि. १४४.१९-२७)

13'विदुरस्य सुहृत् कश्चित् खनकः कुशलो नरः। विविक्ते पाण्डवान् राजन्निदं वचनमब्रवीत्। प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो ह्यहम्। पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः। प्रच्छन्नं विदुरेणोक्तः श्रेयस्त्वमिति पाण्डवान् । प्रतिपादय विश्वासादिति किं करवाणि वः॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रावस्यां पुरोचनः। भवनस्य तव द्वारि प्रदास्यति हुताशनम्॥ मात्रा सह प्रदग्धव्याः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः। इति व्यवसितं तस्य धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः॥ किंचिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचासि पाण्डव। त्वया च तत्तथेत्युक्तमेतद् विश्वासकारणम्॥ उवाच तं सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै॥...। सेयमापदनुप्राप्ता क्षत्ता यां दृष्टवान् पुरा। पुरोचनस्याविदितानस्मांस्त्वं प्रति-मोचय॥ स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

'विदुर का भेजा हुआ एक विश्वासपात्र मनुष्य पाण्डवों के पास आया। उसने पाण्डवों को विदुर का बताया हुआ संकेत सुनाया और कहा...। यह नौका तैयार है। आप इस पर चढ़कर गङ्गा पार हो जाइये। उसने उनको गङ्गापार पहुँचा कर पाण्डवों का जय-जयकार किया और उनका कुशल सन्देश लेकर वह विदुर के पास चला गया[14]।

वारणावत में पाण्डवों को रहते हुए एक वर्ष बीत गया-- 'पुरोचन ने देखा कि एक वर्ष के लगभग हो गया, पाण्डव इसमें बड़े विश्वास से निःशङ्क रह रहे हैं। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई[15]।

क्यों पितामह जी! इतने लम्बे समय में आपको उन धर्मारूढ पाण्डव पौत्रों की याद ही नहीं आई! उनकी खैरखबर भी लेने की आपको सुध नहीं आई। आपको यह तो ज्ञात ही था, कि धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वारणावत भेजा था, यह कहकर कि वारणावत

यत्नमास्थितः। परिखामुत्किरन्नाम चकार च महाबिलम्। चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्येनाति महद् बिलम्। कपाटयुक्तमज्ञातं समं भूम्याश्च भारत॥ (महाभा.आदि. १४६.१-१७)

14'ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा। पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम्॥ सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्।... इयं वारिपथे युक्ता नौरप्सु सुखगामिनी।... इत्युक्त्वा स तु तान् वीरान् पुमान् विदुरचोदितः। तारयामास राजेन्द्र गङ्गां नावा नरर्षभान्॥ तारयित्वा ततो गङ्गां पारं प्राप्तांश्च सर्वशः॥ जयाशिषः प्रयुज्याथ यथाऽऽगतमगाद्धि सः। (महाभा.आदि. १४८.४...१४)

15'तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान्। विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः (महाभा.आदि. १४७.१)

16'ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनःपुनः। रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम्। ते ताता! यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते। सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथाऽमराः॥ ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि गायकेभ्यश्च सर्वशः। प्रयच्छध्वं यथाकामं देवा इव सुवर्चसः।

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

भीष्म-प्रकरण

में इस समय मेले-ठेले का आनन्दमय वातावरण है, सो आप लोग मातासहित वहाँ आनन्द मनाकर फिर लौट आना। धृतराष्ट्र ने कहा-"प्यारे पुत्रो ! लोग मुझसे वारणावत की बड़ी प्रशंसा करते हैं। यदि तुम लोग वहाँ जाना चाहते हो तो, हो आओ। आजकल वहाँ मेले की बड़ी धूम है। देखो, वहाँ तुम लोग ब्राह्मणों और गवैयों को खूब दान देना। तथा तेजस्वी देवताओं की तरह विहार करके फिर यहाँ लौट आना'। युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की चाल तुरन्त समझ गये। उन्होंने अपने को असहाय देखकर कहा, 'आपकी जैसी आज्ञा, हमें क्या आपत्ति है?'। उन्होंने कुरुवंश के बाह्लीक, भीष्म, सोमदत्त आदि बड़े बूढ़ों, द्रोणाचार्य आदि तपस्वी ब्राह्मणों तथा गान्धारी आदि माताओं से दीनतापूर्वक कहा,-'हम राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से अपने भाईयों के सहित वारणावत जा रहे हैं[16]।

क्यों पितामह जी! आपने अपने पुत्र (=भतीजे) धृतराष्ट्र से अथवा दुर्योधन से यह पूछने की आवश्यकता नहीं समझी, कि पाण्डव थोड़े समय के लिये मेले में वारणावत गये थे, वे अभी तक क्यों नहीं लौटे? क्या आप इन विषयों में तटस्थ थे? अथवा आप धृतराष्ट्र आदि को व्यर्थ में कुपित नहीं करना चाहते थे, जैसा कि युधिष्ठिर आदि को भान हो गया था[17]।

कंचित् कालं विहृत्यैवमनुभूय परां मुदम्। इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ॥ धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुध्य युधिष्ठिरः। आत्मनश्चाऽसहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम्॥ ततो भीष्मं शान्तनवं विदुरं च महामतिम्। द्रोणं च बाह्लिकं चैव सोमदत्तं च कौरवम्॥ कृपमाचार्यपुत्रं च भूरिश्रवसमेव च। मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान्। पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीं च यशस्विनीम्। युधिष्ठिरः शनैर्दीन उवाचेदं वचस्तदा। रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते। सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात् । (महाभा. आदि. १४२.७-१५)

17'यदि विन्देत चाऽऽकारमस्माकं स पुरोचनः। क्षिप्रकारी ततो भूत्वा प्रदहेदपि हेतुतः।...। अपि चेह प्रदग्धेषु भीष्मोऽस्मासु पितामहः। कोपं कुर्यात् किमर्थं वा कौरवान् कोपयीत सः। (महाभा. आदि. १४५.२२,२४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

हे पितामह जी! दुर्योधन द्वारा पाण्डवों के नाश हेतु रचित इस प्रत्यक्ष षड्यन्त्र की चाल को आप यदि आरम्भ में ही रोक देते, तो दुर्योधन की आगे निकृत्यों के करने की हिम्मत नहीं होती!!

भीष्म पितामह ? [२] द्यूतक्रीडा ?

कपट द्यूत का आयोजन और भीष्म पितामह

क्यों देवव्रत पितामह जी! जब कपटद्यूत के माध्यम से पाण्डवों को जीतकर उनकी सम्पत्ति हथियाने के लिये, दुर्योधन के दुराग्रह के कारण, पुत्रमोही धृतराष्ट्र की आज्ञा से बहुत बड़े द्यूत-सभा भवन का निर्माण हो रहा था और उसे सजाया जा रहा था। तब आपको क्या उसकी कुछ भी भनक नहीं लगी? फिर द्यूत-क्रीडा की वेला आने पर उस द्यूत-सभा-भवन में द्रोणाचार्य आदि के साथ आप भी उपस्थित थे। अनमने ही सही आप दर्शक तो बने[18]।

पितामह जी ! आपने इस द्यूतक्रीड़ा की तैयारी पर और द्यूतक्रीड़ा के समय इस महाव्यसन का विरोध करना अपना कर्त्तव्य क्यों नहीं समझा ? आप तो वेदज्ञान में, नीतिशास्त्रबोध में और धनुर्वेदविज्ञान में अद्वितीय माने जाते थे[19]।

तो जब वेद में द्यूत (=अक्षक्रीड़ा) का निषेध किया है और धर्मशास्त्र में द्यूत को

---

[18] 'उपोह्यमाने द्यूते तु राजानः सर्व एव ते। धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां ततः॥ भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विदुरश्च महामतिः। नातिप्रीतेन मनसा तेऽन्ववर्तन्त भारत'॥ (महाभा.आदि. ६०.१,२)

[19] 'धनुर्वेदे च वेदे च नीत्यां चैवानुरक्षणे। अनृशंसं शुचिं दान्तं सर्वभूतहिते रतम्॥ महारथं त्वत्सदृशं न कञ्चिदनुशुश्रुम'। (महाभा.शा. ५०.२३,२४)

[20] 'अक्षास इदंकुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस् तपनास् तापयिष्णवः।' अक्षैर्मा

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कामज व्यसन बताया गया है और व्यसन को मृत्यु से भी अधिक कष्टकारी माना गया है[20] । तो फिर आपने इसका डटकर विरोध क्यों नहीं किया ?

पितामह जी! आपसे तो विदुर ही ठीक रहे, जिन्होंने द्यूतक्रीड़ा की हानियाँ बताईं, उसका विरोध भी किया, धृतराष्ट्र को चेताया और दुर्योधन को बन्दी बनाने तक का भी आग्रह किया –

विदुर बोले – 'हे राजन्! मैं जुए के उद्योग को बहुत ही अशुभ लक्षण समझ रहा हूँ। आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे जुए के कारण आपके पुत्र और भतीजों में परस्पर वैर-विरोध न हो'। 'आपकी यह आज्ञा उचित नहीं जान पड़ती है । आप ऐसा कदापि न करें। इस जुए से आपके पुत्रों में वैर-विरोध और गृह-कलह हो जायेगा, जिससे सारे वंश का नाश हो सकता है'। 'हे महाराज! जैसे मरणासन्न रोगी को औषध अच्छी नहीं लगती। ठीक वैसे ही मेरी बात आप लोगों को अच्छी नहीं लगेगी। फिर भी मेरी प्रार्थना ध्यान देकर सुनिये। यह पापी दुर्योधन जिस समय गर्भ से बाहर आया था, गीदड़ के

दीव्यः कृषिमित् कृषस्व' (ऋ. १०.३४.७,१३) 'मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ 'पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्। एतत् कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते॥ (मनु. ७.४७,५३)

21 'नाभिनन्दामि ते राजन्! व्यवसायमिमं प्रभो! पुत्रैर्भेदो यथा न स्याद् द्यूतहेतोस्तथा कुरु। (महाभा.सभा. ४९.५६) 'नाभिनन्दे नृपते प्रैषमेतं मैवं कृथाः कुलनाशाद् बिभेमि। पुत्रैर्भिन्नैः कलहस्ते ध्रुवं स्यादेतच्छङ्के द्यूतकृते नरेन्द्र! (महाभा.सभा. ५७.३) 'महाराज! विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि भारत! मुमूर्षोरौषधमिव न रोचेतापि ते श्रुतम्॥ यद् वै पुरा जातमात्रो रुराव गोमायुवद् विस्वरं पापचेताः। दुर्योधनो भरतानां कुलघ्नः, सोऽयं युक्तो भवतां कालहेतुः। गृहे वसन्तं गोमायुं त्वं वै मोहान्न बुध्यसे। दुर्योधनस्य रूपेण, शृणु काव्यां गिरं मम॥ मधु वै माध्विको लब्ध्वा प्रपातं नैव बुध्यते।

समान चिल्लाने लगा था। यह कुलक्षण कुरुवंश के नाश का कारण बनेगा। यह कुलकलङ्क आपके ही घर में रहता है। परन्तु मोहवश आपको इसका ज्ञान नहीं है। मैं आपको नीति की बात बतलाता हूँ। जब शराबी शराब पीकर उन्मत्त हो जाता है, तब उसे अपने शराब पीने का भी होश नहीं रहता है। नशा होने पर वह पानी में डूब मरता है या धरती पर गिर पड़ता है। वैसे ही दुर्योधन जुए के नशे में इतना उन्मत्त हो रहा है, कि उसे इस बात का भी पता नहीं है, कि पाण्डवों से वैर विरोध मोल लेने का फल इसकी घोर दुर्दशा होगी।

एक भोजवंशी राजा ने नगरवासियों के हित के लिये अपने कुकर्मी पुत्र असमञ्जाः का परित्याग कर दिया था'। राजन्! आप अर्जुन को आज्ञा दीजिये कि वह पापी दुर्योधन को कैद कर ले। इसे दण्ड देने पर ही कुरुवंशी सैंकड़ों वर्षों तक सुखी रह सकते हैं। कौएं या गीदड़ के समान दुर्योधन को त्यागकर मयूर अथवा सिंह के समान पाण्डवों को अपने पास रख लीजिये[21]।

'सभ्यो! जुआ खेलना कलह का मूल है। जुए से आपस का प्रेमभाव नष्ट हो जाता है। बड़े भय के बनाव बन जाते हैं। दुर्योधन इस समय उसी विपत्ति की सृष्टि में संलग्न है,' 'इस पहाड़ी शकुनि के द्यूतकौशल से मैं अपरिचित नहीं हूँ। यह छल करना

आरुह्य तं मज्जति वा पतनं चाधि गच्छति॥ सोऽयं मत्तोऽक्षद्यूतेन मधुवन्न परीक्षते॥ प्रपातं बुध्यते नैव वैरं कृत्वा महारथैः॥ विदितं ते महाप्राज्ञ! भोजेष्विवासमञ्जसम्। पुत्रं सं त्यक्तवान् पूर्वं पौराणां हितकाम्यया। त्वन्नियुक्तः सव्यसाची निगृह्णातु सुयोधनम्। निग्रहादस्य पापस्य मोदन्तां कुरवः सुखम्। काकेनेमांश्चित्रबर्हान् शार्दूलान् क्रोष्टुकेन च। क्रीणीष्व पाण्डवान् राजन् मा मज्जीः शोकसागरे॥ (महाभा.सभा. ६२.२-१०)

[22]'द्यूतं मूलं कलहस्याभ्युपैति मिथो भेदं महते दारुणाय। यदास्थितोऽयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रो दुर्योधनः सृजते वैरमुग्रम्॥' जानीमहे देवितं सौबलस्य वेद द्यूते निकृतिं पर्वतीयः। यतः प्राप्तः शकुनिस्तत्र यातु मा यूयुधो भारत पाण्डवेयान्' (महाभा.सभा ६२.२-१०)

बहुत जानता है। बस, अब बहुत हो चुका। यह जिस राह आया है, उसी राह शीघ्र इसे लौटा दीजिये। पाण्डवों के साथ लड़ाई मत ठानिये'[22]।

क्यों पितामह जी! कितना अन्तर है वेदवेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ आपमें और विदुर में! आपने द्यूतक्रीड़ा के विरोध में कुछ भी नहीं कहा, जबकि विदुर ने द्यूत के विरोध में कहने में और चेताने में कोई कसर नहीं छोड़ी। क्यों पितामह जी! इसे क्या आपके शरीर का आलस्य कहें या बुद्धि का प्रमाद (=अनवधानता=लापरवाही=अनदेखी करना) कहें? यदि आप विदुर के समान डटकर द्यूत का विरोध करते, तो निश्चय ही द्रोणाचार्य आदि अन्य भी आपके साथ होते, और फलतः न द्यूत होता और प्रतिफल में न महाभारत-युद्ध होता।

भीष्म पितामह ? [२]

द्रौपदी को भरी सभा में लाने का दुर्योधन का हठ और भीष्म पितामह

जब शकुनि के द्वारा निकृति (=कपट) से द्रौपदी के भी जीत लिये जाने पर दुर्योधन द्वारा क्रमशः विदुर, प्रातिकामी और दुःशासन को, द्रौपदी को भरी सभा में लाने का आदेश दिया गया –

'अब दुर्योधन ने विदुरजी को पुकार कर कहा – 'विदुर ! तुम यहाँ आओ! तुम जाकर पाण्डवों की प्रियतमा सुन्दरी द्रौपदी को शीघ्र ले आओ। वह अभागिनी यहाँ आकर हमारे महल में झाड़ू लगावे और दासियों के साथ रहे'। 'अब मदान्ध दुर्योधन ने

---

[23]'एहि क्षत्तर्द्रौपदीमानयस्व प्रियां भार्यां सम्मतां पाण्डवानाम्। सम्मार्जतां वेश्म परैतु शीघ्रं तत्रास्तु दासीभिरपुण्यशीला' (महाभा.सभा. ६६.१) 'धिगस्तु क्षत्तारमिति ब्रुवाणो दर्पेण मत्तो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः। अवैक्षत प्रातिकामीं सभायामुवाच चैनं परमार्यमध्ये। प्रातिकामिन् द्रौपदीमानयस्व न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः। क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव (महाभा.सभा. ६७.१,२) 'दुःशासनैष मम सूतपुत्रो

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

विदुर को धिक्कार कर भरी सभा में प्रातिकामी से कहा – 'तुम इसी समय जाकर द्रौपदी को ले आओ। पाण्डवों से डरने की कोई बात नहीं है'। 'दुर्योधन ने प्रातिकामी की ओर कठोर दृष्टि से देखकर अपने छोटे भाई दु:शासन से कहा–'यह क्षुद्र प्रातिकामी भीमसेन से डरता है। इसलिये तुम स्वयं जाकर द्रौपदी को पकड़ कर लाओ। ये हारे हुए पाण्डव तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते'[23]।

क्यों पितामहजी! आपकी हिम्मत नहीं हुई कि, आप दुर्योधन को, द्रौपदी को दासी कहने की बात पर धिक्कारते और उसे सभा में द्रौपदी को लाने जैसा आदेश देने से रोकते अथवा प्रातिकामी और दु:शासन को वर्जते, कि तुम दुर्योधन की इस अनुचित आज्ञा को मत मानो। क्या उस समय आपकी बुद्धि में प्रमाद छा गया था? आपसे तो विदुर ही अच्छे रहे, जिन्होंने न केवल दुर्योधन के आदेश की अवहेलना की, अपितु उसके इस कृत्य की निन्दा की–

'विदुरजी ने कहा –'मूर्ख! तुझे पता नहीं है, कि तू फांसी में लटक रहा है और

वृकोदरादुद्विजतेऽल्पचेताः। स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञसेनीं किं ते करिष्यन्त्यवशाः सपत्नाः' (महाभा.सभा. ६७.२५)

[24]विदुर उवाच–'दुर्विभाषं भाषितं त्वादृशेन न मन्द! सम्बुध्यसि पाशबद्धः। प्रपाते त्वं लम्बमानो न वेत्सि व्याघ्रान् मृगः कोपयसेऽतिवेलम्। आशीविषास्ते शिरसि पूर्णकोपा महाविषाः। मा कोपिष्ठाः सुमन्दात्मन् मा गमस्त्वं यमक्षयम्। नहि दासीत्वमापन्ना कृष्णा भवितुमर्हति। अनीशेन हि राज्ञैषा पणे न्यस्तेति मे मतिः। अयं धत्ते वेणुरिवात्मघाती फलं राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रः। द्यूतं हि वैराय महाभयाय मत्तो न बुध्यत्ययमन्तकालम्॥ नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत। ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम्॥ समुच्चरन्त्यतिवादाश्च वक्त्राद्, यैराहतः शोचति रात्र्यहानि। परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु।' 'द्वारं सुघोरं नरकस्य जिह्मं न बुध्यते धृतराष्ट्रस्य पुत्रः। तमन्वेतारो बहवः कुरूणां द्यूतोदये

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि-मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

मरने वाला है। तभी तो तेरे मुँह से ऐसी बात निकल रही है। अरे! तू इन पाण्डव-सिंहों को क्यों क्रोधित कर रहा है ? तेरे सिर पर विषैले साँप क्रोध से फन फैला-फैला कर फुफ्कार रहे हैं। तू उनसे छेड़खानी करके यमपुरी मत जा। देख, द्रौपदी कभी दासी नहीं हो सकती। युधिष्ठिर ने अनधिकार उसे दाँव पर लगाया है। सभासदो! जब बांस का नाश होने पर होता है, तब उसमें फल लगते हैं। मतवाले दुर्योधन ने जड़-मूल से नष्ट होने के लिये ही जुए के खेल से घोर वैर और महाभय की सृष्टि की है। मरणासन्न पुरुष को हिताहित का ज्ञान नहीं होता। किसी को मर्मवेधी पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये। कठोर और उद्वेगकारी वचन का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यह सब अधःपतन का हेतु है। कड़वी बात निकलती तो मुँह से है, पर जिसके लिये निकलती है, उसके मर्म स्थान में चुभकर रात-दिन उसे विह्वल किया करती है। इसलिये ऐसा कभी नहीं करना चाहिये। दुर्योधन बड़े भयंकर और विकट परिणाम के निकट पहुँच गया है। दुःशासन आदि भी इसी की हाँ में हाँ मिलाते हैं। चाहे तूँबा जल में डूब जाय, पत्थर तैरने लगे, परन्तु यह मूर्ख मेरी हितकारी बात नहीं मानेगा। यह मित्रों की श्रेष्ठ और हितकारी बात नहीं सुनता। इसका लोभ बढ़ता जा रहा है। इससे निश्चय होता है, कि शीघ्र ही कौरवों के सर्वस्व-नाश का हेतु भयंकर विध्वंस होगा[24]।

सह दुःशासनेन ॥ मज्जन्त्यलाबूनि शिलाः प्लवन्ते मुह्यन्ति नावोऽम्भसि शश्वदेव। मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति। अन्तो नूनं भविताऽयं कुरूणां सुदारुणः सर्वहरो विनाशः। वाचः काव्याः सुहृदां पथ्यरूपा न श्रूयन्ते वर्धते लोभ एव (महाभा.सभा. ६६.२...१२)

[25]'ततो जवेनाभिससार रोषाद् दुःशासनस्तामभिगर्जमानः। दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम्॥ ये राजसूयावभृथे जलेन महाक्रतौ मन्त्रपूतेन सिक्ताः। ते पाण्डवानां परिभूय वीर्यं बलात् प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन । स तां पराकृष्य सभासमीपमानीय कृष्णामतिदीर्घकेशीम्। दुःशासनो नाथवतीमनाथवच्चकर्ष वायुः कदलीमिवार्ताम्।। सा कृष्यमाणा नमिताङ्गयष्टिः शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि। एकं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

भीष्म पितामह ? [४]

द्रौपदी का भरी सभा में घोर अपमान और भीष्म पितामह

जब बड़ी-बड़ी दाढ़ियों वाले, सफेद केशों वाले, अनुभवी, धर्मधुरन्धर और ज्ञानिप्रवर कहलाने वाले भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य आदि के द्वारा न तो दुर्योधन की आज्ञा का विरोध किया गया और न ये सशक्त भीष्म आदि दुःशासन को रोक ही सके तब –

'पापी दुःशासन ने क्रोध में भरकर द्रौपदी को डाँटा और दौड़कर पीछे से महारानी द्रौपदी के नीले-नीले घुंघराले और लम्बे केशों को पकड़ लिया। हाय! हाय! अभी यही केश कुछ दिनों पहले राजसूय-यज्ञ में अवभृथ स्नान के समय मन्त्रपूत जल से सींचे गये थे। दुरात्मा दुःशासन पाण्डवों का तिरस्कार करने के लिये आज उन्हीं केशों को बलपूर्वक पकड़कर द्रौपदी को अनाथ के समान घसीटता चला जा रहा है। द्रौपदी का रोम-रोम काँप रहा था, शरीर झुक गया था। वे खिंची जा रही थीं। द्रौपदी ने धीरे से कहा–'अरे मूढ़! दुरात्मा दुःशासन! मैं रजस्वला हूँ, एक ही वस्त्र पहने हूँ। ऐसी अवस्था में मुझे वहाँ ले जाना अनुचित है'। दुःशासन ने द्रौपदी की बात पर कुछ ध्यान न देकर केशों को और भी जोर से पकड़ा और वह बोला–'द्रुपद की बेटी! तू रजस्वला हो या एकवस्त्रा, भले ही तू नंगी हो, हमने तुझे जुए में जीता है। तू हमारी दासी है। अब तुझे नीच स्त्रियों के समान हमारी दासियों में रहना पड़ेगा'। दुःशासन द्रौपदी को सभा में घसीट लाया'[25]। तब दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र उतारने का प्रयत्न करने लगा[26]।

च वासो मम मन्दबुद्धे! सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य! ॥ ततोऽब्रवीत्तां प्रसभं निगृह्य केशेषु कृष्णेषु तदा स कृष्णाम्।...। रजस्वला वा भव याज्ञसेनि! एकाम्बरा वाऽप्यथवा विवस्त्रा। द्यूते जिता चासि कृतासि दासी, दासीषु वासश्च यथोपजोषम्॥ (महाभा.सभा. ६७.२९-३४)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

भीष्म-प्रकरण

क्यों अखण्डब्रह्मचर्य-व्रतधारी पितामहजी! आप इस द्यूतसभा में बैठे थे-इसके सभासद् थे और कभी आपने अपने श्रीमुख से सभासद् के लक्षण बताते हुए कहा था-'लज्जा जिनके ज़ीवन का अंग है, जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियों का निग्रह किया हुआ है, जो सत्यपरायण हैं, जो सरल स्वभाव वाले हैं, छलकपट से रहित हैं और जो अपने विचारों के कहने में – प्रकट करने में समर्थ हैं, वे ही सभासद् होने के योग्य हैं[27]।

तो क्या पितामहजी! एकवस्त्रा, रजस्वला रोती बिलखती और दुःशासन द्वारा भरी सभा में घसीट कर लाई जाती हुई और एकमात्र वस्त्र के भी खींचे जाकर नग्न की जाती हुई द्रौपदी की दशा देखकर आपको लज्जा नहीं आई! आपका माथा शर्म से गड़ क्यों नहीं गया? कड़ककर इसका विरोध करने की क्या आपमें शक्ति नहीं थी? क्या आपको मनु महाराज की वह बात विस्मृत हो गई थी कि-'या तो सभा में प्रवेश ही न करे और यदि सभा में बैठे तो उचित और सत्य बात अवश्य कहे। सत्य और उचित बात न कहने वाला अथवा गलत कहने वाला मनुष्य पापी होता है[28]।

पूर्वावस्था में स्त्री परन्तु पीछे जाकर जो पुरुष था, उस शिखण्डी को भी स्त्री मानकर उस पर शस्त्र न चलाने की प्रतिज्ञा करके उस पर दया दिखाने वाले आपको वास्तव में स्त्री और कातर असहाय महारानी द्रौपदी पर दया नहीं आई? उसका अपमान

---

26 'ततो दुःशासनो राजन्! द्रौपद्या वसनं बलात्।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाकर्त्तुं प्रचक्रमे। (महाभा.सभा. ६८.४०)

27 'ह्रीनिषेवास्तथा दान्ताः सत्यार्जवसमन्विताः।
शक्ताः कथयितुं सम्यक् ते तव स्युः सभासदः'। (महाभा.शा. ८३.२)

28 'सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्बिषी' (मनु. ८.१३)

29 'तथा नु दृष्ट्वा बहु तत्र देवीं रोरूयमाणां कुररीमिवार्ताम्। नोचुर्वचः साध्वथ वाऽप्यसाधु महीक्षितो धार्तराष्ट्रस्य भीताः' (महाभा.सभा. ७०.१)

कैसे सहन हो सका आपको? क्या आप भी वहाँ उपस्थित अन्य राजाओं के समान दुर्योधन से भयभीत थे[29]?

पितामह जी! यदि आप उस समय दुःशासन दुर्योधन की इस अति नीच अतिनिन्दनीय हरकत का विरोध करने खड़े हो जाते और झपटकर दुःशासन के पंजे से द्रौपदी को छुड़वा देते और उग्र रूप दिखा देते, तो फिर दुर्योधन आदि की आगे से कुकृत्य करने की हिम्मत नहीं होती और न महाभारत-युद्ध होता!

भीष्म पितामह ? [५]

सभा में द्रौपदी का प्रश्न और भीष्म का उत्तर

जब दुःशासन के द्वारा घसीटने से द्रौपदी के केश बिखर गये, शरीर से आधा वस्त्र खिसक गया। वह लज्जावश क्रोध से लाल होकर धीरे-धीरे बोली–'अरे दुष्ट! इस सभा में सभी शास्त्रज्ञाता, क्रियावान्, इन्द्र के समान प्रतिष्ठित मेरे गुरुजन (=बुजुर्ग) बैठे हैं। इनके सामने मैं इस दशा में कैसे खड़ी हो सकूँगी? अरे दुराचारी! मुझे घसीट मत,

---

[30]'प्रकीर्णकेशी पतितार्धवस्त्रा दुःशासनेन व्यवधूयमाना। ह्रीमत्यमर्षेण च दह्यमाना शनैरिदं वाक्यमुवाच कृष्णा–इमे सभायामुपनीतशास्त्राः क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः। गुरुस्थाना गुरवश्चैव सर्वे तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम्। 'नृशंसकर्मन्! त्वमनार्यवृत्त! मा मां विकर्षीः।...। 'इदं त्वकार्यं कुरुवीरमध्ये रजस्वलां यत् परिकर्षसे माम्। न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्सां ध्रुवं तवेदं मतमभ्युपेताः।। धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम्। यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम्।। द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि। राज्ञस्तथा ह्रीममधर्ममुग्रं न लक्षयन्ते कुरुवृद्धमुख्याः।...। आहूय राजा कुशलैरनार्यैर्दुष्टात्मभिर्नैष्कृतिकैः सभायाम्। द्यूतप्रियैर्नातिकृतप्रयत्नः कस्मादयं नाम निसृष्टकामः।। अशुद्धभावैर्निकृतिप्रवृत्तैरबुध्यमानः कुरुपाण्डवाग्र्यः। सम्भूय सर्वैश्च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

नग्न मत कर। इस नीच कर्म से तनिक डर तो सही'।... हाय! हाय! भरतवंश को धिक्कार है। इन कुपूतों ने क्षत्रियत्व का नाश कर दिया है। ये सभा में बैठे हुए कौरव अपनी आँखों से कुल की मर्यादा का नाश देख रहे हैं। द्रोण, भीष्म और महात्मा विदुर का आत्मबल कहाँ गया? बड़े-बूढ़े इस अधर्म को क्यों देख रहे हैं'।... इन छली पापात्माओं ने धूर्तता से धर्मराज को जुआ खेलने के लिये तैयार कर लिया और छल से उन्हें और उनके सर्वस्व को जीत लिया। उन्होंने पहले अपने भाइयों को, तब अपने को हारकर तब मुझे दाँव पर लगाया है। मैं यह जानना चाहती हूँ, कि अब उन्हें मुझे दाँव पर लगाने का धर्म के अनुसार अधिकार था या नहीं? यहाँ सभा में अनेकों कुरुवंशी बैठे हैं। वे मेरे प्रश्न पर विचार करके ठीक-ठीक उत्तर दें[30]।

विपन्ना द्रौपदी के इस प्रश्न का उत्तर कोई न दे सका। पर पितामहजी! आपने जो उत्तर दिया, उसके क्या कहने! आपका उत्तर था—"कल्याणी! धर्म की गति बड़ी गहन है। बड़े-बड़े विद्वान्, बुद्धिमान् भी उसका रहस्य समझने में भूल कर जाते हैं। जो धर्म सबसे बलवान् और सर्वोपरि है, वही अधर्म के उत्थान के समय दब जाता है। तुम्हारा प्रश्न बड़ा सूक्ष्म, गहन और गौरवपूर्ण है, कोई भी निश्चयपूर्वक इसका निर्णय नहीं दे सकता[31]।

क्यों धर्मोपदेष्टा और पराक्रमी पितामहजी! कसाइयों के बीच फंसीं हुई गौ के

जितोऽपि यस्मात्, पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः। समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत्॥...। जितां वाप्यजितां वा मां मन्यध्वे सर्वभूमिपाः॥ (महाभा. सभा. ६७.३५–४१, ५०–५१)

31 'न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्। अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य'॥ (महाभा.सभा. ६७.४७)

32 "अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति। अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि॥ परित्यजाम्यहं राज्यं मैथुनं चापि सर्वशः। ऊर्ध्वरेता भविष्यामि

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

समान असहाय द्रौपदी तो छटपटाती हुई अपने ऊपर आये महासङ्कट से त्राण पाने के लिये गुहार लगा रही थी और आप उस समय धर्म की गहनता और धर्म की सूक्ष्मता की दुहाई देकर अपने सज्जनोचित और वीरोचित कर्त्तव्य से विमुख हो रहे थे। अब आपको धर्म की सूक्ष्मता याद आ रही थी?

(i) उस समय आपको धर्म की सूक्ष्मता याद नहीं आई, जब आपकी माता गङ्गाजी के जीवित रहते हुए भी आपने अपने पिता के लिये दाशराज से उसकी पुत्री सत्यवती को मांगा था[32]?

आप धर्मानुसार पिता को समझा सकते थे, कि पिताजी! आप मेरी सर्वगुणसम्पन्ना माता के जीवित रहते, दूसरी स्त्री से विवाह करने की क्यों सोच रहे हैं। आप दशरथ के समान अनपत्य-निःसन्तान तो हैं नहीं, जो दूसरा विवाह करें। मेरे दादा (आपके पिता) प्रतीप महाराज ने कामयाचनावती युवति गङ्गा के आग्रह करने पर भी उससे विवाह नहीं किया, क्योंकि उस समय उनकी पत्नी शैव्या-सुनन्दा (=मेरी दादी और आपकी माता) जीवित थीं। प्रतीप महाराज ने पत्नी-व्रत धर्म का पालन किया और युवती गङ्गा का अपने पुत्र (=आपके) साथ विवाह किया, वैसे आप भी सत्यवती को ब्याहने का विचार छोड़ दीजिये[33]। इस प्रकार आप पिताजी को धर्म की सलाह देते। पर उस समय तो आपने कामासक्त पिता के लिये सत्यवती की व्यवस्था कर दी। उसका दुष्परिणाम

दाश सत्यं ब्रवीमि ते ।। यावत् प्राणा ध्रियन्ते वै मम देहं समाश्रिताः। तावन्न जनयिष्यामि <u>पित्रे कन्यां प्रयच्छ मे</u>।। (महाभा.आदि. १००.९६...)

33 'ततः प्रतीपो राजाऽऽसीत् सर्वभूतहितः सदा।...। तस्य रूपगुणोपेता गङ्गा स्त्रीरूपधारिणी।...। सोवाच- 'त्वामहं कामये राजन् भजमानां भजस्व माम्।...। प्रतीप उवाच – नाहं परस्त्रियं कामाद् गच्छेयं वरवर्णिनि!... स्नुषा मे भव सुश्रोणि पुत्रार्थं त्वां वृणोम्यहम्' (महाभा.आदि. ९७.१-११)

34 'ततः शान्तनवो धीमान् सत्यवत्यामजायत। वीरश्चित्राङ्गदो नाम वीर्यवान्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

हुआ। सत्यवती से उत्पन्न चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य इन दो पुत्रों में से छोटे के बाल्यकाल में ही; विषयासक्त शान्तनु परलोक सिधार गये[34]।

तब बड़े पुत्र चित्राङ्गद को राजा बनाया गया। पर वह अभिमानी, उद्दण्ड और प्रजापीड़क था। वह युद्ध में एक सनामा चित्राङ्गद गन्धर्व के हाथों मारा गया[35]।

तब बालक विचित्रवीर्य को गद्दी पर बिठाया गया। (शासन आप (=भीष्म) चलाते रहे। विचित्रवीर्य की यौवनावस्था आने पर, उसके विवाह के लिये, काशीराज की तीन कन्याओं के स्वयंवर में आप (=भीष्मजी) स्वयं बनारस जा पहुँचे[36]।

(ii) क्यों धर्म-धुरन्धर पितामह जी! आप द्रौपदी की ओर तो धर्म की सूक्ष्मता की

पुरुषेश्वरः। अथापरं महेष्वासं सत्यवत्यां सुतं प्रभुः। विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान् ॥ अप्राप्तवति तस्मिंस्तु यौवनं पुरुषर्षभे। स राजा शान्तनुर्धीमान् कालधर्ममुपेयिवान्' ॥ (महाभा.आदि. १०१.२-४)

[35]'स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिंदमम्। स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थितः॥ स तु चित्राङ्गदः शौर्यात् सर्वांश्चिक्षेप पार्थिवान्। मनुष्यं न हि मेने स कंचित् सदृशमात्मनः॥ तं क्षिपन्तं सुरांश्चैव मनुष्यानसुरांस्तथा। गन्धर्वराजो बलवान् तुल्यनामाऽभ्ययात्तदा॥ तस्मिन् विमर्दे तुमुले शस्त्रवर्षसमाकुले। मायाधिकोऽवधीद् वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम्॥ (महाभा.आदि. १०१.५-९)

[36]विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्तयौवनम्। कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिञ्चदनन्तरम्।... हते चित्राङ्गदे भीष्मो बाले भ्रातरि कौरव। पालयामास तद्राज्यं सत्यवत्या मते स्थितः॥ सम्प्राप्तयौवनं दृष्ट्वा भ्रातरं धीमतां वरः। भीष्मो विचित्रवीर्यस्य विवाहायाऽकरोन्मतिम्। अथ काशिपतेर्भीष्मः कन्यास्तिस्रोऽप्सरोपमाः। शुश्राव सहिता राजन् वृण्वाना वै स्वयंवरम्॥... जगामानुमते मातुः पुरीं वाराणसीं प्रभुः॥ (महाभा.आदि. १०१.१२; १०२.१-४)

[37]'कीर्त्यमानेषु राज्ञां तु तदा नामसु सर्वशः। एकाकिनं तदा भीष्मं वृद्धं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

छिछली हवाई बातें फेंककर, उसकी रक्षा से मुँह छिपा रहे थे, पर आपको तब सूक्ष्म धर्म याद नहीं आया, जब विचित्रवीर्य को ब्याहने के लिये आप स्वयं स्वयंवर में जा पहुँचे। स्वयंवर दो ही प्रकार का होता है। पराक्रमलक्षी और गुणलक्षी। पराक्रम के आधार पर, नियत शर्त की जिसके द्वारा पूर्त्ति की जाय, उसका कन्या के द्वारा वरण-जैसे सीता-स्वयंवर में राम का वरण और द्रौपदी-स्वयंवर में अर्जुन का वरण। अथवा गुण-रूप-लक्षण आदि के आधार पर, जैसे इन्दुमती के स्वयंवर में महाराज अज (=राम के पितामह) का वरण और दमयन्ती-स्वयंवर में महाराज नल का वरण।

सो पितामह जी! काशिराज की कन्याओं का स्वयंवर भी गुणरूपलक्षी स्वयंवर था। उसमें विचित्रवीर्य को स्वयं पहुँचना चाहिये था। पर प्रतीत होता है, कि विचित्रवीर्य में गुणादि की और पराक्रम की कमी थी। जिसको भांपकर आप स्वयं वहाँ जा पहुँचे। स्वयंवर-सभा में राजाओं के नाम आदि के उच्चारण एवं परिचय के समय, तीनों कन्याएँ—अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका; आप वृद्ध को देखकर, परेशान होकर, आपके सामने से भाग खड़ी हुईं[37]।

तभी वहाँ उपस्थित राजवर्ग भी आपकी हँसी उड़ाने लगा—'वहाँ बैठे हुए राजा लोग भी आपस में हँसी करते हुए कहने लगे, कि भीष्म ने तो ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ले ली थी, अब बाल सफेद होने पर और झुर्रियाँ पड़ने पर यह बूढ़ा लज्जा छोड़कर यहाँ क्यों आया है। यह सब देख-सुनकर भीष्म को रोष आ गया। उन्होंने बलपूर्वक हरकर कन्याओं को रथ पर बैठाया और कहा—राजाओ! मैं तुम्हारे सामने कन्याओं का बलपूर्वक

शान्तनुनन्दनम्॥ सोद्वेगा इव तं दृष्ट्वा कन्याः परमशोभनाः। अपाक्रामन्त ताः सर्वा वृद्ध इत्येव चिन्तया॥ (महाभा.आदि. १०२.६,७)

[38]'वृद्धः परमधर्मात्मा बलीपलितधारणः। किं कारणमिहायातो निर्लज्जो भरतर्षभः॥ मिथ्याप्रतिज्ञो लोकेषु किं वदिष्यति भारत। ब्रह्मचारीति भीष्मो हि वृथैव प्रथितो भुवि॥ इत्येवं प्रब्रुवन्तस्ते हसन्ति स्म नृपाधमाः। क्षत्रियाणां वचः श्रुत्वा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

हरण कर रहा हूँ। तुम लोग अपनी पूरी शक्ति लगाकर मुझे जीत लो या हारकर भाग जाओ। मैं तुम्हारे सामने युद्ध के लिये खड़ा हूँ।...। तब बड़ा रोमांचकारी युद्ध हुआ। भीष्म ने उस युद्धस्थली में हजारों धनुष, बाण, ध्वजा, कवच और सिर काट डाले। घोड़ों और सारथियों को भी मार डाला[38]।

(iii) क्यों पितामह जी! क्या इस कन्याहरण को आपने धर्मसम्मत माना था? कन्याहरण को तभी उचित ठहराया जा सकता है, जब कन्या किसी को मन ही मन पहले वर ले और फिर वही मनचाहा वर उसका हरण कर ले। जैसे रुक्मिणी का श्रीकृष्ण के द्वारा हरण किया गया था। अथवा मन पर चढ़ी कन्या का, उसके भाई आदि को विश्वास में लेकर उस कन्या का हरण किया जाये। जैसे श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा का, श्रीकृष्ण की सहमति से अर्जुन द्वारा हरण किया गया।

क्यों अखण्ड ब्रह्मचारीजी! आपने तो इन तीनों कन्याओं का जबर्दस्ती हरण किया था। रोती-कलपती अम्बा आदि का हरण किया था[39]।

वे कन्याएँ आपके साथ जाना नहीं चाहती थीं, तब क्या आपने उनकी गर्दन पर

भीष्मश्चुक्रोध भारत। भीष्मस्तदा स्वयं कन्या वरयामास ताः प्रभुः। उवाच च महीपालान् राजन् जलदनिस्वनः। रथमारोप्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः।... ता इमाः पृथिवीपाला जिहीर्षामि बलादितः। ते यतध्वं परं शक्त्या विजयायेतराय वा। स्थितोऽहं पृथिवीपाला युद्धाय कृतनिश्चयः।...। तद् युद्धमासीत्तुमुलं घोरं देवासुरोपमम्। पश्यतां लोकवीराणां शरशक्तिसमाकुलम्। स धनूंषि ध्वजाग्राणि वर्माणि च शिरांसि च ॥ चिच्छेद समरे भीष्मः शतशोऽथ सहस्रशः।...। ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग्योजयामास कौरवः। तेनाश्वांश्चतुरोऽमृद्नच्छाल्वराजस्य भूपते।...। न्यवधीत्तस्य सारथिम्॥ (महाभा.आदि. १०२.८,१२,१७,१८,३१,४७)

[39] अम्बा उवाच – 'नास्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेण मित्रकर्शन। बलान्नीतास्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन्' (महाभा.उ. १७५.११)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

तलवार रखकर उन्हें रथ पर बैठने को विवश किया अथवा उनके हाथ पकड़ कर उन्हें रथ पर पटका? उस समय आपका धर्मचिन्तन कहाँ गया था? प्रतीत होता है, आपको जगत् में केवल शिखण्डी ही स्त्री दिखती थी, जिसे देखना या उस पर शस्त्र उठाना आपको अनुचित लगता था! शेष स्त्रियों के प्रति आप निष्ठुर थे। तभी तो कातर और कम्पितकाया असहाया द्रौपदी के प्रति आप क्रूर बने रहे!!

(iv) क्यों ब्रह्मचारी पितामहजी! आप सैंकड़ों हजारों को तहस-नहस करके, तीन कन्याएँ ले आये हस्तिनापुर। अम्बा तो खैर शाल्वनरेश के प्रति प्रेमपगी थी, सो आपसे अनुनय-विनय करके वहाँ से भाग छूटी[40]।

शेष दो कन्याओं-अम्बिका और अम्बालिका को विचित्रवीर्य से ब्याह दिया। क्या परिणाम निकला? दो सुन्दरियों को पाकर वह विचित्रवीर्य कामात्मा बन गया। सात वर्ष तक उनके साथ विषय-सेवन में लगा रहा। उस लम्पट क्षीणवीर्य के कोई सन्तति भी नहीं हुई। उल्टा वह जवानी में ही राजयक्ष्मा रोग से ऐसा ग्रस्त हुआ, कि परमवैद्यों द्वारा चिकित्सा करने पर भी नीरोग नहीं हुआ और मृत्यु का ग्रास बन गया[41]।

क्यों भीष्मजी! आपको उस समय धर्म की बात नहीं सूझी, कि जो स्वयंवर में

---

40 'ज्येष्ठा तासामिदं वाक्यमब्रवीद्ध सती यदा। मया सौभपतिः पूर्वं मनसा हि वृतः पतिः। तेन चास्मि वृता पूर्वमेष कामश्च मे पितुः।...। अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम्।। (महाभा.आदि. १०२.६०-६४)

41 'अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भार्ये यवीयसे। भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा।। तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवनदर्पितः। विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत। ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन् पृथिवीपतिः। विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत। सुहृदां यतमानानामाप्तैः सह चिकित्सकैः। जगामास्तमिवादित्यः कौरव्यो यमसादनम्।। (महाभा.आदि. १०२.६५-७१)

जाने का स्वयं साहस नहीं जुटा सका और जो अल्पवीर्य था, उसे मैं क्यों दो-दो सुन्दरी पत्नियाँ देकर विषयाग्नि में झोंक रहा हूँ। यह आपकी बुद्धि का प्रमाद था कि नहीं?

उधर आपने अम्बा का जीवन भी बर्बाद कर दिया। क्योंकि आप उसके मनचीते पति शाल्वराज को पीट कूटकर अम्बा को उठा लाये थे। सो जब आपसे छुटकारा पाकर वह शाल्वराज के पास गई, तो उसने भी आपके डर से अम्बा को स्वीकार नहीं किया[42]।

(v) विचित्रवीर्य के दिवंगत हो जाने पर, नियोगविधि के द्वारा अम्बिका से धृतराष्ट्र का और अम्बालिका से पाण्डु का जन्म हुआ। यौवनारूढ़ होने पर धृतराष्ट्र का विवाह भीष्म ने गान्धारराज सुबल की पुत्री गान्धारी के साथ किया[43]।

उधर शूरसेन की पुत्री पृथा (=कुन्ती) के साथ पाण्डु का विवाह हुआ। पृथा का ही पीछे जाकर कुन्ती नाम पड़ा। शूरसेन ने अपनी पुत्री पृथा को, अपने निःसन्तान मित्र राजा कुन्तिभोज को गोद दे दिया। कुन्तिभोज की दत्तक पुत्री बनने के बाद उसका 'कुन्ती' नाम प्रसिद्ध हो गया। वह बड़ी सुशील, सुन्दर एवं गुणवती थी। अतः कई

---

42 'एवं तां भाषमाणां तु कन्यां शाल्वपतिस्तदा। परितत्याज कौरव्य करुणं परिदेवतीम्। गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत। बिभेमि भीष्मात् सुश्रोणि त्वं च भीष्मपरिग्रहः' (महाभा.उ. १७५.२३,२४)

43 'ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरभ्ययात्। स्वसारं वयसा लक्ष्म्या युक्तामादाय कौरवान्॥ तां तदा धृतराष्ट्रस्य ददौ परमसत्कृताम्। भीष्मस्यानुमते चैव विवाहं समकारयत् (महाभा. आदि. १०९.१५,१६)

44 'तां तु तेजस्विनीं कन्यां रूपयौवनशालिनीं। व्यवृण्वन् पार्थिवाः केचिदतीव-स्त्रीगुणैर्युताम्॥ ततःसा कुन्तिभोजेन राज्ञाऽऽहूय नराधिपान्। पित्रा स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तम॥ ततः सा रंगमध्यस्थं तेषां राज्ञां मनस्विनी। ददर्श राजशार्दूलं पाण्डुं भरतसत्तमम्॥ तं दृष्ट्वा सानवद्याङ्गी हृदयेनाकुलाभवत्। व्रीडमाना स्रजं कुन्ती राज्ञः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

राजाओं ने उसे मांगा था, इसलिये नृप कुन्तिभोज ने उसके लिये स्वयंवर समारोह रचा। स्वयंवर में कुन्ती ने वीरवर पाण्डु को जयमाला (=वरमाला) पहना दी। अत: पाण्डु के साथ उसका विधिपूर्वक विवाह हुआ। राजा पाण्डु वहाँ से बहुत सी भेंट-सामग्री प्राप्त करके अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट आये[44]।

अभी कुन्ती के हाथों की मेहन्दी का रंग फीका भी नहीं पड़ा था, कि आप भीष्मजी को पाण्डु का एक और विवाह करने की सनक लगी—'महात्मा भीष्म ने पाण्डु का एक और विवाह करने का निश्चय किया। अत: वे मन्त्री, ब्राह्मण, ऋषि, मुनि और चतुरङ्गिणी सेना के साथ मद्रराज की राजधानी जा पहुँचे'। तब मद्रराज शल्य के संकेत पर, भीष्म ने सोना, चाँदी और विचित्र रत्न; हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र तथा मणियाँ मद्रराज शल्य को दीं और उसकी बहिन, ऋतायन की पुत्री माद्री को प्राप्त कर लिया और अपने नगर में आकर उसका पाण्डु के साथ विवाह कर दिया[45]।

स्कन्धे समासजत्॥ ततस्तस्या: पिता राजन् विवाहमकरोत् प्रभुः। कृतोद्वाहं तदा तं तु नानावसुभिरर्चितम्। स्वपुरं प्रेषयामास स राजा कुरुसत्तम। (महाभा. आदि. १११. २-४,८,११)

45'ततः शान्तनवो भीष्मो राज्ञः पाण्डोर्यशस्विनः। विवाहस्यापरस्यार्थे चकार मतिमान् मतिम्॥ सोऽमात्यैः स्थविरैःसार्धं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः। बलेन चतुरङ्गेण ययौ मद्रपतेः पुरम्॥...। इत्युक्त्वा च महातेजाः शातकुम्भं कृताकृतम्। रत्नानि च विचित्राणि शल्यायादात् सहस्रशः। गजानश्वान् रथांश्चैव वासांस्याभरणानि च। मणिमुक्ताप्रवालं च गाङ्गेयो व्यसृजच्छुभम्॥ तत् प्रगृह्य धनं सर्वं शल्यः सम्प्रीतमानसः। ददौ तां समलङ्कृत्य स्वसारं कौरवर्षभे॥ स तां माद्रीमुपादाय भीष्मः सागरगासुतः। आजगाम पुरीं धीमान्...। जग्राह विधिवत् पाणिं माद्र्याः पाण्डुः...। (महाभा.आदि. ११२. १,२,१४-१६)

46'तथा तान् दुःखितान् दृष्ट्वा पाण्डवान् धृतराष्ट्रजः। कृष्यमाणां च पाञ्चालीं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

क्यों पितामह जी! पुरुषों की सभा में घोर अपमान का घूंट पी रही, एकाकिनी निस्सहाया द्रौपदी को आप धर्म की गहनता सूक्ष्मता का प्रपञ्च बता रहे थे-उपदेश दे रहे थे, किन्तु उस समय आपका धर्म-विश्लेषण कहाँ उड़ गया था, जब पाण्डु के सन्तान-जन्म की प्रतीक्षा किये बिना ही आप शल्य से उसकी बहिन माद्री को पाण्डु के लिये खरीदकर ला रहे थे? आपने अपने द्वारा पूर्व किये इस प्रकार के कार्यों और उनके परिणामों पर जराभी विचार करने का कष्ट नहीं किया। अपने पिता के लिये दूसरी पत्नी सत्यवती को लाये; परिणामतः आपके पिताश्री जल्दी ही स्वर्ग सिधार गये। विचित्रवीर्य को दो-दो सुन्दरियाँ सौंपीं, फल यह हुआ कि वह युवावस्था में ही काल का ग्रास बन गया। जरा सा तो अपने पूर्व कृत्यों की धर्मानुसार समीक्षा कर लेते। क्योंकि खरीदकर लाई हुई माद्री ही अन्ततः पाण्डु की असमय मृत्यु का कारण बनी। पर तब आपको सम्भवतः ऐसा करने की फुर्सत नहीं थी। फुर्सत तो अब मिली, जब एकराजा की रानी और आपकी पौत्रवधू अगाध पीड़ा को अनुभव करती हुई प्रतिक्षण अपने छुटकारे के लिये, आप जैसे बड़े-बूढ़ों से दीनतापूर्वक अनुनय विनय कर रही थी।

पितामहजी! आपसे तो पाण्डवों के शत्रुपक्षीय दुर्योधन का सगा भाई विकर्ण ही अच्छा रहा, जिसने साहस करके उस अन्याय का विरोध किया-'पाण्डवों का दुःख और द्रौपदी की कातरता देखकर धृतराष्ट्र-नन्दन विकर्ण ने कहा-'सभासदो! द्रौपदी के प्रश्न के सम्बन्ध में हम सभी लोगों को ठीक-ठीक विचार कर उत्तर देना चाहिये। इसमें त्रुटि होने पर हमें नरकगामी होना पड़ेगा। भीष्म पितामह, पिता धृतराष्ट्र और महामति

विकर्ण इदमब्रवीत्। याज्ञसेन्या यदुक्तं तद् वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः। अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः॥ भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ। समेत्य नाहतुः किञ्चिद् विदुरश्च महामतिः॥ भारद्वाजश्च सर्वेषामाचार्यः कृप एव च। कुत एतावपि प्रश्नं नाहतुर्द्विजसत्तमौ॥ ये त्वन्ये पृथिवीपालाः समेताः सर्वतो दिशः। कामक्रोधौ समुत्सृज्य ते ब्रुवन्तु यथामति॥ यदिदं द्रौपदी वाक्यमुक्तवत्यसकृच्छुभा। विमृश्य कस्य कः पक्षः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृक्ष हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

विदुरजी; इस विषय में परामर्श करके उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं? आचार्य द्रोण और कृपाचार्य क्यों चुप हैं? ये राजा रागद्वेष छोड़कर क्यों नहीं इस प्रश्न का निर्णय करते? आप लोग पतिव्रता द्रौपदी के प्रश्न पर विचार करके अलग-अलग अपना मत प्रकट कीजिये।

इस प्रकार विकर्ण के बार-बार कहने पर भी किसी ने कुछ नहीं कहा। अब विकर्ण हाथ पर हाथ पीस कर लम्बी साँस लेता हुआ बोला- 'कौरवो! ये सभासद् उत्तर दें या न दें। इस विषय में जिस बात को मैं न्यायसङ्गत समझता हूँ, उसे कहे बिना नहीं रहूँगा। श्रेष्ठ पुरुषों ने राजाओं के चार व्यसन बहुत बुरे बताये हैं-शिकार, शराब, जुआ और स्त्री-प्रसङ्ग में अति आसक्ति। इनमें संलग्न होने पर मनुष्य का पतन हो जाता है। यहाँ जुआरियों के बुलाने पर राजा युधिष्ठिर ने आकर जुए की आसक्तिवश द्रौपदी को दांव पर लगा दिया। द्रौपदी केवल युधिष्ठिर की ही स्त्री नहीं, उस पर पाँचों का अधिकार है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है, कि युधिष्ठिर ने अपने को हारने के बाद द्रौपदी को दाँव पर लगाया। इसलिये मेरे विचार से युधिष्ठिर को यह अधिकार नहीं था, कि वे द्रौपदी को दांव पर लगायें। दूसरी बात यह है, कि उन्होंने स्वेच्छा से नहीं, अपितु शकुनि

पार्थिवा वदतोत्तरम्।। एवं स बहुशः सर्वानुक्तवांस्तान् सभासदः। न च ते पृथिवीपालास्तमूचुः साध्वसाधु वा। उक्त्वाऽसकृत् तथा सर्वान् विकर्णः पृथिवीपतीन्। पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमब्रवीत्। विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथञ्चन। <u>मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः</u>। चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम्। मृगयां पानमक्षांश्च ग्राम्ये चैवातिरक्तताम्।। एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्त्तते।...। तदयं पाण्डुपुत्रेण व्यसने वर्त्तता भृशम्।। समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः।। साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता।। जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः। इयं च कीर्त्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना। एतत् सर्वं विचार्याहं <u>मन्ये न विजितामिमाम्</u>' (महाभा. सभा. ६८.११-२४)

की प्रेरणा से उसे दांव पर रखा था। इन सब बातों से मैं तो इस निश्चय पर पहुँचता हूँ, कि द्रौपदी जुए में नहीं हारी गई[46]।

यद्यपि विकर्ण को दुर्योधन के अन्धसमर्थक कर्ण आदि ने डाँट-फटकार कर बैठा दिया। पर उसके न्यायप्रेम ने पाण्डवों के हृदय में स्थान बना लिया। अतएव यद्यपि युद्ध-धर्म के कारण युद्ध में विकर्ण भीमसेन के हाथों मारा गया, पर उस समय भीम को भारी पछतावा हुआ और उसने युद्धकर्म को धिक्कारा[47]।

क्यों ब्रह्मचारी भीष्मजी! कहाँ गया आपका ब्रह्मचर्य-तेज-जात मन्यु? कहाँ गया आपका आत्मबल? आपसे तो वह गृहस्थी विकर्ण ही बाजी मार ले गया, जिसके आत्मबल ने अपने सगे समर्थ भाइयों के क्रोध की परवाह न करके, सत्यन्याय के पक्ष को दृढ़ता से रखा। क्यों ब्रह्मचारीजी! स्त्रियों के हरण करते समय तो, हरणकर्म का विरोध करने वालों पर आपको अत्यन्त क्रोध आता है, जिसके कारण आप विरोधियों के सिर भुट्टे की तरह उड़ा देते हैं। किन्तु एक अबला सन्नारी को सताने वाले पापियों को मारना तो दूर रहा! दुःशासन को पकड़ कर परे धकेल कर द्रौपदी को उससे मुक्त करना भी दूर रहा!! उन पापियों के विरोध में आपके मुँह से चूँ तक नहीं निकली!!!

विकर्ण की खरी बात को सुनकर विदुरजी में कुछ साहस तो जगा—'धर्म के मर्मज्ञ विदुरजी ने हाथ उठाकर सबको शान्त करते हुए कहा—'सभासद्-वृन्द? द्रौपदी आपके सामने प्रश्न रखकर अनाथ के समान रो रही है। परन्तु आप लोगों में से कोई भी उसके

---

[47]'शत्रुञ्जयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः। चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः। पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः। शोचत्यतिभृशं दुःखाद् विकर्णं पाण्डवः प्रियम्॥ प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे। विकर्ण! तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया। त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन्। ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः। विशेषतो हि नृपतेस्तथाऽस्माकं हिते रतः॥ (महाभा. द्रो. १३७.३०-३४)

[48]विदुर उवाच — द्रौपदी प्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति ह्यनाथवत्। न च विब्रूत तं प्रश्नं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा। यह अधर्म है...। जो धर्मज्ञ पुरुष सभा में जाकर किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं देता, उसको आधा झूठ बोलने का पाप लगता है[48]।

भीष्मजी ! आपकी अपेक्षा पद और प्रतिष्ठा में कम हस्ती रखने वाले गृहस्थी विदुरजी तो फिर भी बोले, पर आप सर्वसमर्थ होते हुए भी, धर्म की परम गति, सूक्ष्मता और गहनता की उधेड़बुन में लगे रहे; किन्तु अन्याय के विरोध करने में तो आपकी बोलती बन्द ही रही!!

तत्त्व की बात तो यह है, कि द्रौपदी की इस दुरवस्था की वेला ही कैसे आई? पितामहजी! यदि आप डटकर द्यूतसभा का विरोध करते, जुआ होने ही नहीं देते और युधिष्ठिर को भी इन निकृतिपरायणों (=कपटियों) शकुनि-दुर्योधन-कर्ण जैसों के साथ जुआ खेलने से हठपूर्वक रोक देते; तो द्रौपदी की इस दुरवस्था की नौबत ही नहीं आती।

और पितामहजी! आपने द्यूत और द्यूत-परिणाम से उत्पन्न विद्वेषाग्नि पर विचार किया होता, तो विनाशकारी महाभारत-युद्ध होता ही नहीं। क्योंकि न जुआ खेला जाता, न पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थ का राज्य छिनता, न उन्हें वनवास का कष्ट भोगना पड़ता और न फिर अपना अधिकार पाने को उन्हें युद्ध ही करना पड़ता।

भीष्म पितामह ? [६]

कपटद्यूत द्वारा पराजित पाण्डवों का वन में प्रस्थान और भीष्म पितामह

द्रौपदी की दुरवस्था और उसके परिणामों पर विचार करके भयभीत हुए धृतराष्ट्र

सभ्या धर्मोऽत्र पीड्यते॥...। यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद् धर्मदर्शी सभां गतः। अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्धं समश्नुते' (महाभा.सभा. ६८.५९,६३)

49'ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः। अजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

द्वारा,एक बार तो द्यूत में हारे हुए पाण्डवों को दासता से मुक्ति दे दी गई और पाण्डव अपनी राजधानी को चल भी दिये, किन्तु चण्डालचौकड़ी (=दुर्योधन-दुःशासन-शकुनि-कर्ण) के उकसाने पर धृतराष्ट्र के आदेश से भोले (=मूर्ख) युधिष्ठिर फिर से जुए में प्रवृत्त हो गये। इस बार शकुनि-दल ने जुए में वनवास और अज्ञातवास की शर्त रखी। शकुनि की कपट चाल से पराजित होकर पाण्डव बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के लिये जाने को तत्पर हुए[49]।

उस समय युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह, सोमदत्त, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, विदुर, धृतराष्ट्र, धृतराष्ट्र-पुत्रों, युयुत्सु, सञ्जय तथा अन्य सभासदों को पुकारकर कहा – 'मैं जाता हूँ, आकर फिर आप लोगों के दर्शन करूँगा' युधिष्ठिर के इन वचनों को सुनकर भी लज्जा से अभिभूत हुए वे लोग युधिष्ठिर से कुछ नहीं बोले[50]।

क्यों पितामहजी! संसार में कथन है, कि मूल धन से ब्याज अधिक प्यारा होता है, सो ऐसी पदवी (=पितामहपदवी) पाने वाले आपके मुँह से भी पाण्डवों के कष्ट-समय में, एक भी वचन सहानुभूति का नहीं निकला और न आपने दुर्योधनादि को धिक्कारा ही! क्या एक हृदयवान् पितामह अपने अपेक्षाकृत अधिक धर्मात्मा पौत्रों की ऐसी दुर्दशा देखकर चुप रह सकता है! लाग वाला पितामह तो ऐसे समय में उन पौत्रों के साथ ही चल पड़ता जबर्दस्ती!!

यथाक्रमम्॥ (महाभा.सभा. ७७.१)

50'आमन्त्रयामि भरतांस्तथा वृद्धं पितामहम्। राजानं सोमदत्तं च महाराजं च बाह्लिकम्॥ द्रोणं कृपं नृपांश्चान्यानश्वत्थामानमेव च। विदुरं धृतराष्ट्रं च धार्तराष्ट्रांश्च सर्वशः। युयुत्सुं सञ्जयं चैव तथैवान्यान् सभासदः। सर्वानामन्त्र्य गच्छामि द्रष्टास्मि पुनरेत्य वः॥ न च किञ्चिदथोचुस्तं ह्रिया सन्ना युधिष्ठिरम्' (महाभा. ७८.१-४)

51'हा हा! गच्छन्ति नो नाथाः समवेक्षध्वमीदृशम्। अहो धिक्! कुरुवृद्धानां बालानामिव चेष्टितम्॥ राष्ट्रेभ्यः पाण्डुदायादाँल्लोभान्निर्वासयन्ति ये। अनाथाः स्म

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

पितामहजी! आपसे तो सामान्य प्रजाजन ही अच्छे रहे-'पाण्डवों की वनयात्रा से विकल होकर सभी नागरिक विलाप करते हुए कह रहे हैं, कि 'हाय-हाय हमारे प्यारे सम्राट् युधिष्ठिर इस प्रकार वन में जा रहे हैं। कुरुकुल के बड़े बूढ़ों की इस मूर्खता को धिक्कार है। वे लोभवश धर्मात्मा पाण्डवों को देश से निकाल रहे हैं। हम तो इनके बिना अनाथ हो गये। इन अन्यायी कौरवों के साथ, हमारी कोई सहानुभूति नहीं रही।...। जिधर ये युधिष्ठिर जा रहे हैं, उधर ही बन्धु-बान्धवों सहित हम भी उनके पीछे जायेंगे। अपने बाग-बगीचों-खेतों और घरों को त्यागकर, समान दुःख-सुख वाले होकर हम, उत्तम धार्मिक युधिष्ठिर के ही अनुगामी बनेंगे[51]।

हे पिमामहजी! आपकी चुप्पी भरी निरीहता और कर्त्तव्य-भ्रष्टता को प्रजाजनों ने तो धिक्कारा ही, प्रायः तटस्थ रहने वाले श्रीकृष्ण-भ्राता बलराम ने भी सूचना पाने पर आप सबको धिक्कारा – 'भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और धृतराष्ट्र आदि वृद्धजन; पाण्डवों को वनवास में भेजकर किस प्रकार सुख से रह रहे हैं, धिक्कार है, इन पापबुद्धि भरतवंशियों को!![52]

सबने कहा पर आपने...?

वयं सर्वे वियुक्ताः पाण्डुनन्दनैः॥ दुर्विनीतेषु लुब्धेषु का प्रीतिः कौरवेषु नः' (महाभा. सभा. ८०.२४-२६) 'ते भ्रातर इव क्षिप्रं सपुत्राः सहबान्धवाः। गच्छन्तमनुगच्छामो येन गच्छति पाण्डवः॥ उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च। एकदुःखसुखाः पार्थमनुयाम सुधार्मिकम्' (महाभा. सभा. ७९.३१...)

[52]'कथं नु भीष्मश्च कृपश्च विप्रो द्रोणश्च राजा च कुलस्य वृद्धः। प्रव्राज्य पार्थान् सुखमाप्नुवन्ति धिक् पापबुद्धीन् भरत-प्रधानान्' (महाभा.वन. ११९.९)

[53](युधिष्ठिर उवाच-) 'युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि विप्रः। अक्षान् प्रयोक्तुं कुशलोऽस्मि देविनां कङ्केतिनाम्नाऽस्मि विराट विश्रुतः॥ (महाभा.वि. ७.१२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म–प्रकरण

भीष्म पितामह ? [७]

कौरवों द्वारा विराट–गोहरण और भीष्म पितामह

चण्डाल चौकड़ी की धूर्त्तता और युधिष्ठिर की मूर्खता के कारण जो दुबारा जुआ खेला गया, उसके परिणामस्वरूप पाण्डव सपत्नीक बारह वर्ष वन में ठोकरें खाते रहे। तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवास का वर्ष था। पाण्डवों ने नाना साङ्केतिक नाम रखकर, विभिन्न अक्षत्रियोचित कार्यों को अपनाते हुए, मत्स्य देश के राजा विराट के यहाँ, उनकी राजधानी विराट नगर में यह वर्ष बिताया। युधिष्ठिर ने अपना नाम 'कङ्क' रखा और सभास्तार (=राजा को द्यूतक्रीडा में सहयोग करने वाला) के रूप में काम किया। भीम ने 'बल्लव'

(भीम उवाच–) 'पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं बल्लवो नाम भारत। उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः॥ सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे' (महाभा.वि. २.१,२)

(अर्जुन उवाच–) 'गायामि नृत्याम्यथ वादयामि भद्रोऽस्मि नृत्ये कुशलोऽस्मि गीते। त्वमुत्तरायै प्रदिशस्व मां स्वयं भवामि देव्या नरदेव नर्त्तकः....। बृहन्नलां मां नरदेव विद्धि सुतं सुतां वा पितृमातृवर्जिताम् (महाभा. वि. ११.८,९)

(नकुल उवाच–)'ग्रन्थिको' नाम नाम्नाहं कर्मैतत् सुप्रियं मम। कुशलोऽस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सने' (महाभा.वि. ३.४)

(सहदेव उवाच–) 'सम्प्राप्य राजानममित्रतापनं ततोऽब्रवीन्मेघ- महौघनिस्वनः। वैश्योऽस्मि नाम्नाहमरिष्टनेमिर्गोसंख्य आसं कुरुपुङ्गवानाम्' (महाभा.वि. १०.५)

(द्रौपदी जगाद–) 'सैरन्ध्री तु भुजिष्यास्मि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते। केशाञ्जानाम्यहं कर्त्तुं पिंषे साधु विलेपनम्। मल्लिकोत्पलपद्मानां चम्पकानां तथा शुभे। ग्रन्थयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परमशोभनाः।...। मालिनीत्येव मे नाम स्वयं देवी चकार सा'।...। यो मे न दद्यादुच्छिष्टं न च पादौ प्रधावयेत्...' (महाभा. वि. ९.१७–२१,३२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

नाम से स्वोचित तथा स्वजनोचित, रसोइये का काम संभाला। अर्जुन ने महासंयम धारण करके राजमहल की कन्याओं को नृत्यगीत सिखाने का कार्य अपनाया और हिंजड़े का वेष बनाकर अपना नाम रखा 'बृहन्नला'। नकुल ने 'ग्रन्थिक' नाम से विराटराज की अश्वशाला का काम हाथ में लिया। सहदेव ने तन्तिपाल (=पशुरक्षक) के रूप में विराट-नरेश की गोशाला का काम संभाला और अपना नाम 'अरिष्टनेमि' धरा। द्रौपदी ने अपना नाम 'मालिनी' रखा और वह रनिवास में सैरन्ध्री (=केशसज्जा, गन्धलेपननिर्माण, मालाग्रथन का काम करने वाली सेविका) के रूप में अपनी शर्तों पर वहाँ निवास करती रही[53]।

अज्ञातवास वाले तेहरवें वर्ष की समाप्ति के केवल १३ तेरह (१४ चौदह) दिन ही शेष थे। तभी विराट महाराज के साले और सेनापति महाबलशाली कीचक ने सैरन्ध्री 'मालिनी' को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहा। फलतः वह गन्धर्व (=बल्लव=भीम) के हाथों मारा गया। बदला लेने पर उतारू उपकीचक जो संख्या में १०५ थे, वे भी बल्लव के द्वारा कीचक के ही रास्ते भेज दिये गये।

उधर अज्ञातवास-वर्ष के आरम्भ से ही, दुर्योधन गुप्तचरों द्वारा पाण्डवों का पता लगाने का प्रयास कर रहा था। कीचक-उपकीचकों के वध के समाचार पाकर, दुर्योधन को लगा कि हो न हो कीचक का वध किसी गुप्त गन्धर्व ने नहीं, अपितु भीमसेन ने ही किया होगा। क्योंकि कीचक जैसे महाबलिष्ठ को मारने में तो भीम जैसा ही कोई अति

---

[54]'अथ वै धार्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः। मृगयित्वा बहून् ग्रामान् राष्ट्राणि नगराणि च॥ संविधाय यथादृष्टं यथादेशप्रदर्शनम्। कृतकृत्या न्यवर्त्तन्त ते चरा नगरं प्रति॥ तत्र दृष्ट्वा तु राजानं कौरव्यं धृतराष्ट्रजम्। द्रोणकर्णकृपैः सार्धं भीष्मेण च महात्मना॥ संगतं भ्रातृभिश्चापि त्रिगर्तैश्च महारथैः। दुर्योधनं सभामध्ये ह्यासीनमिदमब्रुवन्। कृतोऽस्माभिः परो यत्नस्तेषामन्वेषणे सदा। पाण्डवानां मनुष्येन्द्र तस्मिन् महति कानने।... न च विद्मो गता येन पार्थाः सुदृढविक्रमाः। मार्गमाणाः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

...ष्म-प्रकरण

बलिष्ठ ही समर्थ हो सकता है। किन्तु - 'उस समय अज्ञातवास की अवस्था में पाण्डवों का पता लगाने के लिये दुर्योधन ने जो गुप्तचर भेजे थे, वे अनेकों ग्रामों, राष्ट्रों और नगरों में उन्हें ढूँढ़कर खाली हाथ हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ वे राजसभा में बैठे हुए दुर्योधन के पास गये। उस समय वहाँ भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, त्रिगर्तदेश के राजा और दुर्योधन के भाई भी मौजूद थे। उन सबके सामने उन्होंने कहा -'राजन्! पाण्डवों का पता लगाने के लिये, हम सदा ही बड़ा प्रयत्न करते रहे; किन्तु वे किधर निकल गये, यह हम जान ही न सके। हमने पर्वतों के ऊँचे-ऊँचे शिखरों पर, भिन्न-भिन्न देशों में, जनता की भीड़ में तथा गाँवों और नगरों में भी उनकी बहुत खोज की, परन्तु कहीं भी उनका पता नहीं लगा। मालूम होता है, वे बिल्कुल नष्ट हो गये; इसलिये अब तो आपके लिये मङ्गल ही मङ्गल है। हमें इतना पता अवश्य लगा है, कि इन्द्रसेन आदि सारथि पाण्डवों के बिना ही द्वारकापुरी में पहुँचे हैं। वहाँ न तो द्रौपदी है और न पाण्डव ही हैं। हाँ, एक बड़े आनन्द का समाचार है। वह यह कि राजा विराट का जो महा बलशाली सेनापति कीचक था, जिसने कि अपने महान् पराक्रम से त्रिगर्त देश को दलित कर दिया था, उस पापात्मा को उसके भाईयों सहित रात्रि में गुप्त रूप से गन्धर्वों ने मार डाला है[54]।

गुप्तचरों की बातों को ध्यान से सुन रहे त्रिगर्त्त देश के राजा सुशर्मा ने विराट नगर

पदन्यासं तेषु तेषु तथा तथा। 'गिरिकूटेषु तुंगेषु नानाजनपदेषु च। जनाकीर्णेषु देशेषु खर्वटेषु पुरेषु च॥ नरेन्द्र! बहुशोऽन्विष्टा नैव विद्मश्च पाण्डवान्। अत्यन्तं वा विनष्टास्ते भद्रं तुभ्यं नरर्षभ॥...। प्राप्ता द्वारवतीं सूता विना पार्थैः परन्तप। न तत्र कृष्णा राजेन्द्र पाण्डवाश्च महाव्रताः॥ सर्वथा विप्रणष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ।...। इमां च नः प्रियां वीर वाचं भद्रवतीं शृणु। येन त्रिगर्ता निहता बलेन महता नृप। सूतेन राज्ञो मत्स्यस्य कीचकेन बलीयसा। स हतः पतितः शेते गन्धर्वैर्निशि भारत। अदृश्यमानैर्दुष्टात्मा भ्रातृभिः सह सोदरैः॥ (महाभा. वि. २५.५...२१)

55'अथ राजा त्रिगर्त्तानां सुशर्मा रथयूथपः। प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो बली॥ असकृन्निकृताः पूर्वं मत्स्यशाल्वेयकैः प्रभो। सूतेनैव च मत्स्यस्य कीचकेन

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

के कीचक-उपकीचकों के वध की भी बात सुनी, तो कीचकों के द्वारा पूर्व में पददलित हुए अतएव उनसे खार खाये हुए सुशर्मा ने अपने पूर्व वैर का बदला लेने के लिये –'कर्ण की ओर देखते हुए कहा–'राजन्! मत्स्य देश के शाल्ववंशीय राजा बार-बार हमारे ऊपर आक्रमण करते रहे हैं। मत्स्यराज के सेनापति महाबली सूतपुत्र कीचक ने ही मुझे और मेरे बन्धुओं को बहुत तंग किया था। कीचक बड़ा ही बलवान्, क्रूर, असहनशील और दुष्ट प्रकृति का पुरुष था। उसका पराक्रम जगद्-विख्यात था। इसलिये उस समय हमारी दाल नहीं गली। अब उस पापकर्मा और नृशंस सूतपुत्र को गन्धर्वों ने मार डाला है। उसके मारे जाने से राजा विराट आश्रयहीन और निरुत्साह हो गया होगा । इसलिये यदि आपको, समस्त कौरवों को और महामना कर्ण को ठीक जान पड़े, तो मेरा उस देश पर चढ़ाई करने का मन होता है। उस देश को जीतकर जो विविध प्रकार के रत्न, धन, ग्राम, राष्ट्र और हजारों गौएँ हाथ लगेंगी, उन्हें हम आपस में बाँट लेंगे।[55]"

त्रिगर्त्तराज सुशर्मा की योजना का कर्ण द्वारा भी अनुमोदन पाकर – 'दुर्योधन ने

पुनःपुनः। बाधितो बन्धुभिः सार्धं बलाद् बलवता विभो। स कर्णमभ्युदीक्ष्याथ दुर्योधनमभाषत। असकृन्मत्स्यराज्ञा मे राष्ट्रं बाधितमोजसा। प्रणेता कीचकस्तस्य बलवानभवत्पुरा।। क्रूरोऽमर्षी स दुष्टात्मा भुवि प्रख्यातविक्रमः। निहतः स तु गन्धर्वैः पापकर्मा नृशंसवान्।। तस्मिन् विनिहते राजा हतदर्पो निराश्रयः। भविष्यति निरुत्साहो विराट इति मे मतिः।। तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ। कौरवाणां च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः। एतत्प्राप्तमहं मन्ये कार्यमात्ययिकं हि नः। राष्ट्रं तस्याभियास्यामो बहुधान्यसमाकुलम्। आददामोऽस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च। ग्रामान् राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः।। अथवा गोसहस्राणि शुभानि च बहूनि च। विविधानि हरिष्यामः प्रतिपीड्य पुरं बलात्।। कौरवैः सह संगत्य त्रिगर्तैश्च विशां पते।। गास्तस्यापहरामोऽद्य सर्वैश्चैव सुसंहताः।' (महाभा. वि. ३०.१-११)

[56]'शासने नित्यसंयुक्तं दुःशासनमनन्तरम्। सह वृद्धैस्तु सम्मन्त्र्य क्षिप्रं योजय वाहिनीम्।। यथोद्देशं च गच्छामः सहितास्तत्र कौरवैः। सुशर्मा च यथोद्दिष्टं देशं यातु

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

दुःशासन को आज्ञा दी, भाई! तुम बड़े-बूढ़ों से सलाह करके चढ़ाई की तैयारी करो। हम लोग सब कौरवों के सहित एक नाके पर जायेंगे और महारथी सुशर्मा, त्रिगर्त्तदेशीय वीरों और सारी सेना के सहित दूसरे मोर्चे पर। पहले सुशर्मा चढ़ाई करेंगे। उसके एक दिन बाद हमारा कूच होगा। ये ग्वालियों पर आक्रमण करके विराट का गोधन छीन लेंगे। उसके बाद हम भी अपनी सेना को दो भागों में विभक्त करके राजा विराट की एक लाख गौएँ हरेंगे[56]।

घटनाचक्र कुछ ऐसा घूमा, कि त्रिगर्त्तराज सुशर्मा ने जब मत्स्यराज विराट पर आक्रमण किया, तब पाण्डवों के वनवास के अज्ञातवास सहित तेरह वर्ष पूरे हो चुके थे[57]।

पूर्व योजनानुसार सुशर्मा द्वारा मत्स्यदेश पर आक्रमण करने के पश्चात् –

"राजन्! जब मत्स्यराज विराट, गौओं को छुड़ाने के लिये त्रिगर्तसेना की ओर

महारथः। त्रिगर्तैः सहितो राजा समग्रबलवाहनः। प्रागेव हि सुसंवीतो मत्स्यस्य विषयं प्रति। जघन्यतो वयं तत्र यास्यामो दिवसान्तरे। विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः॥ ते यान्तु सहितास्तत्र विराटनगरं प्रति। क्षिप्रं गोपान् समासाद्य गृह्णन्तु विपुलं धनम्॥ गवां शतसहस्राणि श्रीमन्ति गुणवन्ति च। वयमप्यनुगृह्णीमो द्विधा कृत्वा वरूथिनीम्' (महाभा.वि. ३०.२०-२४)

57 'ततस्तेषां महाराज तत्रैवामिततेजसाम्। छद्मलिङ्गप्रविष्टानां पाण्डवानां महात्मनाम्॥ व्यतीतः समयः सम्यग् वसतां वै पुरोत्तमे। कुर्वतां तस्य कर्माणि विराटस्य महीपतेः। कीचके तु हते राजा विराटः परवीरहा। परां सम्भावनां चक्रे कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे॥ ततस्त्रयोदशस्यान्ते तस्य वर्षस्य भारत। सुशर्मणा गृहीतं तद् गोधनं तरसा बहु। (महाभा. वि. ३१.१-४)

58 'याते त्रिगर्तान् मत्स्ये तु पशूंस्तान् वै परीप्सति। दुर्योधनः सामात्यो विराटमुपयादथ॥ भीष्मो, द्रोणश्च, कर्णश्च, कृपश्च परमास्त्रवित्। द्रौणिश्च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

गये, तो दुर्योधन भी मौका देखकर अपने मन्त्रियों के सहित विराटनगर पर चढ़ आया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा, शकुनि, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख, दुःशल तथा और भी अनेकों महारथी दुर्योधन के साथ थे। ये सब कौरव वीर विराट की साठ हजार गौओं को सब ओर से रथों की पंक्तियों से रोककर घेरकर ले चले[58]।

क्यों पितामह जी! क्या कौरवों का यह कृत्य उचित था? यदेश के राजा और उसके राष्ट्र = उसकी प्रजा ने कौरवों का क्या बिगाड़ा था, जो उस पर आक्रमण कर दिया? जब तक विराटराज के बलशाली सम्बन्धी - सेनापति आदि जीवित थे, तब तक कौरवों का उस पर चढ़ाई करने का साहस नहीं हुआ। अब जब महाबली कीचक और उपकीचकों के मारे जाने पर मंत्स्यराज निर्बल हो गये, तो सुशर्मा द्वारा उकसाये जाने पर कौरव भी आक्रमण करने चल दिये। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा ने प्रतिशोध की भावना से विराट राज्य पर धावा बोला, परन्तु कौरवों के द्वारा चढ़ाई करने में क्या औचित्य था? निर्बलों की गौओं का अपहरण करना क्या क्षत्रियोचित कर्म था? क्या यह डाका नहीं था? और धर्म-धुरन्धर धर्म की सूक्ष्मता की दुहाई देने वाले पितामह जी! आप भी उन दुर्योधन आदि लुटेरों में सम्मिलित हो गये!! जैसा संग वैसा रंग। आप उन दुयोधनादि निकृतियों की सङ्गति में रहे, उसी का यह फल था !!

आपने तो वेदाध्ययन करते हुए अवश्य पढ़ा ही होगा, कि वेद कैसे लोगों की

सौबलश्चैव तथा दुःशासनः प्रभो।। विविंशतिर्विकर्णश्च चित्रसेनश्च वीर्यवान्। दुर्मुखो दुःशलश्चैव ये चान्ये महारथाः। एते मत्स्यानुपागम्य विराटस्य महीपतेः।। घोषान् विद्राव्य तरसा गोधनं जहुरोजसा।। षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति स्म। महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः।। (महाभा.वि. ३५.१-५)

59 'न मां प्रीणाति मद्भुक्तं श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे। अति ज्वलन्तीं कौन्तेये विवर्णकरणीं मम। सपत्नानृध्यतोऽऽत्मानं हीयमानं निशम्य च। अदृश्यामपि कौन्तेयश्रियं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

सङ्गति करने का सन्देश देते हैं। वेद में स्पष्ट कहा गया है – 'पुनर् ददताऽघ्नता जानता सङ्गमेमहि' (ऋ. ५.५१.१५)। संगति करने योग्य ये लोग हैं – १. देने के स्वभाव वाले, २. अहिंसक=हिंसा न करने वाले=निर्बलों की रक्षा करने वाले, ३. ज्ञानी लोग। तो पितामह जी! दुर्योधन-शकुनि आदि देने के स्वभाव वाले नहीं थे; अपितु दूसरों की सम्पत्ति, धन, भूमि, गौएँ और स्त्री हड़पने के स्वभाव वाले, ईर्ष्यालु स्वभाव के दुर्जन थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ से लौटकर आने पर –

'दुर्योधन ने कहा – 'पिताजी! मेरे हृदय में द्वेष की आग धधक रही है। जिस दिन से मैंने युधिष्ठिर की राज्यलक्ष्मी देखी है, मुझे खाना-पीना अच्छा नहीं लग रहा है। मैं दीन और दुर्बल हो रहा हूँ। युधिष्ठिर के यज्ञ में राजाओं ने इतना धन-रत्न दिया, कि मैंने इससे पहले उतना देखा तो क्या सुना तक नहीं था। शत्रु की अतुल धनराशि देखकर मैं बैचेन हो गया हूँ"। 'युधिष्ठिर ने मुझे ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ समझ कर, सत्कार के साथ रत्नों की भेंट लेने के लिये नियुक्त किया था। इसलिये मैं सब कुछ जानता हूँ। हीरों, रत्नों, मणियों और माणिक्यों की इतनी राशि इकट्ठी हो गई थी, कि उसके ओर छोर का पता तक नहीं चलता था। जब रत्नों की भेंट लेते-लेते मेरे हाथ थक गये, तब मैंने क्षण

पश्यन्निवोद्यताम्॥ तस्मादहं विवर्णश्च दीनश्च हरिणः कृशः'। 'पृथग्विधानि रत्नानि पार्थिवाः पृथिवीपते। आहरन् क्रतुमुख्येऽस्मिन कुन्तीपुत्राय भूरिशः॥ न क्वचिद्धि मया तादृग् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः। यादृग् धनागमो यज्ञे पाण्डुपुत्रस्य धीमतः॥ अपर्यन्तं धनौघं तं दृष्ट्वा शत्रोरहं नृप। शमं नैवाभिगच्छामि चिन्तयानो विशाम्पते' (महाभा. सभा. ४९.१५-१७,२१-२३)

'ब्राह्मणा वाटधानाश्च गोमन्तः शतसङ्घशः। त्रिखर्वं बलिमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः'। 'सर्वरत्नान्युपादाय पार्थिवा वै जनेश्वर। यज्ञे तस्य महाराज पाण्डुपुत्रस्य धीमतः॥ वैश्या इव महीपाला द्विजातिपरिवेषकाः। न सा श्रीर्देवराजस्य यमस्य वरुणस्य च। गुह्यकाधिपतेर्वापि या श्री राजन् युधिष्ठिरे। तां दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रस्य श्रियं परमिकामहम्। शान्तिं न परिगच्छामि दह्यमानेन चेतसा'। 'एतादृशस्य मे किं नु जीवितेन

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भर विश्राम किया, तब भेंट लिये राजाओं की भीड़ बड़ी दूर तक लग गई थी"। "जिन रत्नों के मैंने कभी नाम भी नहीं सुने थे, उन्हें मैंने पाण्डवों के पास अपनी आँखों से देखा है"। "चारों वर्णों के द्वारा दिये गये प्रेमोपहार, विजातियों की उपस्थिति और उनके द्वारा किये गये सम्मान को देखकर मेरी छाती जलने लगी है, मैं मरना चाहता हूँ" पिताजी! उन्हीं कारणों से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। चैन नहीं है। मैं दिनों-दिन दुबला और पीला पड़ता जाता हूँ। शोक के समुद्र में गोते खा रहा हूँ।

पिताजी! द्यूतक्रीड़ाकुशल शकुनि-मामाजी केवल द्यूत के द्वारा पाण्डवों की सारी राज्यलक्ष्मी ले लेने का उत्साह दिखाते हैं। आप इनको आज्ञा दे दीजिये"[59]।

पितामहजी! देख लिया? कितनी ईर्ष्यालु प्रकृति के थे ये! पाण्डवों ने अपने पराक्रम से, पुरुषार्थ से और सद्व्यवहार से राज्यलक्ष्मी प्राप्त की थी। उसे दुरात्मा दुर्योधन आदि छलकपट से--कपटद्यूत से हथियाना चाहते थे। ये दानी नहीं, अपितु हड़पने वाले थे। क्या इनकी संगति में आपका रहना उचित था?

संगति करने योग्यों के विषय में वेद का दूसरा लक्षण है — जो अहिंसक (=हत्या न करने वाले) हों, दयालु हों, उनके साथ संगति करें। दुर्योधनमण्डली तो आरम्भ से ही हिंसात्मा (=हत्यारी) रही है। पहले भीमसेन को कपट से विष देकर फिर बेहोश-

---

परन्तप'। उत्सहते शकुनिस्तु श्रियमाहर्तुमक्षवित्। द्यूतेन पाण्डुपुत्रस्य तदनुज्ञातुमर्हसि। (महाभा.सभा. ४९.२४;३४-३६;४२)

60'ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम्। विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया'॥ 'शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः। विषेण च परीताङ्गो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः॥' ततो बद्ध्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम्। मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाज्जलमपातयत्॥' 'ततः समेत्य बहुभिस्तदा नागैर्महाविषैः। अदश्यत भृशं भीमो महादंष्ट्रैर्विषोल्बणैः॥ ततोऽस्य दश्यमानस्य तद् विषं कालकूटकम्। हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जङ्गमेन तु' (महाभा.आदि. १२७.४५,५३,५४,५६,५७) 'भोजने भीमसेनस्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

अवस्था में उसे लताओं से बाँधकर गङ्गानदी में फेंक दिया था। अपनी ओर से तो उन्होंने भीम की हत्या करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी, वह तो भीमसेन का सत्त्वातिशय और नागदंश कारण था कि वह बच गया। दुबारा फिर भीम को विष दिया। पता लगने पर युयुत्सु ने इसकी सूचना पाण्डवों को दी। भीम फिर किसी तरह से मरने से बच गया[60]।

फिर माता-सहित पाँचों पाण्डवों की लाक्षागृह में जला कर हत्या करने का पूरा षड्यन्त्र रचा था और लाक्षागृह के जल जाने पर वे खुश हुए थे। धृतराष्ट्र ने भी ऊपर से ही केवल शोक-प्रकट किया था। पितामहजी! आपको अवश्य उस समय हार्दिक शोक हुआ होगा, अतएव आप जलाञ्जलि देने को उद्यत हुए थे। वह तो आप विदुर द्वारा असलियत बता देने पर रुक गये[61]।

पर आप पर उस समय दुर्योधन की हत्यावृत्ति तो प्रकट हो ही गई होगी। फिर भी

पुनः प्राक्षेपयद् विषम्। कालकूटं नवं तीक्ष्णं सम्भृतं लोमहर्षणम्। वैश्यापुत्रस्तदाचष्ट पार्थानां हितकाम्यया। तच्चापि भुक्त्वाजरयदविकारं वृकोदरः' (महाभा.आदि. १२८. २७,२८)

61'स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ। गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत्।'...। वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु॥ शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित्। आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय॥ सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया। मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापय॥...। ज्ञात्वा च तान् सुविश्वस्तान् शयानानकुतोभयान्। अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः॥ दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनः। न गर्हयेयुरस्मान् वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित्। (महाभा.आदि. १४३.२,९,१०,१६,१७)

'विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः। दग्धवान् पाण्डुदायादान् न ह्येनं प्रतिषिद्धवान्।'... एवमुक्त्वा ततश्चक्रे... उदकं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः (महाभा. १४९.४,१५)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि-मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

आप उनके संग-साथ बने रहे।

तीसरा वेद-संदेश है – 'ज्ञानवान् की संगति में रहें'। पितामह जी! आप जिस दुर्योधन-दल के साथ चिपके रहे क्या वे ज्ञानवान् थे? कतई नहीं। सज्ज्ञान को तो वे अपने पास फ़टकने भी नहीं देते थे। आप उन्हें समझाते थे, विदुर जी समझाते और ज्ञान भरा उपदेश करते थे; द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और स्वयं धृतराष्ट्र एवं माता भी, ये सब समझाने का प्रयत्न करते थे; पर दुर्योधन था, कि वह किसी की मानता ही न था[62]।

वह दुर्ज्ञान और अज्ञान का नैत्यक ग्राहक था। वह तो कर्ण, शकुनि और दुःशासन

---

[62]'मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च। शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव' (महाभा.उ. १२८.१९) 'दुर्योधन! यथाह त्वां पिता भरतसत्तम। भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद्वचः। भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचितिः कृता' (महाभा.उ. १२९.२०,२१)

[63](शकुनिरुवाच) 'दुर्योधन न तेऽमर्षः कार्यः प्रति युधिष्ठिरम्। भागधेयानि हि स्वानि पाण्डवा भुञ्जते सदा'। 'लब्धश्चानभिभूतार्थैः पित्र्योंऽशः पृथिवीपते। विवृद्धस्तेजसा तेषां तत्र का परिदेवना।' 'अग्निदाहान्मयं चापि मोक्षयित्वा स दानवम्। सभां तां कारयामास सव्यसाची परन्तपः। तेन चैव मयेनोक्ताः किंकरा नाम राक्षसाः। वहन्ति तां सभां भीमास्तत्र का परिदेवना।। 'धनञ्जयो वासुदेवो भीमसेनो युधिष्ठिरः। नकुलः सहदेवश्च द्रुपदश्च सहात्मजैः।। नैते युधि पराजेतुं शक्या देवगणैरपि' (महाभा.सभा. ४८.१,५,८,९,१५,१६) 'यत्र हर्षः त्वया कार्यः सत्कर्तव्याश्च पाण्डवाः। तत्र शोचसि राजेन्द्र विपरीतमिदं तव।। प्रसीद मा त्यजात्मानं तुष्टश्च सुकृतं स्मर। प्रयच्छ राज्यं पार्थानां यशो धर्ममवाप्नुहि।। क्रियामेतां समाज्ञाय कृतज्ञस्त्वं भविष्यसि।। सौभ्रात्रं पाण्डवैः कृत्वा समवस्थाप्य चैव तान्।। पित्र्यं राज्यं प्रयच्छैषां ततः सुखमवाप्स्यसि।।' (महाभा.वन. २५१.७-१०)... दुर्योधनस्तदा। 'विजेष्यामि रणे पाण्डूनिति चास्याभवन्मतिः।' (महाभा.वन. २५२.३२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

के द्वारा दी गई दुर्ज्ञानपूर्ण मन्त्रणाओं से सन्तुष्ट होता था। उसको इन तीनों की बातें ही प्रिय और हितकर लगती थीं। और तो और कभी-कभी शकुनि ने भी कुछ ज्ञान उसे देने का प्रयास किया, पर वह उसे नहीं रुचा[63]।

तो ज्ञानी पितामह जी! जब ये शास्त्रवचनानुसार संगति योग्य नहीं थे—साथ रहने योग्य नहीं थे—साथ रखने योग्य नहीं थे, तो फिर आप इनकी संगति में क्यों रहे? इन पराई-सम्पत्तियों को छल-कपट-लूट के द्वारा हड़पने वालों की संगत में रहने से, आपकी वृत्ति भी वैसे ही बन गई। 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति'। परिणामतः विराटराज की गौओं को हरण करके लूटने के कुकृत्य में आप भी इन लुटेरों के संग हो लिये। इसलिये लोक में अब दुर्जनों के संग से सज्जनों में विकार के उदाहरण रूप में आपका नाम लिया जायेगा – "असतां सङ्गदोषेण यान्ति सन्तोऽपि विक्रियाम्। दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः"।

पितामह! क्या यह आपकी बुद्धि का प्रमाद नहीं था? आपकी बुद्धि उस समय सही निर्णय नहीं कर सकी। चाहिये तो यह था, कि आप इनकी लुटेरावृत्ति, हिंसावृत्ति और दुष्ट मन्त्रणा की कठोर शब्दों में निन्दा करते और धृतराष्ट्र को भी इनकी करतूतों को रोकने के लिये बाध्य करते। परिणाम यह होता, कि या तो ये दुष्ट सही मार्ग पर आ जाते या आपको अपने से अलग होने को मजबूर कर देते। तो भी अच्छा था, आप कुपुरुषों की सङ्गति से बच जाते।

आपसे तो विदुर ही ठीक रहे। जिन्होंने इनके कोप की परवाह न करके सदा कठोर शब्दों में इनकी कुमन्त्रणाओं की और इनके कुकृत्यों की निन्दा की। फलतः एक बार तो उन्हें धृतराष्ट्र ने अपने यहाँ से चले जाने को कह दिया –

---

[64]'एतद् वाक्यं विदुर यत्ते सभायामिह प्रोक्तं पाण्डवान् प्राप्य मां च। हितं तेषामहितं मामकानामेतत् सर्वं मम नावैति चेतः॥ इदं त्विदानीं गत एव निश्चितं तेषामर्थे पाण्डवानां यदात्थ। तेनाद्य मन्ये नासि हितो ममेति कथं हि पुत्रं पाण्डवार्थे त्यजेयम्॥...।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि; उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

'विदुर ! यह तुम क्या कह रहे हो। तुम पाण्डवों का हित चाहते हो और मेरे पुत्रों का अहित । मेरे मन में तुम्हारी बातें नहीं बैठतीं। तुम बार-बार पाण्डवों के पक्ष की बात कहते हो, भला मैं उन पांण्डवों के लिये अपने पुत्रों को कैसे छोड़ सकता हूँ। विदुर ! मैं तो तुम्हारा इतना सम्मान करता हूँ और तुम मेरे पुत्रों का अहित चाहते हो, अब मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो, अथवा चले जाओ' इतना कहकर धृतराष्ट उठ खड़े हुए और झटपट महल में चले गये। धृतराष्ट्र की यह दशा देखकर विदुर ने कहा – 'अब कौरवकुल का नाश अवश्यम्भावी है'। ऐसा कहकर उन्होंने पाण्डवों से मिलने के लिये यात्रा आरम्भ कर दी[64] ।

विदुर के पाण्डवों से मिलने के लिये काम्यक वन को चले जाने के बाद, धृतराष्ट्र को पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने सञ्जय को भेजकर विदुर को वापिस हस्तिनापुर बुला लिया और अपने किये की क्षमा माँग ली और विदुर जी मान गये[65]।

विदुर जी से भी यहाँ अनवधानता=(प्रमाद) हो गया । चूक हो गई। यह अवसर था, कि वे धृतराष्ट्र को तथा उनके द्वारा दुर्योधन-मण्डली को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास

स मां जिह्मं विदुर सर्वं ब्रवीषि मानं च तेऽहमधिकं धारयामि। यथेच्छकं गच्छ वा तिष्ठ वा त्वं सुसान्त्व्यमानाप्यसती स्त्री जहाति।। एतावदुक्त्वा धृतराष्ट्रोऽन्वपद्यदन्तर्वेश्म सहसोत्थाय राजन्। नेदमस्तीत्यथ विदुरो भाषमाणः सम्प्राद्रवद् यत्र पार्था बभूवुः (महाभा.वन. ४.१८-२१)

65'गच्छ सञ्जय जानीहि भ्रातरं विदुरं मम। यदि जीवति, रोषेण मया पापेन निर्धुतः।। नहि तेन मम भ्रात्रा सुसूक्ष्ममपि किञ्चन। व्यलीकं कृतपूर्वं वै प्राज्ञेनामित-बुद्धिना।। स व्यलीकं परं प्राप्तो मत्तः परमबुद्धिमान्। त्यक्ष्यामि जीवितं प्राज्ञ तं गच्छानय सञ्जय'।...। 'साऽङ्कमानीय विदुरं मूर्धन्याघ्राय चैव ह। क्षम्यतामिति चोवाच यदुक्तोऽसि मयानघ।।'...। क्षान्तमेवं मया राजन् गुरुर्मे परमो भवान्' (महाभा.वन. ६.८-१०,२१,२२)

करते। विदुरजी धृतराष्ट्र के सामने यह शर्त रखते, कि आप यदि मुझे अपने पास रखना चाहते हैं, तो पहले पाण्डवों को उनका राज्य, जिसे छलकपट के द्वारा आपके पुत्रों ने हथियाया है उसे तुरन्त लौटा दें और तदर्थ उन्हें सम्मानपूर्वक वन से यहाँ बुलावें। क्योंकि विदुरजी को धृतराष्ट्र ने भ्रातृस्नेह के कारण नहीं बुलाया, अपितु इस डर से वापिस बुलाया कि नीतिमान् विदुर यदि पाण्डवों के साथ रहेंगे, तो पाण्डवों का पक्ष अति प्रबल हो जायेगा और उनकी बढ़ती होती रहेगी[66]।

वास्तव में दुर्योधन के कुकृत्यों का एक बड़ा कारण पिता धृतराष्ट्र का दुर्योधन के प्रति अनुचित अन्धमोह भी था। बड़ों के सदुपदेश के कारण धृतराष्ट्र शुरु में तो दुर्योधन को कुकृत्य से बाज आने को कहते थे, पर उसके हठ करने पर उसकी बात मान लेते थे मोहवश। स्वयं दुर्योधन की माता गान्धारी ने भी इस हेतु को पहचाना था और भरी सभा में धृतराष्ट्र को उलाहना देते हुए कहा था –

'हे बेटे के लाड में फंसे हुए धृतराष्ट्र! तुम्हीं इस विषय में निन्दा करने योग्य हो, जो कि इस दुर्योधन की पापमयी प्रवृत्ति को जानते हुए भी, इसी की अक्ल के अनुसार चलते रहे हो। हे राजन्! काम और क्रोध से आतङ्कित और लोभ से परिपूर्ण यह दुर्योधन अब तुम्हारे द्वारा जबरदस्ती सन्मार्ग पर नहीं लाया जा सकता। इस मूर्ख, बचकाने, दुष्टात्मा, दुष्टमित्रों वाले और लोभी दुर्योधन को जो आपने राज्य की बागडोर सौंपी, हे धृतराष्ट्र! आप उसी का फल भोग रहे हैं। कौन राजा अपने आत्मीय जनों में सम्भावित फूट की

---

66 'गते तु विदुरे राजन्नाश्रमं पाण्डवान् प्रति। धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः पर्यतप्यत भारत॥ विदुरस्य प्रभावं च सन्धि-विग्रह-कारितम्। विवृद्धिं च परां मत्वा पाण्डवानां भविष्यति॥' (महाभा.वन. ६.१,२)

67 'त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र! सुतप्रियः॥ यो जानन् पापतामस्य तत्प्रज्ञामनुवर्त्तसे। स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः॥ अशक्योऽद्य त्वया राजन्! विनिवर्त्तयितुं बलात्। राष्ट्रप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः॥ दुःसहायस्य लुब्धस्य

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

उपेक्षा कर सकता है। तुमने उपेक्षा करके फूट पड़ने दी, इस पर तुम्हारे शत्रु हसेंगे[67]।

क्यों पितामहजी! विदुर के समान आपका भी आचरण होता, तो एक से दो हो जाते। आप दोनों को देखकर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि भी धर्म के पक्ष में आ जाते। सभी समर्थ लोगों को पाण्डवों के न्यायोचित पक्ष का समर्थन करते देख, सम्भवतः दुर्योधन-मण्डली अपने कुकृत्यों से बाज आती और महाभारत युद्ध रूपी विनाशकारी परिणाम न होता।

भीष्म पितामह ? [८]

कृतघ्न दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण को कैद करने की योजना और भीष्म पितामह

श्रीकृष्ण पाण्डवों का सन्देश लेकर शान्ति-प्रस्ताव हेतु हस्तिनापुर आने वाले हैं, यह जानकर, धृतराष्ट्र ने जब श्रीकृष्ण को भेंट करने के विषय में विदुर से कहा-

'हे विदुर! मैं श्रीकृष्ण को समान रंग वाले उत्तम घोड़ों से युक्त सोलह स्वर्ण जटित रथ, आठ उत्तम हाथी, सौ दासियाँ, सौ दास, दिन की भांति रात्रि में भी चमकने वाली सुतेजा मणि, अठारह हजार उत्तम ऊर्णावस्त्र, बढ़िया चीनोत्पन्न अजिन, अति वेगवान् अश्वतरी यान और उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ भेंट करूँगा[68]।

धृतराष्ट्रोऽश्नुते फलम्। कथं हि स्वजने भेदमुपेक्षेत महीपतिः। भिन्नं हि स्वजनेन त्वां प्रहसिष्यन्ति शत्रवः (महाभा.उ. १२९.११-१४)

68 'तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने। प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तां मे कथयतः शृणु॥ एकवर्णैः सुकलृप्ताङ्गैर्बाह्लिजातैर्हयोत्तमैः। चतुर्युक्तान् रथांस्तस्मै रौक्मान् दास्यामि षोडश॥ नित्यप्रभिन्नान् मातंगानीषादन्तान् प्रहारिणः। अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव॥ दासीनामप्रजातानां शुभानां रुक्मवर्चसाम्। शतमस्मै प्रदास्यानि दासानामपि तावताम्॥ आविकं च सुखस्पर्शं पार्वतीयैरुपाहृतम्। तदस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाष्ट च॥ अजिनानां सहस्राणि चीनदेशोद्भवानि च।...। दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म–प्रकरण

धृतराष्ट्र की बात को ध्यान से सुन रहे विदुर, धृतराष्ट्र की छद्म-भावना को ताड़ गये, सो बोले – 'हे राजन्! आप पूज्य श्रीकृष्ण को जो कुछ भेंट करना चाह रहे हैं, उन सब भेंटों के और समस्त पृथिवी रूपी भेंट के भी वे योग्य हैं – पात्र हैं। पर मैं आत्मा को साक्षी रखकर सत्य कहता हूँ, कि आप जो श्रीकृष्ण को देना चाहते हैं; वह अतिथि-सत्कार रूपी धर्म की दृष्टि से अथवा श्रीकृष्ण की प्रसन्नता-मान-सम्मान के लिये नहीं। अपितु वास्तव में कपट माया से पूर्ण है यह भेंट-आयोजन। इस भेंट कार्य में चालाकी से भरी दुर्भावना है। आप धन के बल पर श्रीकृष्ण को अपनी ओर करना चाहते हैं – पाण्डवों से फोड़ना चाहते हैं। न तो धन के द्वारा, न व्यर्थ के उद्यम से और न ही निन्दा के द्वारा आप श्रीकृष्ण को अर्जुन से पाण्डवों से अलग कर सकते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को अपने प्राणों के समान समझते हैं। जैसे प्राणों का त्याग असम्भव है, वैसे ही श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन का त्याग असम्भव है। श्रीकृष्ण को तो सत्कार-सम्मान में मात्र जलपूर्ण-कलश, पाद-प्रक्षालन और कुशलक्षेम पूछना; इतना ही अभीष्ट है। हाँ! उनको प्रसन्न करना है, तो जैसी पाण्डवों की न्यूनतम माँग है, कि 'हमें पाँच ग्राम (=अविस्थल,

---

मणिः। तमप्यस्मै प्रदास्यामि...। (महाभा.उ. ८६.५–११)

69'यत्त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु। एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चार्हति॥ न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात्। एतत् दित्ससि कृष्णाय सत्येनात्मानमालभे॥ मायैषा सत्यमेवैतच्छद्मैतद् भूरिदक्षिण। जानामि त्वन्मतं राजन् गूढं बाह्येन कर्मणा।...। अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं जिहीर्षसि। अनेन चाप्युपायेन पाण्डवेभ्यो विभेत्स्यसि॥ न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया। अन्यो धनञ्जयात् कर्त्तुमेतत्तत्त्वं ब्रवीमि ते॥ वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदास्य दृढभक्तिताम्। अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनञ्जयम्॥ अन्यत् कुम्भादपां पूर्णादन्यत् पादावसेचनात्। अन्यत् कुशलसम्प्रश्नान्नैषिष्यति जनार्दनः॥' 'पञ्च पञ्चैव लिप्सन्ति ग्रामकान् पाण्डवा नृप। न च दित्ससि तेभ्यस्तान् तच्छमं न करिष्यसि॥ (महाभा.उ. ८७.६–८,१०–१२,९) अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दी वारणावतम्।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म–प्रकरण

वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत, एक अन्य) ही दे दिये जायें', तदनुसार आप श्रीकृष्ण को वचन दे दें, कि हम पाण्डवों की इस बात को सहर्ष स्वीकार करते हैं। यदि पाँच ग्राम वाली बात भी मानने को तैयार नहीं होंगे, तो श्रीकृष्ण को शान्ति होने वाली नहीं है।[69]

विदुर की बात सुनते ही दुर्योधन की बुरी नीयत बाहर आ गई, वह बोला – 'विदुर ने कृष्ण के विषय में जो कुछ कहा है, वह सही है। श्रीकृष्ण का पाण्डवों के प्रति अपरिहार्य अनुराग है। इसलिये हे पिताजी ! आप जो उत्तम वस्तुएँ श्रीकृष्ण को देना चाहते है, वे नहीं देनी चाहियें। ऐसा करने से तो कृष्ण समझेंगे, कि ये लोग डर के मारे मेरी भेंट-पूजा कर रहे हैं। अब जब लड़ाई ठन गई है, तो बिना लड़ाई के, शान्ति की बात बेकार है[70] ।

दुर्योधन द्वारा पिता को दी जा रही सलाह को सुनकर भीष्म पितामह धृतराष्ट्र से बोले – तुम उनका सत्कार करो या न करो वे क्रुद्ध होने वाले नहीं है। उनकी कोई अवमानना न करे, वे अवमानना करने योग्य नहीं हैं। महाबाहु श्रीकृष्ण जो कुछ करने को कहें, उसे निःशङ्क होकर करना चाहिये और दुःखों से तारक वासुदेव कृष्ण के माध्यम से पाण्डवों को शान्त करके सुख प्राप्त करना चाहिये । धर्मात्मा श्रीकृष्ण निश्चय ही धर्मयुक्त और सबके लाभ की ही बात कहेंगे। इसलिये हे धृतराष्ट्र ! तुम्हें अपने बन्धुओं सहित

---

70 'यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत् सत्यमच्युते। अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान् प्रति जनार्दनः। यत्तत् सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने। अनेकरूपं राजेन्द्र! न तद् देयं कदाचन।...। मंस्यत्यधोक्षजो राजन्! भयादर्चति मामिति।...। विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात्' (महाभा.उ. ८८.१–६)

71 'सत्कृतोऽसत्कृतो वापि न क्रुध्येत जनार्दनः। नालमेनमवज्ञातुं नावज्ञेयो हि केशवः॥...। स यद् ब्रूयान् महाबाहुस्तत् कार्यमविशङ्कया। वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः॥ धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः। तस्मिन् वाच्या प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह' (महाभा.उ. ८८.८,१०,११)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण के प्रति, उनको प्रिय लगने वाली बात ही कहनी चाहिये[71]।

भीष्म पितामह का उपदेश सुनकर भुनभुनाया दुर्योधन बोला – हे राजन्! मैं तो इस राज्यलक्ष्मी का अकेले ही अपने परिवार मात्र के साथ ही उपभोग करूँगा। हे पितामह! मैं उन पाण्डवों के साथ तो जीते जी कभी इस राज्यलक्ष्मी का बंटवारा नहीं होने दूँगा और सुनिये एक बड़ा काम है, जिसे मैं करना चाहता हूँ, वह यह है, कि पाण्डवों का जो मुख्य सहारा श्रीकृष्ण हैं, उन्हें मैं उनके प्रातः यहाँ आते ही कैद कर लेता हूँ। श्रीकृष्ण के कैद कर लिये जाने पर सारे वृष्णि लोग, उनका राज्य और पाण्डव भी मेरे आधीन हो जायेंगें; सो आप ऐसा उपाय बताइये, कि जिससे इस बात का श्रीकृष्ण को पता न लगने पाये और इस कार्य में कोई भी बाधा न आवे[72]।

दुर्योधन की श्रीकृष्ण के निग्रह-सम्बन्धी क्रूर योजना को सुनकर धृतराष्ट्र तथा मन्त्रीगण दुःखी और अप्रसन्न होकर दुर्योधन को समझाने लगे। तभी भीष्म पितामह धृतराष्ट्र को लक्ष्य करके बोले – 'हे धृतराष्ट्र! दुष्ट मित्रों से घिरा हुआ अत्यन्त मन्दबुद्धि यह तेरा पुत्र, हितैषी जनों के द्वारा बार-बार समझाये जाने पर भी, सही बात को स्वीकार नहीं कर रहा है और अनर्थ की ओर ही बढ़ता जा रहा है और तुम भी हम सुहृद् जनों की बातों को अनसुना करके, कुपथ में प्रवृत्त हुए पापपूर्ण लक्ष्य वाले इस पापी दुर्योधन की ही हाँ में हाँ मिला रहे हो। महा दुर्बुद्धि तेरा यह पुत्र; उत्तम कर्मवान् कृष्ण को कैद करेगा तो अपने मन्त्रियों सहित यह शीघ्र नष्ट हो जायेगा। मैं इस दुर्बुद्धि, अधर्मी, क्रूर और

---

[72] 'न पर्यायोऽस्ति यद् राजन् श्रियं निष्केवलामहम्। तैः सहेमामुपाश्नीयां यावज्जीवं पितामह॥ इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत् समर्थितम्। परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम्॥ तस्मिन् बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा। पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति॥ अत्रोपायान् यथा सम्यङ्न बुध्येत जनार्दनः। न चापायो भवेत् कश्चित् तद् भवान् प्रब्रवीतु मे॥ (महाभा.उ. ८८.१२-१५)

[73] '<u>परीतस्तव</u> पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र <u>सुमन्दधीः</u>। वृणोत्यनर्थं नैवार्थं याच्यमानः.

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

पापी दुर्योधन के अनर्थकारी वचनों को कभी नहीं सुन सकता। ऐसा कहकर सत्य पराक्रमी वृद्ध पितामह भीष्म अतिक्रोध से तमतमाते हुए, वहाँ से उठकर चले गये[73]।

पितामह जी! आप श्रीकृष्ण को पूज्य समझते थे। राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के अवसर पर, चेदिराज शिशुपाल और उसके अनुगामी राजाओं के विरोध के बावजूद आपने श्रीकृष्ण का ही प्रथम सत्कार करने का प्रस्ताव रखा। उस प्रथम सम्मान का कारण बताते हुए आपने कहा था – 'हम, सज्जनों के द्वारा सम्मानित कृष्ण की पूजा कर रहे हैं। कृष्ण की कीर्त्ति, शौर्य और विजय रूपी विशेषता को जानकर ही हम इनका सम्मान कर रहे हैं। इनके महान् गुणों के कारण ही, अन्य वृद्ध गुणीजनों को छोड़कर पहले इनके सत्कार का निश्चय हुआ है। दो बातें इनमें अतिविशेष हैं, जो कि इनकी पूजा के मुख्य हेतु हैं, वे हैं – वेदों और वेदाङ्गों का विशेष ज्ञान और अतिशय बलवत्ता। इस मनुष्य-लोक में श्रीकृष्ण ही सबसे विशिष्ट हैं। दान, निपुणता, व्रतपालन, ज्ञान, वीरता, लज्जा, यश, सद्बुद्धि, विनय, लक्ष्मी, धैर्य, सन्तोष और पुष्टि इन गुणों के तो ये आगार ही हैं। तो इन सर्वगुणसम्पन्न, श्रेष्ठ, पितृतुल्य, गुरुतुल्य कृष्ण की हम अर्चा कर

सुहृज्जनैः ॥ इममुत्पथि वर्त्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम्। वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्यानुवर्त्तसे॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्यायं सुदुर्मतिः। तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति॥ पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः। नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथञ्चन॥ इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान्। उत्थाय तस्मात् प्रातिष्ठद् भीष्मः सत्यपराक्रमः।' (महाभा.उ. ८८.१९-२३)

74 'अर्चामहेऽर्चितं सद्भिर्भुवि भूतसुखावहम्॥ यशः शौर्यं जयं चास्य विज्ञायार्चां प्रयुञ्ज्महे। गुणैर्वृद्धानतिक्रम्य हरिरर्च्यतमो मतः। पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ। वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा। नृणां हि लोके कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवाद् ऋते। दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा। सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताऽच्युते॥ तमिमं गुणसम्पन्नमार्यं च पितरं गुरुम्। अर्घ्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

रहे हैं। ये तो ऋत्विक् भी हैं, गुरु, आचार्य, स्नातक, राजा और प्रियतम भी हैं। तो फिर इन अत्यन्त पूजनीय की हम पूजा क्यों न करें[74]।

तो पितामह जी! आपने जिसे गुरु और पितृतुल्य तथा नरलोक में सर्वश्रेष्ठ कहा, उसी को कैद करने का षड्यन्त्र रचने वाले को आप सहन कर गये। यह तो कोई कारण बन गया, कि दुर्योधन यह दुष्कर्म नहीं कर सका। पर यदि वह करके दिखा देता तो आप क्या कर लेते? आपके रहते पाण्डवों को जला मारने वारणावत भेजा गया। आपके बेखबर या तटस्थ रहते प्रसिद्धि में तो पाण्डव जल ही गये थे। आपने तब क्या कर लिया? आपके अनमने रहने पर कपट जुआ खेला गया। आपके न चाहते हुए भी दुःशासन एकवस्त्रा द्रौपदी को सभा में घसीटकर लाया और नग्न करने का प्रयास किया गया। भरी सभा में आपके सामने ही नीच कामी दुर्योधन ने अपनी बांई ऊरु (=जांघ) पर से वस्त्र हटाकर उसे द्रौपदी को दिखाने का अतिनिन्दनीय काम किया !!! आपके सामने ही पाण्डवों को द्रौपदी सहित वन में कटाक्षवचनों के साथ भेजा गया। आपके रहते ही वनवास काल में पाण्डवों को नीचा दिखाने या मार डालने का प्रयास दुर्योधन ने किया!! आपने तब क्या कर लिया? वैसे ही आपके उपस्थित रहते कृष्ण बन्धक बना लिये जाते तो कोई आश्चर्य नहीं था।

क्यों भीष्म पितामहजी! बिल्ली को सामने देखकर कबूतर यदि आँखें बन्द कर ले, तो क्या वह मरने से बच जायेगा। दुर्योधन की घोर योजना को सुनकर आप कुपित होकर उठकर वहाँ से चल दिये। तो क्या आप बच गये? दुर्योधन समझ गया था, कि ये भले ही क्रोध कर लें - कुछ भी भला-बुरा कह लें, चलेगी तो मेरी ही और मेरे अनुसार ही

संक्षन्तुमर्हथ।। ऋत्विग् गुरुस्तथाऽऽचार्यः स्नातको नृपतिः प्रियः। सर्वमेतद् हृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः।।' (महाभा.सभा. ३८.१५-२२)

[75]'ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थिते। ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप। विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम्। अवरुह्य रथात् क्षिप्रं पद्भ्यामेव

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म पितामह को भी चलना पड़ेगा - करना पड़ेगा। सो उसका सोच सच निकला। आप भी महाविनाशकारी महाभारत-युद्ध में लपेटे गये और फलतः मारे गये और लाखों को मारा और मरवा दिया।

पितामह जी! क्या आपका उस समय कर्त्तव्य नहीं था, कि आप दुर्योधन की कृष्ण-निग्रह-संबंधी क्रूर योजना को सुनने पर उठकर उसकी जीभ खींच लेते - उस पर टूट पड़ते। आप बाद में प्रतिज्ञापूर्वक, दस दिन तक प्रतिदिन दस-दस हजार वीरों को मारते रहे, पर आश्चर्य कि, सब अनर्थ के मूल दुर्योधन पर आपका हाथ नहीं उठा! क्रोध करके भुनभुनाने से तो, आपका ही कुछ क्षय हुआ होगा, उसका क्या बिगड़ा? इस समय भी प्रतीत होता है, कि आप मति-प्रमाद (=बौद्धिक अनवधानता) के शिकार हो गये।

भीष्म पितामह ? [९]

अर्थदासता के कारण भीष्म का कौरवों की ओर से लड़ना

कौरवपक्षीय सभी बुजुर्ग हितैषी जनों के समझाने पर भी मदान्ध दुर्योधन जब नहीं माना, तो कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्धार्थ वीरों का जमाव हुआ। कौरवपक्ष की ग्यारह अक्षौहिणी सेना के और पाण्डवपक्ष की सात अक्षौहिणी सेना के भट वीर, मारने-मरने को आमनें-सामने आ डटे। अद्वितीय धनुर्धर और महावीर, पर हृदय से दयालु अर्जुन ने जब मरने-मारने पर उतारू लाखों वीरों को युद्ध भूमि में देखा, तो उनके भावी विनाश का विचार करके अर्जुन को युद्ध से वैराग्य हो गया। उसने युद्ध में लाखों वीरों के मरने पर उनकी स्त्रियों के वैधव्य, उनमें सम्भाव्य चरित्रदोष और उससे होने वाली वर्णसङ्करता का वर्णन करके राज्य के लिये युद्ध न करने का अपना निश्चय श्रीकृष्ण को बताया। पर

कृताञ्जलिः॥ पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः। वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम्। तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

वाग्मी श्रीकृष्ण ने लम्बा उपदेश देकर उसे युद्ध के लिये तैयार कर लिया।

जब दो समुद्रों के समान दोनों सेनाओं के वीरों ने रणाग्नि को प्रज्वलित करने वाले शंखों को फूंककर युद्ध-यज्ञ के आरम्भ को सूचित किया। तभी अचानक राजा युधिष्ठिर ने अपना कवच उतारा, अपने हथियारों को रथ में रखा और रथ से उतर कर हाथ जोड़े हुए मौन रहते हुए, पैदल ही भीष्म पितामह की ओर चल पड़े। उन्हें जाते देखकर अर्जुन भी भाईयों सहित उनके पीछे चल पड़ा। तब श्रीकृष्ण और मुख्य राजाओं ने भी उनका अनुगमन किया[75]।

युधिष्ठिर के इस अप्रत्याशित आचरण और उसके उद्देश्य के विषय में जानने की दोनों पक्षों के वीरों के मनों में भारी उत्सुकता थी। इसी बीच कौरव-सेना के बीच में से युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास पहुँचे और उनके दोनों चरण पकड़ कर प्रणाम करके बोले – 'हे दुर्धर्ष पितामह ! हम आपसे युद्ध करेंगे, सो मैं आपकी एतदर्थ अनुमति लेने आया हूँ। अतः आप अनुमति दीजिये और हमें आशीर्वाद प्रदान कीजिये'। तब भीष्म बोले – 'हे राजन्! इस युद्ध-क्षेत्र में तुम इस प्रकार मेरे पास नहीं आते, तो मैं तुम्हारी हार के लिये तुम्हें शाप दे देता। अब तुम्हारे इस आचरण से मैं प्रसन्न हूँ; हे पुत्र ! तुम युद्ध करो और विजय प्राप्त करो और इससे अधिक कौनसा वर तुम मुझसे मांगना चाहते हो, सो

सहितोऽन्वयात्।। वासुदेवश्च भगवान् पृष्ठतोऽनु जगाम तम्। तथा मुख्याश्च राजानस्तच्चित्ता जग्मुरुत्सुकाः' (महाभा.भी. ४३.११-१५)

[76]'तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः। भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम्।। आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह। अनुजानीहि मां तात! आशिषश्च प्रयोजय।। भीष्म उवाच-यद्येवं नाभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते। शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत।। प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव। यत्तेऽभिलषितं चान्यत् तदवाप्नुहि संयुगे।। व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकाङ्क्षसि। एवंगते महाराज न तवास्ति पराजयः।। <u>अर्थस्य पुरुषो दासो</u>

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

मांगो । हे राजन् ! मनुष्य अर्थ का (=धन-सम्पत्ति का) दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है। यही सत्य है। मैं धनोपभोग के कारण दुर्योधनादि के साथ बंधा हुआ हूँ। इसलिये हे युधिष्ठिर ! मैं क्लीब (=नपुंसक, नीच) के समान यह बात तुमसे कह रहा हूँ। इन्होंने मेरा भरण-पोषण किया है, अतः युद्ध तो में इनकी ओर से करूँगा। युद्ध-विषयक बात को छोड़कर, अन्य कुछ तुम मुझसे चाहते हो तो बोलो[76]।

क्यों पितामह जी ! 'मनुष्य पैसे का दास है' इस बात को आपने सत्य का जामा पहनाया! ऐसी बात काहिल, आलसी, निकम्मे और हिंजड़े लोग कहें तो जंचता है, पर आप जैसे शूरवीर भी यह कहें, तो मानो सब उल्टा-पुल्टा हो गया। आप इतिहास पर दृष्टि डाल लेते। क्या श्री राम अर्थ के दास थे? पिता की बात की सत्यता के लिये, एक क्षण भर में राज्य, धन-सम्पत्ति, रत्न, सुखोपभोग पर खुशी-खुशी लात मारकर उसी दिन वन को चल दिये। चित्रकूट में भरत द्वारा हज़ार मनाने पर भी अर्थ सम्पत्ति उन्हें अपनी ओर नहीं खींच सकी, दास नहीं बना सकी। उन्होंने गिन-गिन कर वनवास में चौदह वर्ष नहीं बिताये। अयोध्या वापिस भी इसलिये लौटे, कि भरत ने उन्हें वचनबद्ध करते हुए कहा था, कि यदि आप चौदह वर्ष की समाप्ति पर अयोध्या नहीं लौटे, तो मैं भरत अग्नि में जल मरूँगा। रावणादि के मारे जाने पर विभीषण ने श्रीराम से लङ्का का अर्थ-सम्पत्ति-पूर्ण राज्य लेने का आग्रह किया, पर राम को लङ्का का ऐश्वर्य दास नहीं बना सका। उधर भरत को भी अर्थ अपना दास नहीं बना सका। चौदह वर्ष पर्यन्त

दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः। अतस्त्वां क्लीबवद् वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन। भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत् किमिच्छसि॥ (महाभा.भी. ३६.४२)

[77]गङ्गोवाच-'यं पुत्रमष्टमं राजंस्त्वं पुरा मय्यविन्दथाः। स चायं पुरुषव्याघ्र सर्वास्त्रविदुत्तमः। गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम्। आदाय पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहं विभो॥ वेदानधिजगे साङ्गान् वसिष्ठादेष वीर्यवान्। कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

नन्दिग्राम में तपस्वी जीवन बिताया। अर्थपूर्ण सुखोपभोग से दूर रहे। सीता को ही याद कर लेते। सुखैश्वर्य में लाड़-प्यार से पली और अयोध्या में ऐश्वर्य-धन-सुखोपभोग कर रही सीता ने राम के साथ तपस्वी जीवन बिताया। हरण होने पर स्वर्णमयी लङ्का की सुखोपभोगमयी अर्थ की चकाचौंध की वह दास नहीं बनी। अर्थ को ठोकर मार दी।

दूरदृष्टि नहीं गई तो, कुछ समय पहले की घटना पर ही गौर कर लेते। आप जिन्हें पूजनीय पितृतुल्य गुरुतुल्य मानते थे, उन यशोदानन्दन कृष्ण ने अत्याचारी कंस का संहार करके कारागार में कैद उग्रसेन को मुक्त किया और उन्हें ही राजगद्दी पर बिठाया। मथुरा का ऐश्वर्यपूर्ण 'अर्थ' युवा कृष्ण को प्रलोभित नहीं कर सका-अपना दास नहीं बना सका। तब पितामह जी ! आप कैसे अर्थ के दास बन गये!! आपके मुख से स्वयं अपने लिये जो 'क्लीबवद्' शब्द निकला। उसमें से 'वत्' हटाकर केवल 'क्लीब' रखना ही ठीक था। भले ही शरीर से आप शूरवीर थे, पर बुद्धि तो पूरी 'क्लीब' हो ही गई थी। तभी विपरीत विचार करने लगी थी।

क्यों भीष्म पितामह जी ! आपने फरमाया कि 'कौरवों के द्वारा मेरा भरण-पोषण हुआ है, इसलिये मैं इनकी ओर से लड़ूंगा'। यहाँ पर आपकी मति में प्रमाद (=अनवधानता) का प्रवाह हो गया। आपकी बुद्धि गच्चा खा गई! आपका भरण-पोषण कौरवों ने किया, कि आपने कौरवों का भरण-पोषण किया? आपका भरण-पोषण तो मैया गङ्गा देवी ने किया, उन्होंने ही वसिष्ठ मुनि से आपको वेदवेदाङ्गों का अध्ययन करवाया और शस्त्रास्त्र-विद्याओं में पारङ्गत करके युवा आपको माता ने आपके पिता शान्तनु को सौंपा था[77]।

युधि।...। उशना वेद यच्छास्त्रमयं तद् वेद सर्वशः।। तथैवाङ्गिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः। यद् वेद शास्त्रं तच्चापि कृत्स्नमस्मिन् प्रतिष्ठितम्।...। ऋषिः परैरनाधृष्यो जामदग्न्यः प्रतापवान् यदस्त्रं वेद रामश्च तदेतस्मिन् प्रतिष्ठितम्' (महाभा.आदि. १००.३३-३९)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

भगवन्! आप भूल गये कि, दुर्योधनादि के परदादा शान्तनु ने, गङ्गा देवी द्वारा पाले-पोसे सुप्रशिक्षित किये आपको जब राजगद्दी सौंपी तब आपने प्रजापालन किया और स्वपिता का (=दुर्योधन आदि के परदादा का) भी पालन-पोषण किया[78]।

महाराज शान्तनु के सत्यवती-सेवा-संसक्ति के कारण शीघ्र स्वर्ग सिधार जाने पर और सत्यवती के बड़े पुत्र अभिमानी चित्राङ्गद के युद्ध में एक गन्धर्वराज के हाथों मारे जाने पर आपने उसके छोटे भाई बालक विचित्रवीर्य को राजगद्दी पर बैठाया। पर राज्यशासन आपको ही करना पड़ा और प्रजा का तथा विचित्रवीर्य का-दुर्योधन आदि के दादा का भी पालन आपने किया[79]।

विचित्रवीर्य के यौवनावस्था में ही अति कामासक्ति के कारण मृत्यु का ग्रास बन

---

78 'तथैवं समनुज्ञातः पुत्रमादाय शान्तनुः। भ्राजमानं यथादित्यमाययौ स्वपुरं प्रति। पौरवस्तु पुरीं गत्वा पुरन्दरपुरोपमाम्।। सर्वकामसमृद्धार्थं मेने सोऽऽत्मानमात्मना।। पौरवेषु ततः पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम्।। गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयत्। पौरवाञ्छान्तनोः पुत्रः पितरं च महायशाः। राष्ट्रं च रञ्जयामास वृत्तेन भरतर्षभ। स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपतिः। वर्त्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः' (महाभा.आदि. १००.४०-४५)

79 'स राजा शान्तनुर्धीमान् कालधर्ममुपेयिवान् । स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिन्दमम्। स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थित।।...। स हत्वा तु नरश्रेष्ठं चित्राङ्गदमरिन्दमम्। अन्ताय कृत्वा गन्धर्वो दिवमाचक्रमे ततः।। तस्मिन् पुरुषशार्दूले निहते भूरितेजसि।...। विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्त-यौवनम्। कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिञ्चदनन्तरम्।। विचित्रवीर्यः स तदा भीष्मस्य वचने स्थितः। अन्वशासद् महाराज पितृपैतामहं पदम्। स धर्मशास्त्रकुशलं भीष्मं शान्तनवं नृपः। पूजयामास धर्मेण स चैनं प्रत्यपालयत्। (महाभा.आदि. १०१.४...१४)

80 'धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च महामतिः। जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत्

जाने पर आपने ही, उसके क्षेत्रज पुत्रों धृतराष्ट्र (दुर्योधनादि के पिता), पाण्डु और विदुर का पुत्रवत् पालन-पोषण किया। उनकी अध्ययन की व्यवस्था की। उनको अस्त्रविद्या, गदायुद्ध, अश्वारोहण और गजारोहण आदि की विद्या सिखवाई। इतिहास-पुराण तथा वेद-वेदाङ्गों में पारङ्गत बनाया[80]।

जब धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि पुत्रों का जन्म हुआ और वे कुछ बड़े हुए तथा वन से तपस्वियों द्वारा हस्तिनापुर लाये गये पाण्डु-पुत्र भी सयाने हुए तब आप भीष्म ने ही अपने पौत्रों (=कौरवों तथा पाण्डवों) की शिक्षा-दीक्षा के लिये अस्त्रशस्त्र-विद्या-प्रवीण आचार्यों का पता लगाया और अन्त में भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य को सत्कारपूर्वक अपने यहाँ रखा और कौरव-पाण्डवों को शिष्य रूप में द्रोणाचार्य को सौंपा। भीष्म की सेवा एवं सत्कार से सन्तुष्ट द्रोण ने सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा दी और कौरव-पाण्डवों को सर्वशास्त्र-विशारद बना दिया[81]।

तो भोले भीष्म जी! कौरवों ने आपका भरण-पोषण नहीं किया, अपितु उल्टा

परिपालिताः। संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययनसंयुताः। श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम्॥ धनुर्वेदेऽश्वपृष्ठे च गदायुद्धेऽसिचर्मणि। तथैव गजशिक्षायां नीतिशास्त्रेषु पारगाः। इतिहासपुराणेषु नाना शिक्षासु बोधिताः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्चयाः। (महाभा. १०८.१७-२०)

81 'विशेषार्थी ततो भीष्मः पौत्राणां विनयेप्सया। इष्वस्त्रान् पर्यपृच्छदाचार्यान् वीर्यसम्मतान्।... द्रोणाय वेदविदुषे भारद्वाजाय धीमते। पाण्डवान् कौरवांश्चैव ददौ शिष्यान्नरर्षभ॥ शास्त्रतः पूजितश्चैव सम्यक् तेन महात्मना। स भीष्मेण महाभागस्तुष्टोऽस्त्रविदुषां वरः॥ प्रतिजग्राह तान् सर्वान् शिष्यत्वेन महायशाः। शिक्षयामास च द्रोणो धनुर्वेदमशेषतः॥ तेऽचिरेणैव कालेन सर्वशास्त्र-विशारदाः। बभूवुः कौरवा राजन् पाण्डवाश्चामितौजसः॥ (महाभा.आदि. १२९.२४-३०)

82 'विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित्कालं महाबलाः। आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

आपने उनका भरण-पोषण किया। केवल दुर्योधन का ही नहीं उनके पिता धृतराष्ट्र आदि का भी। उनके दादा विचित्रवीर्य आदि का भी और उनके परदादा महाराज शान्तनु का भी। तो चार पीढ़ियों के पालनकर्त्ता थे आप। क्यों आपकी स्मृति धोखा दे गई और अति वृद्धावस्था में उन्होंने यदि कदाचित् कुछ भरणार्थ सहयोग किया, तो वह आपका ही था– आपके द्वारा संवर्धित था। अतः यह कोई हेतु नहीं था कौरवों की ओर से लड़ने का।

और यह महाविनाशकारी युद्ध, जिसमें आप कौरवों की ओर से लड़े, किसलिये हुआ ? कारण स्पष्ट है, पाण्डव अपना राज्य लेना चाहते थे और दुर्योधन देना नहीं चाहता था। वारणावत के लाक्षागृह से जलाये जाने से बच निकले और पर्याप्त समय तक गुप्त रूप से अपनी जान बचाने के बाद स्वयंवर में अपने अद्वितीय पराक्रम से द्रौपदी को प्राप्त करने और पाञ्चाल राज्य के प्रतिष्ठित सम्बन्धी बन जाने के बाद; विदुर, भीष्म, द्रोण आदि की सम्मत्ति से पाण्डवों को पाञ्चाल देश से हस्तिनापुर बुलाया गया और वृद्धजनों के कहने से धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को खाण्डववन (=खाण्डवप्रस्थ) में भेजकर निर्विघ्न शासन करने को अभिषिक्त किया[82]।

तब पाण्डवों ने पुरुषार्थ से राज्य का विकास किया। पराक्रम से दिग्विजय यात्राओं के बाद राजसूय यज्ञ के माध्यम से नाना देशों के राजाओं से अतुल धन-सम्पत्ति भेंट में पाई। यहाँ तक सब काम बिना कौरवों के वैमनस्य के सुचारु रूप से चल रहा था।

शान्तनवेन च। धृतराष्ट्र उवाच– 'भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोध गदतो मम। पुनर्वो विग्रहो मा भूत् खाण्डवप्रस्थमाविश॥ न च वो वसतस्तत्र कश्चिच्छक्तः प्रबाधितुम्। संरक्ष्यमाणान् पार्थेन त्रिदशानिव वज्रिणा॥ अर्धं राज्यस्य सम्प्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविश। अभिषेकस्य सम्भारान् क्षत्तरानय मा चिरम्' (महाभा.आदि. २०६.२३-२६)

[83]दुर्योधन उवाच– 'ज्येष्ठोऽयमिति मां मत्वा श्रेष्ठश्चेति विशाम्पते। युधिष्ठिरेण सत्कृत्य युक्तो रत्न-परिग्रहे॥ (महाभा.स. ५०.२२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

राजसूय यज्ञ के समय राजा युधिष्ठिर ने शेष पाण्डव-कौरव भाईयों में दुर्योधन को सबसे बड़ा जानकर रत्न धनादि की भेंट सम्भालने का काम सौंपा था[83]।

बस यहीं से द्वेष का पुनः सूत्रपात्र हो गया। पाण्डवों की अतुल लक्ष्मी का दर्शन दुर्योधन को सहन न हो सका। ईर्ष्या-दावानल में जलने लगा। अन्ततः और कोई चारा न देखकर छद्मद्यूती मामा शकुनि के द्वारा कपटद्यूत से पाण्डवों की समस्त राज्यलक्ष्मी हथिया ली। जुए के दूसरे दौर की शर्तों के अनुसार पाण्डवों ने द्रौपदी सहित बारह वर्ष वनों की खाक छानी और तेरहवें वर्ष के महादुष्कर अज्ञातवास को भी निपुणता और धैर्य के साथ पूरा किया। इस अज्ञातवास की अवधि की पूर्णता का खुद आप भीष्म पितामह ने अनुमोदन किया। "इसलिये मेरा विचार है, कि पाण्डवों को अब तेरह वर्ष से पाँच महीने और बारह दिन का समय अधिक हो गया है। पाण्डवों ने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनका ठीक-ठीक पालन किया है[84]।

अब शर्तों के अनुसार पाण्डवों को उनकी राज्यलक्ष्मी मिल जानी चाहिये थी। पितामहजी! आप पहले भी राज्य के आधे भाग पर पाण्डवों के अधिकार की बात दुर्योधन को बता चुके थे – 'जैसे मैं गान्धारी के पुत्रों को अपना समझता हूँ वैसे ही कुन्ती के पुत्रों को भी।...। हे दुर्योधन! जैसे तू इस राज्य को अपना वंशानुगत राज्य समझता है, वैसे वे पाण्डव भी इसे अपना समझते हैं। यदि वे यशस्वी पाण्डव इसे न प्राप्त कर

---

84 'एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः। त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः॥ सर्वं यथावच्चरितं यद् यदेभिः प्रतिश्रुतम्' (महाभा.वि. ५२.४,५)

85 'गान्धार्याश्च यथा पुत्रास्तथा कुन्तीसुता मम।...। 'दुर्योधनं यथा राज्यं त्वमिदं तात पश्यसि। मम पैतृकमित्येवं तेऽपि पश्यन्ति पाण्डवाः॥ यदि राज्यं न ते प्राप्ताः पाण्डवेया यशस्विनः। कुत एव तवापीदं भारतस्यापि कस्यचित्॥ अधर्मेण च राज्यं त्वं प्राप्तवान् भरतर्षभ। तेऽपि राज्यमनुप्राप्ताः पूर्वमेवेति मे मतिः।...। न चापि तेषां वीराणां जीवतां कुरुनन्दन। पित्र्योंऽशः शक्यमादातुमपि वज्रभृता स्वयम्॥ ते

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

सकें, तो तुम या अन्य कोई भरतवंशी कैसे प्राप्त कर सकता है ? हे भरतवंशी दुर्योधन ! जो तुम अब तक राज्य दबा बैठे हो, वह तुम अधर्म के द्वारा प्राप्त किये हुए हो। इसलिये तुम प्रसन्नतापूर्वक उन्हें आधा राज्य दे दो। उनका जो वंशानुगत राज्य भाग है, उसे उन पाण्डवों के जीवित रहते, इन्द्र के द्वारा भी छीना नहीं जा सकता। वे सब धर्म पर आरूढ़ हैं और एक से विचार वाले संगठित हैं। इसलिये यदि तुम धर्म करना चाहते हो, मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हो, और अपना कल्याण चाहते हो तो, उनका आधा राज्य दे दो[85]।

यह प्रसंग तब का है, जब पञ्चालदेश से बुलाये गये पाण्डवों को खाण्डवप्रस्थ भेजा जाना था।

उसके बाद जब पाण्डव वनवास-काल में द्वैतवन में निवास कर रहे थे। तब उन वल्कलधारी पाण्डवों को दुरवस्था में देखकर प्रसन्न होने, हाथ लगे तो उन्हें चिढ़ाने और सम्भव हो तो उन्हें मारने के लिये दुर्योधन अपने कर्ण, दुःशासन, शकुनि आदि मित्रों और सेना सहित वहाँ गया। वहाँ पूर्वतः विद्यमान गन्धर्ववीरों के साथ उलझने पर युद्ध हुआ और राजा चित्रसेन गन्धर्व के द्वारा दुर्योधन को बन्दी बना लिया गया। पाण्डवों को

सर्वेऽवस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः।...। यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे। क्षेमं च यदि कर्त्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम्' (महाभा.आदि. २०२.२,५-७, १७-१९)

[86]'एवं गतेषु पार्थेषु विसृष्टे च सुयोधने। आगते हास्तिनपुरं मोक्षिते पाण्डुनन्दनैः।। भीष्मोऽब्रवीन्महाराज धार्तराष्ट्रमिदं वचः। उक्तं तात यथा पूर्वं गच्छतस्ते तपोवनम्।। गमनं मे न रुचितं तव तत्र कृतं च ते। ततः प्राप्तं त्वया वीर ग्रहणं शत्रुभिर्बलात्।। मोक्षितश्चासि धर्मज्ञैः पाण्डवैर्न च लज्जसे। प्रत्यक्षं तव गान्धारे ससैन्यस्य विशां पते।। सूतपुत्रोऽपयाद् भीतो गन्धर्वाणां तदा रणात्। क्रोशतस्तव राजेन्द्र ससैन्यस्य नृपात्मज। दृष्टस्ते विक्रमश्चैव पाण्डवानां महात्मनाम्। कर्णस्य च महाबाहो सूतपुत्रस्य दुर्मतेः।। न चापि पादभाक् कर्णः पाण्डवानां नृपोत्तम। धनुर्वेदे च शौर्ये च धर्मे वा धर्मवत्सल।। तस्मादहं क्षमं मन्ये पाण्डवैस्तैर्महात्मभिः। सन्धिं सन्धिविदां श्रेष्ठ कुलस्यास्य विवृद्धये।।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

जब इसका पता लगा तो युधिष्ठिर ने भीमसेन और अर्जुन को भेजकर, चित्रसेन की कैद से उसको मुक्त करवाया। दुर्योधन आदि के वहाँ से लज्जित होकर वापिस आने पर पितामह जी! आपने दुर्योधन को फिर समझाया –

'हे दुर्योधन ! मैंने तुम्हें द्वैतवन जाते समय कहा था, कि तुम्हारा द्वैतवन जाना मुझे उचित नहीं लगता है। पर तुम नहीं माने। वहाँ तुम्हें सेना-सहित, शत्रु बने गन्धर्वों ने बन्दी बना लिया। और धर्मात्मा पाण्डवों ने तुम्हें उससे मुक्त कराया, तब भी तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है । वहाँ जब गन्धर्वों के साथ युद्ध हो रहा था, तब तुम सेना-सहित अपने त्राण के लिये चिल्ला रहे थे, किन्तु कर्ण गन्धर्वों के भय से वहाँ से भाग खड़ा हुआ। देख लिया तुमने पाण्डवों के पराक्रम को और दुर्मति कर्ण के पराक्रम को! धनुर्वेद के ज्ञान में, शूरवीरता में और धर्माचरण के विषय में कर्ण पाण्डवों का चतुर्थांश भी नहीं है। इसलिये मैं यही उचित समझता हूँ, कि तुम महात्मा पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। किन्तु तब भी दुर्योधन माना नहीं। आपकी बात की हँसी उड़ाकर उठकर अपने मित्रों सहित वहाँ से चला गया। तब आप लज्जा से नीचा मुख करके अपने स्थान को चले गये[86]।

उसके बाद भी पितामह! आपने सभा में शान्तिदूत बनकर आये श्रीकृष्ण की बात का अनुमोदन करते हुए यही कहा था। श्रीकृष्ण का कथन – 'हे दुर्योधन! मेरी बात को

एवमुक्तश्च भीष्मेण धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः। प्रहस्य सहसा राजन् विप्रतस्थे ससौबलः।। तं तु प्रस्थितमाज्ञाय कर्णदुःशासनादयः। अनुजग्मुर्महेष्वासा धार्तराष्ट्रं महाबलम्।। तांस्तु सम्प्रस्थितान् दृष्ट्वा भीष्मः कुरुपितामहः। लज्जया व्रीडितो राजन् जगाम स्वं निवेशनम्।। (महाभा.वन. २५३.३-१३)

[87]'दुर्योधन! निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम। शर्मार्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत।।...। प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः। सन्धत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ। तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः। पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः। कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः।। अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य सञ्जयस्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

समझो। इसी में तुम्हारा और सन्तानों का भी सुख निहित है।...। तुम, मतिमान्, वीर, उत्साही, आत्मवशी और ज्ञानी पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। यही बात तुम्हारे पिता, भीष्म, विदुर, कृप, सोमदत्त, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, सञ्जय, विविंशति और सञ्जय आदि बुद्धिमानों को और अधिकतर तुम्हारे ज्ञातिजनों को उचित और हितकारी लगती है।..। इसलिये तुम पाण्डवों को आधा राज्य देकर महती शोभा का सञ्चय करो। पाण्डवों के साथ शान्ति स्थापित करके तुम हितैषियों की बात का मान रख सकोगे और चिरकाल तक भद्रसुख को प्राप्त करोगे[87]।

भीष्म बोले – हे दुर्योधन! कृष्ण ने सबके लिये शान्ति-कामना से जो कुछ कहा है, उसके अनुसार करो और क्रोध के शिकार मत होओ। तुम महात्मा कृष्ण के वचनानुसार कार्य न करोगे, तो न तुम्हारा भला होगा, न तुम्हें सुख मिलेगा और न तुम्हारा कल्याण होगा । केशव ने जो कहा है, वह धर्मानुकूल और लाभप्रद है। उसे स्वीकार करो और प्रजाओं का नाश न करो। श्रीकृष्ण के लाभप्रद वचन का, अपने पिता और विदुर के वचन का उल्लङ्घन करोगे तो इस देदीप्यमान राज्यलक्ष्मी को अपने पिता के जीवनकाल में ही नष्ट भ्रष्ट कर दोगे। अपनी अहङ्कार बुद्धि से तुम अपने मन्त्रियों, पुत्रों, भाईयों और

विविंशतेः। ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परन्तप॥...। अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि॥ पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः। सम्प्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि॥ (महाभा.उ. १२४.८,१५-१८,६१,६२)

[88]'कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता। अन्वपद्यस्व तत्तात मा मन्युवशमन्वगाः॥ अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः। श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि ॥ धर्म्यमर्थ्यं महाबाहुराह त्वां तात केशवः। तदर्थमभिपद्यस्व मा राजन् नीनशः प्रजाः॥ ज्वलितां त्वमिमां लक्ष्मीं भारतीं सर्वराजसु। जीवतो धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याद् भ्रंशयिष्यसि॥ आत्मानं च सहामात्यं सपुत्रभ्रातृबान्धवम्। अहमित्यनया बुद्ध्या जीविताद् भ्रंशयिष्यसि॥ अतिक्रामन् केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत्। पितुश्च

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

बान्धवों सहित अपने जीवन से हाथ धो बैठोगे। तुम कुलघ्न, कुपुरुष और कुबुद्धि होकर कुपथगामी मत बनो और माता-पिता को शोकसागर में मत डुबोओ[88]।

पितामहजी! आपके द्वारा अनेक बार समझाने पर भी वह दुर्योधन मानता कहाँ था ? उसे तो बिना पराक्रम के छलकपट के द्वारा पाण्डवों की जो अतुल लक्ष्मी मिल गई थी, उसे वह लोभी दुर्मति दुर्योधन क्यों छोड़ने लगा! उसने भरी सभा में अपना हठ दुहरा दिया कि – सुई के अग्रभाग के रखने से जितनी भूमि का भाग आता है, उतना भाग भी पाण्डवों को नहीं दूंगा[89]।

तो पितामहजी! जब वह सब हितैषियों की, बुजुर्गों की, अतिथियों की और मुनिजनों की भी नेक सलाह का तिरस्कार करके पाण्डवों को उनका धर्मसम्मत भाग देना ही नहीं चाहता था, निरन्तर अधर्म करने पर तुला हुआ था, तब फिर आप उस अधर्मी की ओर से क्यों लड़े? कहाँ गया था आपका विवेक?

और पितामहजी ! उस लोभाभिभूत दुर्योधन के अधर्माचरण के कारण जब आप उसे - सुमन्दधीः, पापी, पापानुबन्धी, सुदुर्मतिः, नृशंस, अधर्मी, दुर्मतिः, कुलघ्न और कुपुरुष ठहरा चुके[90]।

भरतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः॥ मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः। मातरं पितरं चैव मा मज्जीः शोकसागरे' (महाभा.उ. १२५.२-८)

89'यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति' (महाभा.उ. १२७.२५)

90'परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः।...। इममुत्पथि वर्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम्। वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्यानुवर्त्तसे॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्यायं सुदुर्मतिः॥ तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति॥ पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः। नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथंचन॥ (महाभा.उ. ८८.१९-२३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

तब भी आप ऐसे पापपुञ्ज की युद्ध में सहायता कर रहे थे ! आपने पहले जो उसके लिये कहा था वह सही था, या उसके पक्ष में – अधर्म के पक्ष में युद्ध करना ? आपकी क्या स्मृति विलुप्त हो गई थी?

असल में तो पितामहजी! आपके द्वारा, ऐसा निरङ्कुश कुलघ्न दुर्योधन दण्डित किया जाना चाहिये था। कहा था कि 'अभिमानी और नीच तथा धर्म-अधर्म का विवेक न करने वाले और कुपथगामी यदि गुरु आदि भी हों, तो उनको दण्डित करना चाहिये। आप प्राचीन नीतिशास्त्र के ज्ञाता थे। 'अपने धर्म का जो पालन न करता हो, ऐसा जन चाहे वह पिता, आचार्य, मित्र, माता, पत्नी, पुत्र और पुरोहित भी क्यों न हो उसे दण्डित करना चाहिये। छोटी-छोटी बातों पर आप भिड़ने को तैयार होते रहे। काशिराज की कन्याओं के हरणप्रसंग में, आपने सैंकड़ों के सिर उड़ा दिये। फिर अम्बा के प्रसङ्ग में आपने परशुराम से घोर सङ्ग्राम किया। फिर अधर्मी और महानाश के मूल दुर्योधन पर आपका हाथ क्यों नहीं उठा ? प्रतीत होता है, धृतराष्ट्र के समान आपके मन में भी मोह ने डेरा जमाकर आपकी बुद्धि में प्रमाद को प्रवाहित कर दिया।

खैर, दुर्योधन को ठिकाने न लगा सके, तो फिर स्पष्ट कहते, कि मैं धर्मपक्ष (=पाण्डवपक्ष) की ओर से लड़ूँगा। आपके ऐसा निश्चय करने पर द्रोण, कृप, सोमदत्त आदि भी इस पर विचार करते। आपके पाण्डव-पक्ष की ओर से लड़ने पर युद्ध का यह विनाशकारी परिणाम न होता । अथवा विदुर, द्रोण, कृप, सोमदत्त आदि सभी आपके

'मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः' (महाभा.उ. १२५.८)

91 'दृष्टं दुर्योधनैतत्ते यथा पार्थेन धीमता। जलस्य धाराजनिता शीतलस्यामृतगन्धिनः॥ एतस्य कर्त्ता लोकेऽस्मिन् नान्यः कश्चन विद्यते। आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम्॥ ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः। धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वतमथापि वा॥ सर्वस्मिन् मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः।...। अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथञ्चन। अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः॥ तेन

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

साथ डट जाते और सब मिलकर दुर्योधन-चौकड़ी को जबरदस्ती सत्ता से हटाकर, पाण्डवों को उनका अपना भाग दे देते। पर आप जिह्वा से कहते रहे, फुंफकारते रहे; जिसकी दुर्योधन ने कभी परवाह नहीं की। न पहले और न ही बाद में।

युद्ध के उत्तरार्ध में भी पर्याप्त विनाश होने पर शरशय्या पर पड़े हुए आपने दुर्योधन को कहा था – 'हे दुर्योधन ! तुमने देखा, कि अर्जुन ने किस प्रकार शीतल और अमृतगन्ध वाले जल की धारा पृथिवी में से उत्पन्न की है। ऐसे विचित्र कर्म को करने वाला इस लोक में दूसरा कोई नहीं है। आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, सौम्यास्त्र, वायव्यास्त्र, वैष्णवास्त्र आदि को और इन्द्र, पशुपति, प्रजापति परमेष्ठी, धाता, त्वष्टा, सविता तथा विवस्वान् के अस्त्रों का ज्ञाता इस नरलोक में एक अर्जुन ही है। जिस अर्जुन के ऐसे अमानुष – अलौकिक कर्म हैं, वह पाण्डव युद्ध में नहीं जीता जा सकता।... अतः शीघ्र ही तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो।...अभी जितने तुम्हारे सहोदर भाई और बहुत से राजा भी जीवित हैं, अतः सन्धि करना ही उचित है।...। पाण्डव वीरों के साथ अब भी सन्धि करो और शान्ति स्थापित करो। मेरे अन्त के साथ ही युद्ध का अन्त हो जावे[91]।

पितामहजी! क्या दुर्योधन तब भी माना क्या ? लाखों वीरों का कदन हो जाने पर भी वह दुर्हठी अपने दम्भ पर अड़ा रहा। आपको मरवाकर भी आपका तिरस्कार करता रहा।

भीष्म प्रतिज्ञा वाले महाराज! आपने युधिष्ठिर को युद्धारम्भ में आशीर्वाद दिया

सत्त्ववता संख्ये शूरेणाहवशोभिना। कृतिना समरे राजन् सन्धिर्भवतु मा चिरम्।। यावत् तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः। नृपाश्च बहवो राजन् तावत् सन्धिः प्रयुज्यताम्।...। युद्धं मदन्तमेवास्तु तात संशाम्य पाण्डवैः। (महाभा. भी. १२१.३९...५०)

92'मुह्यामीव निशम्याद्य चिन्तयानः पुनः पुनः। हीनां पार्थिवसंघातैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमाम्।। प्राप्य राज्यानि शतशो महीं जित्वाथ भारत। कोटिशः पुरुषान् हत्वा परितप्ये पितामह।। का नु तासां वरस्त्रीणां समवस्था भविष्यति। या हीनाः पतिभिः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

था, कि 'जयमाप्नुहि'–जय प्राप्त करो–तुम्हारी विजय हो। क्या इसे विजय कहा जायेगा? विजय तो तभी कहलाती, जब लाखों वीरों का नाश न होता।

भीष्म पितामहजी! युद्ध को न रोककर, दुर्योधन को दण्डित न करके, पाण्डवों की ओर से न लड़कर और दुर्योधन की ओर से लड़कर आप भी इस महाविनाश के कारण बने। लाखों वीरों की हत्या, लाखों स्त्रियों के वैधव्य, करोड़ों बच्चों की अनाथता और निरपराध हाथी-घोड़ों की हत्या की आपने अनदेखी की!!

शरशय्या पर स्थित होने के बाद उपदेशों की झड़ी लगाने वाले और शङ्काओं के समाधानों की बरसात करने वाले भीष्मजी! अभी कुछ समय पहले युधिष्ठिर ने आपके सामने व्यथित मन से पूछा था –

'हे पितामह! लाखों-करोड़ों वीरों को मारकर, जीतकर उन राजसमूहों से रहित इस भूमि को – राज्य को पाकर मैं बहुत संतप्त हो रहा हूँ। बताओ पितामह! उन शुभ (=निरपराध) स्त्रियों की क्या अवस्था होगी, जो अपने पतियों, पुत्रों, मामाओं और भाईयों के आश्रय से वञ्चित हो गई हैं। उन कौरव आदि राजाओं को, सगे-संबंधियों को और हितैषियों को मारकर मरवाकर हम नरक में गिरेंगे कि नहीं? इसलिये मैं तो अब भारी तपस्या में लगना चाहता हूँ[92]।

पितामहजी! आपने युधिष्ठिर की इस व्यथा का कारण-कार्य भाव से उत्तर न देकर, केवल तप और दान की महिमा के कसीदे ही काढ़े। जिस बात की आशङ्का युद्ध

पुत्रैर्मातुलैर्भ्रातृभिस्तथा। वयं हि तान् कुरून् हत्वा ज्ञातींश्च सुहृदोऽपि वा। अवाक्शीर्षाः पतिष्यामो नरके नात्र संशयः।' शरीरं योक्तुमिच्छामि तपसोग्रेण भारत।' (महाभा.अनु. ५७.१-५)

93'भीष्मः परम-धर्मात्मा वासुदेवमथास्तुवत्। 'आरिराधयिषुः कृष्णं वाचं जिगदिषामि याम्। तया व्याससमासिन्या प्रीयतां पुरुषोत्तमः। प्राहुर्नारायणं देवं यं

के आरम्भ में अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सामने जताई थी। उसी आशंका के अनुसार फलित क्षत्रियों के महाविनाश को देखकर विचारकर प्रकट की गई युधिष्ठिर की व्यथा का और विधवा स्त्रियों की दुर्गति के समाधान का आपने इसलिये उत्तर नहीं दिया, कि इस महाविनाश और स्त्रियों के वैधव्य की अनदेखी करने वाले आप भी थे न ?

काल के इस प्रकार खरी-खरी सुनाने से भीष्म पितामह अपने नेत्र बन्द करके मानो अपने किये पर विचार करने लगे – उन्हें स्वकर्त्तव्य से विमुख रहने का पछतावा होने लगा । तभी काल को भीष्म द्वारा की गई श्रीकृष्ण-स्तुति याद आई। भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण-महिमा का वर्णन करते हुए कहा था –

'मैं श्रीकृष्ण के आराधन की इच्छा से जिस संक्षिप्त या विस्तृत वाणी का प्रयोग करना चाहता हूँ, उसके द्वारा पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न होवें। ये ही विश्व के परम आधार हैं। इन्हीं को नारायण देव कहते हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल हैं। वे भारी से भारी और उत्तम से उत्तम हैं। वाकों (=कर्मविधायक मन्त्रों) में, अनुवाकों में, निषत् वचनों में (=देवताज्ञानप्रकाशक वचनों में), उपनिषदों में, साममन्त्रों में उन्हीं को सत्य और सत्यकर्मा कहा जाता है। पृथिवी के निवासी ब्राह्मण-वर्ग की, वेदों की और यज्ञों की रक्षा के लिये जिन्हें माता देवकी और पिता वसुदेव ने प्रकट किया है। निष्काम साधकजन मोक्षप्राप्ति के लिये अनन्य भाव से अपने अन्तःकरण में जिन शुद्ध-बुद्ध गोविन्द का ज्ञानदृष्टि से साक्षात्कार करते हैं। जो पराक्रम में वायु और इन्द्र से भी बढ़कर हैं। जो सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं। जिनके स्वरूप तक, इन्द्रियों की, मन की और बुद्धि की भी पहुँच नहीं हो पाती है, इन प्रजापति कृष्ण की मैं शरण लेता हूँ। जो

विश्वस्य परायणम्। अणीयसामणीयांसं स्थविष्ठं च स्थवीयसाम्। गरीयसां गरिष्ठं च श्रेष्ठं च श्रेयसामपि। यं वाकेष्वनुवाकेषु निषत्सूपनिषत्सु च। गायन्ति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामगाः। यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्। भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै दीप्तमग्निमिवारणिः। यमन्यो व्यपेताशीरात्मानं वीतकल्मषम्। दृष्ट्यानन्त्याय गोविन्दं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भीष्म-प्रकरण

अज्ञानरूपी महान् अन्धकार से परे हैं और जो ज्ञान रूपी प्रकाश से ज्योतिर्मय आत्मा हैं तथा जिनको जान लेने पर मनुष्य मृत्यु रूपी दुःख से छूट जाता है, उन ज्ञेय (=जानने योग्य) परमात्मा कृष्ण को मेरा प्रणाम है। जिन्हें कोई भी कार्य करने में रुकावट नहीं होती, जो धर्म के कार्य के लिये सदा उद्यत रहते हैं। जो वैकुण्ठस्वरूप हैं, उन कार्यात्मा कृष्ण को मेरा प्रणाम है। हे लोकों के उत्पत्ति स्थान विष्णु भगवान्! आपको नमस्कार है।

हे हृषीकेश! आप सबके जन्मदा और संहारकर्त्ता हैं। आपको कोई पराजित नहीं कर सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण को एक बार भी प्रणाम किया जाय, तो वह दस अश्वमेध यज्ञों के अन्त में किये गये स्नान के समान फल देने वाला होता है। दस अश्वमेध यज्ञ करने वाले का तो पुनः इस संसार में जन्म होता है, किन्तु श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाला फिर भवबन्धन में नहीं फंसता। जो ब्राह्मणों के प्रिय हैं, जो ब्राह्मणों और गौओं के हितकारी हैं और जिनसे समस्त विश्व का कल्याण होता है, उन गोविन्द श्रीकृष्ण को मेरा प्रणाम है[93]।

काल को भीष्म द्वारा पुल के पुल बांधी हुई इस कृष्ण-स्तुति की याद आई और

पश्यत्यात्मानमात्मनि। अतिवाय्विन्द्रकर्माणमतिसूर्यातितेजसम्। अतिबुद्धीन्द्रियात्मानं तं प्रपद्ये प्रजापतिम्। महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम्। यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः। अकुण्ठं सर्वकार्येषु धर्मकार्यार्थमुद्यतम्। वैकुण्ठस्य च तद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः। नमस्ते भगवन् विष्णो लोकानां प्रभवाप्यय। त्वं हि कर्ता हृषीकेश संहर्ता चापराजितः। एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः। दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय। नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण-हिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।' (महाभा.शा. ४७.१६...९५)

94 '०तस्मै सूर्यात्मने नमः, ०तस्मै सोमात्मने नमः, ०तस्मै होत्रात्मने नमः, तस्मै ज्ञेयात्मने नमः, तस्मै वेदात्मने नमः, तस्मै यज्ञात्मने नमः, तस्मै होमात्मने नमः, तस्मै

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

भीष्म-प्रकरण

भीष्म ने जो इस श्रीकृष्ण-स्तवन में—वासुदेव को सूर्यात्मा, सोमात्मा, होत्रात्मा, ज्ञेयात्मा, वेदात्मा, यज्ञात्मा, होमात्मा, स्तोत्रात्मा, यागात्मा, वीर्यात्मा, निद्रात्मा, देवात्मा, तत्त्वात्मा, भूतात्मा, सूक्ष्मात्मा, मत्स्यात्मा, कूर्मात्मा, क्रोडात्मा, सिंहात्मा, क्रान्तात्मा, रामात्मा, क्रोधात्मा, क्षत्रात्मा, भोगात्मा, कृष्णात्मा, क्रीडात्मा, ब्रह्मात्मा, बुद्धात्मा, कल्क्यात्मा, मुख्यात्मा, साक्ष्यात्मा, सत्यात्मा, धर्मात्मा, क्षेत्रात्मा, सांख्यात्मा, योगात्मा, मोक्षात्मा, घोरात्मा, मायात्मा, पद्मात्मा, योगनिद्रात्मा, तोयात्मा, हेत्वात्मा, द्रष्ट्रात्मा, कार्यात्मा, क्रौर्यात्मा, वाय्वात्मा, कालात्मा, वर्णात्मा, लोकात्मा, विश्वात्मा, वह्न्यात्मा, गोप्त्रात्मा, प्राणात्मा, पाकात्मा, दृप्तात्मा, मोहात्मा, ज्ञानात्मा, दिव्यात्मा, ब्रह्मात्मा, रुद्रात्मा, उग्रात्मा, शान्तात्मा, सर्वात्मा कहते हुए चौंसठ पदार्थों, गुणों, कर्मों अथवा स्वभावों आदि का आत्मा बताकर अतिसीम श्रीकृष्ण-महत्त्व दर्शाया[94]।

तब काल ने सोचा जो सबसे वृद्ध और ज्ञानी भीष्म पितामह अपने से आयु में बहुत छोटे और पौत्र अर्जुन से भी वय में छोटे श्रीकृष्ण की प्रशंसा में आकाश पाताल

स्तोत्रात्मने नमः, तस्मै यागात्मने नमः, तस्मै वीर्यात्मने नमः, तस्मै निद्रात्मने नमः, तस्मै देवात्मने नमः, तस्मै तत्त्वात्मने नमः, तस्मै भूतात्मने नमः, तस्मै सूक्ष्मात्मने नमः, तस्मै मत्स्यात्मने नमः, तस्मै कूर्मात्मने नमः, तस्मै क्रोडात्मने नमः, तस्मै सिंहात्मने नमः, तस्मै क्रान्तात्मने नमः, तस्मै रामात्मने नमः, तस्मै क्रोधात्मने नमः, तस्मै क्षेत्रात्मने नमः, तस्मै सांख्यात्मने नमः, तस्मै सामात्मने नमः, तस्मै मोक्षात्मने नमः, तस्मै घोरात्मने नमः, तस्मै मायात्मने नमः, तस्मै पद्मात्मने नमः, तस्मै योगनिद्रात्मने नमः, तस्मै क्रौर्यात्मने नमः, तस्मै वाय्वात्मने नमः, तस्मै कालात्मने नमः, तस्मै वर्णात्मने नमः, तस्मै लोकात्मने नमः, तस्मै विश्वात्मने नमः, तस्मै वह्न्यात्मने नमः, तस्मै गोप्त्रात्मने नमः, तस्मै प्राणात्मने नमः, तस्मै पाकात्मने नमः, तस्मै दृप्तात्मने नमः, तस्मै मोहात्मने नमः, तस्मै ज्ञानात्मने नमः, तस्मै दिव्यात्मने नमः, तस्मै ब्रह्मात्मने नमः, तस्मै रुद्रात्मने नमः, तस्मै उग्रात्मने नमः, तस्मै शान्तात्मने नमः, तस्मै सर्वात्मने नमः' (महाभा. शा. ४७.३९-८४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण–प्रकरण

एक कर रहे हैं, तो चलो इतने-इतने महान् श्रीकृष्ण के पास ही चलें। वे भी तो स्पष्टाऽस्पष्ट रूप से-प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस कौरव-पाण्डव झमेले के ज्ञाता, साक्षी या द्रष्टा थे ही।

सो काल श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ और बोला – 'हे वासुदेव कृष्ण ! अभी जो वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध भीष्म ने आपके स्तवन में आपके जो-जो अलौकिक असम्भव लगने वाले गुण आदि बखाने, उन सबको आपने स्वयं में होना स्वीकार किया, तभी आप प्रसन्न होकर वहाँ से प्रस्थान कर गये'[95]।

तो श्रीकृष्ण जी! यह जो अभूतपूर्व, महानिन्दनीय, अन्दर तक दहला देने वाला महा हत्याकाण्ड हुआ – महाविनाश हुआ, उसके विषय में – उसके होने देने या उसके न रोके जाने के विषय में आपकी क्या भूमिका रही ? इस सन्दर्भ में कुछ जिज्ञासा है, कृपा करके मेरी बात ध्यान से सुनने का कष्ट करें। श्रीकृष्ण जी ! आप भगवान् हैं–आप ऐश्वर्यशाली हैं, आप धर्मधुरन्धर हैं, धर्मरक्षक हैं, धर्मसंस्थापक हैं, आप यशस्वी हैं, आप श्रीयुक्त हैं, आप महाज्ञानी हैं और आप वैराग्यवान् है, अतः निश्चय ही आप भगवान् हैं[96]।

---

[95]'विदित्वा भक्तियोगं तु भीष्मस्य पुरुषोत्तमः। सहसोत्थाय संहृष्टो यानमेवान्वपद्यत। (महाभा.शा. ४७.१०५)

[96]'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा'॥

[97]'सर्वमागमयामास पाण्डवानां विचेष्टितम्। धृतराष्ट्रात्मजो राजा गूढैः प्रणिहितैश्चरैः॥ स श्रुत्वा माधवं यान्तं सदश्वैरनिलोपमैः। बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात् पुरीम्॥ तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पाण्डुनन्दनः। आनर्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनञ्जयः॥ तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ। सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चाभिजग्मतुः॥ ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः॥ उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण-प्रकरण

भगवान् श्रीकृष्ण ? [१]

श्रीकृष्ण द्वारा दुर्योधन को नारायणी सेना का देना

जब दुर्योधन ने अपने गुप्तचरों से पाण्डवों की गतिविधि का पता लगा लिया, और जब उसे यह ज्ञात हुआ, कि श्रीकृष्ण द्वारका लौट रहे हैं, तो दुर्योधन भी एक छोटी सेना लेकर द्वारका की ओर चल दिया। उसी दिन अर्जुन भी शीघ्र ही आनर्त्तनगरी (=द्वारकापुरी) की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर दोनों को ज्ञात हुआ, कि श्रीकृष्ण सोये हुए हैं। तब दुर्योधन श्रीकृष्ण के शयनागार में घुसा और उनके सिरहाने एक उत्तम सिंहासन पर बैठ गया। पीछे से अर्जुन भी वहाँ प्रविष्ट हुआ और श्रीकृष्ण के चरणों की ओर हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक खड़ा हो गया। जाग होने पर कृष्ण ने पहले सामने खड़े अर्जुन को देखा (फिर दुर्योधन के बैठे होने का भी पता लगा) तब श्रीकृष्ण ने दोनों का यथोचित आदरसत्कार करके उनसे उनके वहाँ आने का कारण पूछा। तब पहले दुर्योधन हंसता हुआ सा बोला—'माधव! अब जो (हमारा इनके साथ) युद्ध होने वाला है, उसमें आप मुझे सहायता दें । आपकी मेरे तथा अर्जुन के साथ एक-सी मित्रता है और दोनों ओर समान संबंध भी है। और आज मैं ही पहले आपके पास आया हूँ। श्रेष्ठों का यह नियम है, कि जो पहले आता है, उसी की वे सहायता करते हैं। सो आप भी इस नियम

निषसाद वरासने ।। ततः किरीटी तस्यानुप्रविवेश महामनाः ।। पश्चाच्चैव सः कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः ।। प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम् । स तयोः स्वागतं कृत्वा यथावत् प्रतिपूज्य तौ। तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः। ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव ।। विग्रहेऽस्मिन् भवान् साह्यं मम दातुमिहार्हति । समं हि भवतः सख्यं मम चैवार्जुनेऽपि च ।। तथा सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव। अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन ।। पूर्वं चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिणः। त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन। सततं सम्मतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय ।। कृष्ण उवाच –

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

का पालन कीजिये। तब श्रीकृष्ण बोले-'निस्संदेह तुम पहले यहाँ पहुँचे होगे, किन्तु मैंने पहले अर्जुन को ही देखा है। इसलिये तुम्हारे पहले यहाँ आने के कारण और मेरे द्वारा पहले अर्जुन के देखे जाने के कारण, मैं दोनों की ही सहायता करूँगा[97]।

पुनः कृष्ण बोले-'शास्त्र का निर्देश है, कि पहले बालकों को ही मौका देना चाहिये। इसलिये पहले मांगने का हक आयु में छोटे अर्जुन का है। सुनो, मेरे पास मेरे जैसे बलिष्ठ शरीर वाले वीरों की एक अर्बुद (=दस करोड़?) संख्या वाली सेना है। वे सब योद्धा 'मारायण' कहलाते हैं, और युद्ध में डट कर लड़ने वाले हैं। वे दुर्दम्य सैनिक एक ओर रहेंगे और एक ओर मैं स्वयं रहूँगा, पर मैं न तो युद्ध करूँगा और न शस्त्र हाथ में लूँगा। हे अर्जुन! इन दोनों में से जो तुम्हारे मन को भावे उसे तुम चुन लो, क्योंकि नियमानुसार पहले चुनने का तुम्हारा हक है। कृष्ण के ऐसा कहने पर, अर्जुन ने निहत्थे और न लड़ने वाले कृष्ण का ही वरण कर लिया। तब दुर्योधन ने हजारों की हजार गुनी उस नारायणी सेना को प्राप्त कर लिया और अपनी दृष्टि से कृष्ण को ठगा हुआ मानकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ[98]।

भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः। दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया पार्थो धनञ्जयः॥ तव पूर्वाभिगमनात् पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात्। साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन'। (महाभा.उ. ७.४-१६)

[98]'प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः। तस्मात् प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनञ्जयः॥ मत्संहनन-तुल्यानां गोपानामर्बुदं महत्। नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः॥ ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः। अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः॥ आभ्यामन्यतरं पार्थ यत्ते हृद्यतरं मतम्। तद् वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः॥...। एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम्।... दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमावरयत्तदा। सहस्राणां सहस्रं तु योधानां प्राप्य भारत॥ कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम्'॥ (महाभा.उ. ७.१७..२४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण-प्रकरण

क्यों महामान्यवर भगवान् कृष्णजी! क्या आपने दुर्योधन को अपनी विशाल सेना देकर कोई उचित कार्य किया? दुर्योधन याचक बनकर आपके पास मांगने आया था। आप दाता थे। दाता दान कहाँ किसको देवे इस विषय में आपका ही उपदेश है – जो गलत स्थान पर, अनुचित समय में और कुपात्र को दान दिया जाता है तथा जो बिना सम्मान के तिरस्कारपूर्वक दान दिया जाता है, वह तामसिक दान है।[99]

जैसा दान वैसा फल। तामसिक दान का फल तो तामसिक ही होता है। क्यों भगवान्जी ! क्या दुर्योधन कुपात्र नहीं था? कुपात्र के लक्षण शास्त्र में इस प्रकार बताये गये हैं – 'जो धर्मध्वजी, पाखण्डी, कपटवेषधारी, हिंसा करने वाले, दूसरों की निन्दा करने वाले, दूसरों की जीविका का छेदन करके अपनी स्वार्थसाधना में तत्पर, बनावटी विनय दिखाने वाले, मद्य-मांस आदि अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण करने वाले, चोरी व्यभिचार आदि नीच कर्म करने वाले, ठग, जुआरी आदि नास्तिक हों, वे दान के लिये पात्र नहीं है – कुपात्र हैं'।

आदरणीय भगवान् जी! दुर्योधन में अपात्र और कुपात्र के लक्षण थे कि नहीं? '<u>हिंसा करने वाला दान का पात्र नहीं होता</u> – दुर्योधन हिंसावृत्ति का था। उसने भीमसेन को प्रमाणकोटि स्थान पर भोजन में विष देकर, बेहोशी की स्थिति में लताओं से बांधकर गंगा में मरने को फेंक दिया। यह तो भीम का भाग्य था कि वह मरने से बच गया। गंगा में जहरीले सांपों ने भीम को कई जगह डसा । सर्पों के जङ्गम विष से स्थावर विष

---

99 'अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामसमुदाहृतम्।। (महाभा.भी.४१.२२)

100 'न ते युद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन। कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम्।। एवं स धार्तराष्ट्रांश्च स्पर्धमानो वृकोदरः। अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं <u>बाल्यान्न द्रोहचेतसा</u>।। ततो बलमतिख्यातं धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् । भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत्।। तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः। मोहादैश्वर्यलोभाच्च पापा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

निष्प्रभावी हो गया और भीम सकुशल घर लौट आया। पुनः एक बार दुर्योधन ने भारी विष देकर भीम की हत्या करने का प्रयास किया। सौभाग्यवश भीम फिर भी बच गया। घटनाक्रम – 'न कुश्ती में, न दौड़ में और न ही अन्य अभ्यासों में धृतराष्ट्र के पुत्र भीम से आगे निकल पाते थे। इसी प्रकार भीम भी उनसे होड़ लगाकर उन्हें अप्रिय लगने वाले कार्य में आगे रहता था, पर ऐसा वह द्वेष भाव के कारण नहीं अपितु बाल-स्वभाववश ही करता था। दुर्योधन भीम के अतिशय बल को देखकर अपने दुष्ट भाव दिखाने लगा। धर्म से विमुख और पापयुक्त सोच वाले दुर्योधन की बुद्धि में मोह और ऐश्वर्य के लोभ से भीमसेन के प्रति भी पाप छा गया। उसने सोचा कि इस बली भीम का धोखे से निपटारा कर दिया जाये। नगरोद्यान में जब भीमसेन सोया हुआ हो, तब उसे गंगा में फेंक दें। उसके बाद उससे छोटे भाई अर्जुन को और बड़े युधिष्ठिर को जबर्दस्ती कैद करके, मैं अकेला ही राज्य का मालिक बन जाऊँगा। इस तरह निश्चय करके, वह पापी दुर्योधन भीमसेन का अनिष्ट करने का मौका ढूँढ़ता रहता था। तब दुर्योधन ने गंगातट पर जलविहार के लिये सूती और ऊनी बड़े-बड़े तंबू लगवाये। तब दुष्टमति दुर्योधन पाण्डवों से बोला – आज हम बाग-बगीचों से सुशोभित गङ्गातट पर चलें। वहाँ हम सब भाई एक साथ जलक्रीड़ा का आनन्द लेंगे[100]।

दुर्योधन की बात सुनकर युधिष्ठिर ने वहाँ जाने की हाँ भर दी। तब रथों और

मतिरजायत॥ अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः॥ तं तु सुप्तं पुरोद्याने गङ्गायां प्रक्षिपामहे। अथ तस्मादवरजं श्रेष्ठं चैव युधिष्ठिरम्॥ प्रसह्य बन्धने बद्ध्वा प्रशासिष्ये वसुन्धराम्। एवं स निश्चयं पापः कृत्वा दुर्योधनस्तदा। नित्यमेवान्तरप्रेक्षी भीमस्यासीन्महात्मनः॥ ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत। चैलकम्बलवेश्मानि विचित्राणि महान्ति च॥...। ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मतिः॥ गंगां चैवानुयास्याम उद्यानवनशोभिताम्। सहिता भ्रातरः सर्वे जल-क्रीडामवाप्नुमः। (महाभा. आदि. १२७.२३-३६)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

हाथियों पर बैठकर कौरव, पाण्डवों के साथ नगर से रवाना हुए और उद्यानवन पहुँचकर साथ आये बड़े लोगों को उन्होंने विदा कर दिया।...। वहाँ कौरव-पाण्डवों ने अभीष्ट स्थानों पर घूम-बैठकर आनन्द मनाया। खेल-खालकर उन्होंने उस बाग में भोजन करना आरम्भ किया। उस समय वे प्रसन्न होकर उत्तम भोज्य पदार्थ अपने हाथों से एक-दूसरे के मुँह में खिलाने लगे। वहाँ पापी दुर्योधन ने भीम को मारने की इच्छा से उसके भोजन में हलाहल जहर मिला दिया और हृदय में छुपे छुरी जैसे तीखे तथा बाहर से मीठे वचन बोलने वाले पापी दुर्योधन ने सगे भाई और मित्र के समान भीमसेन के सामने वह ज़हरीला भोजन बहुत मात्रा में परोस दिया। भीमसेन उस भोजन के जहरीलेपन से अनजान था, अतः जितना परोसा था, वह सब खा गया। यह सब देखकर नीच दुर्योधन अन्दर ही अन्दर हँसता हुआ 'अपना काम बन गया' यह मानने लगा।...। सायंकाल जब वे जलक्रीड़ा से निवृत्त हुए तो अधिक थक जाने के कारण उन्होंने रात वहीं तम्बुओं में बिताने का निश्चय किया। अधिक व्यायाम करने से थके होने के कारण भीमसेन भी वहीं प्रमाणकोटि के तम्बू में सो गये। थके हुए और ऊपर से जहर के प्रभाव से वहाँ ठंडे

---

101 'एवमस्त्विति तं चापि प्रत्युवाच युधिष्ठिरः। ते रथैर्नगराकारैर्देशजैश्च गजोत्तमैः॥ निर्ययुर्नगराच्छूराः कौरवाः पाण्डवैः सह। उद्यानवनमासाद्य विसृज्य च महाजनम्॥...। तत्रोपविष्टास्ते सर्वे पाण्डवाः कौरवाश्च ह। उपपन्नान् बहून् कामान् ते भुञ्जन्ति ततस्ततः। अथोद्यानवरे तस्मिंस्तथा क्रीडाऽऽगताश्च ते। परस्परस्य वक्त्रेभ्यो ददुर्भक्ष्यांस्ततस्ततः॥ ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम्। विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया। स्वयमुत्थाय चैवाथ हृदयेन क्षुरोपमः। स वाचामृतकल्पश्च भ्रातृवच्च सुहृद् यथा॥ स्वयं प्रक्षिपते भक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत्। प्रतीच्छितं स्म भीमेन तं वै दोषमजानता॥ ततो दुर्योधनस्तत्र हृदयेन हसन्निव। कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते पुरुषाधमः॥...। क्रीडावसाने ते सर्वे शुचिवस्त्राः स्वलंकृताः। दिवसान्ते परिश्रान्ताः विहृत्य च कुरूद्वहाः। विहारावसथेष्वेव वीरा वासमरोचयन्। खिन्नस्तु बलवान् भीमो व्यायम्याभ्यधिकं तदा। प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुष्वापावाप्य तत् स्थलम्॥ शीतं वातं

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

श्रीकृष्ण-प्रकरण

पवन के लगने से भीम के शरीर के अङ्ग-अङ्ग में जहर व्याप्त हो गया, वे सर्वथा निश्चेष्ट हो गये। तब रात में दुर्योधन ने अपनें हाथों से मरे हुए से भीम को लतापाशों से बांधकर गंगा के पानी में ढकेल दिया। पानी में जहरीले सांपों ने भीमसेन को अनेक स्थानों पर डस लिया। सांपों के डसने से भीम के शरीर में व्याप्त भोजन वाला विष निष्प्रभावी हो गया। सांपों के जङ्गम विष ने उंस स्थावर कालकूट संखिया के विष को खत्म कर दिया[101]।

तब चेतनता प्राप्त होने पर भीम ने लतापाशों को तोड़ फेंका।...। उसके पश्चात् महाबली भीमसेन वहाँ से निकलकर शीघ्र ही अपनी माता के पास आ गये।

एक बार फिर दुर्योधन ने भीमसेन क़े भोजन में अत्यन्त तीखा रोंगटे खड़े कर देने वाला नया कालकूट नामक हलाहल विष मिला दिया। जिसकी सूचना भीम आदि को धृतराष्ट्र की वैश्यजातीया रानी से उत्पन्न पुत्र युयुत्सु ने दे दी। उस जहर को भी कथंचित्

समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः। विषेण च परीताङ्गो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः॥ ततो बद्ध्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम्। मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाज्जलमपातयत्॥ ततः समेत्य बहुभिस्तदा नागैर्महाविषैः। अदश्यत भृशं भीमो महादंष्ट्रैर्विषोल्बणैः॥ ततोऽस्य दश्यमानस्य तद् विषं कालकूटकम्। हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जङ्गमेन तु॥ (महाभा.आदि. १२७.३७...५७)

102 'निश्चेष्टोऽहीननुप्राप्तः भीमो दष्टोऽन्वबुध्यत। ससंज्ञश्चापि संवृत्तश्छित्वा बन्धनमाशु सः॥...। तत उत्थाय कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः। आजगाम महाबाहुर्मातुरन्तिकमञ्जसा॥...। भोजने भीमसेनस्य पुनः प्राक्षेपयद् विषम्। कालकूटं नवं तीक्ष्णम् सम्भृतं लोमहर्षणम्॥ वैश्यापुत्रस्तदाचष्ट पार्थानां हितकाम्यया। तच्चापि भुक्त्वाऽजरयदविकारं वृकोदरः॥ एवं दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः। अनेकैरभ्युपायैस्तान् जिघांसन्ति स्म पाण्डवान्। (महाभा. आदि. १२७. ६२,१२८;२९,३७,३८,४०)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

श्रीकृष्ण-प्रकरण

भीमसेन पचा गया और मरने से बच गया। इस प्रकार दुर्योधन, कर्ण और शकुनि अनेक उपायों से पाण्डवों को मार डालना चाहते थे[102]।

जब दुर्योधन ने देखा कि भीमसेन विषप्रयोग से नहीं मरा, तो उसने पिता धृतराष्ट्र को भड़काकर पाण्डवों को वारणावत नगर भेजा, जिससे कि उन्हें वहाँ लाख के घर में जला कर मार दिया जाये। दुर्योधन ने अपने विश्वासपात्र मन्त्री पुरोचन से कहा – 'हे पुरोचन ! यह धनधान्य पूर्ण राज्य जैसा मेरा है, वैसे ही यह तुम्हारा भी है। अतः तुम इसकी रक्षा करो। तुम्हारे सिवाय मेरा ऐसा कोई दूसरा विश्वासपात्र नहीं है, जिसके साथ मैं ऐसी गुप्त मन्त्रणा कर सकूँ। तुम मेरी बात को गुप्त रखो और बढ़िया तरकीब से मेरे शत्रुओं (=पाण्डवों) को समाप्त कर दो।...। पिताजी ने पाण्डवों को वारणावत नगर में उत्सव में आमोद-प्रमोद के लिये जाने का आदेश दिया है। तुम तेजगति के वाहन से वारणावत आज ही पहुँच जाओ और वहाँ नगर के समीप ही एक चारों ओर कमरों वाला ऐसा भवन तैयार करवाओ जिसकी दीवारों में सन तथा राल आदि अग्नि पकड़ने

---

103 'ममेयं वसुसम्पूर्णा पुरोचन वसुन्धरा। यथेयं मम तद्वत्ते स तां रक्षितुमर्हसि॥ नहि मे कश्चिदन्योऽस्ति विश्वासिकतरस्त्वया। सहायो येन सन्धाय मन्त्रयेयं यथा त्वया॥ संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर। निपुणेनाभ्युपायेन यद् ब्रवीमि तथा कुरु॥ पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम्। उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात्॥ स त्वं रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु॥ तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम्। नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम्। शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित्। आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय॥ सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया। मृत्तिकायां मिश्रयित्वा लेपं कुड्येषु दापय। शणं तैलं घृतं चैव जतु दारूणि चैव हि। तस्मिन् वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः॥ यथा च तन्न पश्येरन् परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः। आग्नेयमिति तत्कार्यमपि चान्येऽपि मानवाः॥ वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान् परमार्चितान्। वासयेथाः पाण्डवेयान् कुन्तीं च ससुहृज्जनाम्॥...। ज्ञात्वा च तान् सुविश्वस्तान् शयानानकुतोभयान्। अग्निस्त्वया

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

वाले पदार्थ रखे जायें और बाहर के लेपन में घी, तेल, चर्बी और खूब सारी लाख मिली हुई हों। चारों ओर भी छिपाकर सन, तेल, घी, लाख और लकड़ियों के ढेर लगवा देना। इस सबको पाण्डव तथा अन्य भी न जान सकें, ऐसा प्रबन्ध करना। भवन तैयार होने पर कुन्ती सहित पाण्डवों को उसमें अति-आदरपूर्वक ठहरा देना। जब वे उसमें निर्भय होकर विश्वासपूर्वक रहने लगें, तब उस मकान में जब वे सोये हुए हों, द्वार की ओर से आग लगा देना। तब घर के जलने पर पाण्डव भी जल जायेंगे और हमारी बदनामी भी नहीं होगी[103]।

क्यों मान्य भगवान्‌जी! जब दुर्योधन ऐसी हिंसावृत्ति का था, तब आपका उसे सेना जैसा दान देना अपात्र को दान देना था कि नहीं? अतिमान्य भगवान्‌जी! आपका ही उपदेश है कि, 'अमुक को तो मैंने मार गिराया है अन्यों को भी मार दूँगा। मैं समर्थ हूँ, बलवान हूँ, सुखी हूँ, धनसम्पन्न हूँ, मेरे जैसा अन्य कोई नहीं'[104] यह वृत्ति असुर की होती है। तो दुर्योधन इसी वृत्ति का था, अतः असुर था। आपने असुर को सेना देकर क्या धर्म का काम किया? अपने ही उपदेश का — कथन का स्वयं ही उल्लंघन करना क्या आप जैसों के लिये उचित था? और ऐसा नहीं, कि आप उस समय दुर्योधन की हत्यारी वृत्ति से परिचित नहीं थे। आप तो जब अर्जुन ने द्रौपदी के स्वयंवर में लक्ष्य वेधकर द्रौपदी को प्राप्त किया था, तभी आपने कहा था — 'बड़े सौभाग्य की बात है, कि शत्रुओं

ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः॥ दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः। न गर्हयेयुरस्मान् वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित्॥ (महाभा. आदि. ४३.३–१७)

104 'असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि। ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी। आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया' (महाभा.भी. ४०.१४,१५)

105 'दिष्ट्या सर्वे पावकाद् विप्रमुक्ता यूयं घोराः पाण्डवाः शत्रुसाहाः। दिष्ट्या पापो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः सहाऽमात्यो न सकामोऽभविष्यत्' (महाभा. आदि. १९०.२४)

का सामना करने में समर्थ आप सभी पाण्डव उस भयंकर अग्निकाण्ड में से जीवित बच गये। पांपी दुर्योधन अपने मन्त्रियों सहित उस षड्यन्त्र में सफल नहीं हो सका, यह सौभाग्य की बात है[105]।

तो भगवान् जी! आपको कई दशकों से भी पहले दुर्योधन की हिंस्र भावना का ज्ञान था फिर भी आपने दुर्योधन को सेना देकर निहाल कर दिया! क्या आपको उस समय दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों की हत्या के लिये किये गये प्रयास विस्मृत हो गये थे? आपको स्मृतिदोष ने आ घेरा था?

दूसरों की जीविका का छेदन करके स्वार्थ-साधना में लगा मनुष्य दान का पात्र नहीं होता' और 'ठग जुआरी भी दान का पात्र नहीं होता' तो भगवान्जी! दुर्योधन को सेना दान देने से कुछ समय पूर्व ही आपने विराट-सभा में फरमाया था-'सभ्यो! आप सबको ज्ञात ही है, कि द्यूत-सभा में दुर्योधन ने मामा शकुनि के द्वारा छल-कपट करके युधिष्ठिर को हरा कर इनका राज्य छीन लिया[106]।

तो मान्यवर वासुदेव जी! जब आपको पता था, किं दुर्योधन-मण्डली छली-कपटी-जुआरी है और अपनी स्वार्थसाधना के लिये इसने पाण्डवों को तेरह वर्ष के लम्बे काल तक जङ्गल में ठोकरे खाने और भूखे-प्यासे मरने को मजबूर किया था, तो भी आपने बड़े सहज भाव से उसे अपनी सेना दे दी!!

'नीच कर्म करने वाला और व्यभिचारी दान का पात्र नहीं होता' 'भरी सभा में एकवस्त्रा रजोधर्मा द्रौपदी को घसीटवाकर सभा में अपमानित करना नीच कर्म था कि

---

106 'सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथायं युधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम्।
जितो निकृत्यापहृतं च राज्यं वनप्रवासे समयः कृतश्च' (महाभा. उ. १.१०)

107 भीष्म उवाच-'एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः' (महाभा.वि. ५२.४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

नहीं? दुर्योधन द्वारा द्यूत-सभा में पाण्डवों को कुवचन कहना नीच कर्म था कि नहीं? वनवास भोग रहे पाण्डवों को चिढ़ाने और सताने के लिये सेना लेकर वन में जाना नीच कर्म था कि नहीं और तेरह वर्ष के वनवास भोगने के पश्चात्, नहीं-नहीं बल्कि तेरह वर्ष से भी पांच महीने और बारह दिन अधिक[107] वनवास और अज्ञातवास भोगने के पश्चात्, शर्त के अनुसार पाण्डवों को उनका राज्य न लौटाना क्या नीच कर्म नहीं था? नीचकर्मी दान का पात्र नहीं होता, तो भी आपने सेना का दान दे दिया!!! 'व्यभिचारी व्यक्ति दान का पात्र नहीं होता–' दुर्योधन व्यभिचारी वृत्ति का था – जब दुःशासन द्वारा जबर्दस्ती केशों से पकड़ कर सभा में घसीटकर लाने से, वस्त्र खींचे जाने से थकी हुई और दुःशासन, कर्ण आदि द्वारा मर्मभेदी वचनों से पीड़ित द्रौपदी जब सभा के फर्श पर गिर पड़ी तब दुर्योधन ने भीम को धमकाते हुए और कर्ण की ओर देखकर मुस्कराते हुए अपनी जंघा के वस्त्र को हटाकर कैले के स्तम्भ जैसी और हाथी की सूंड सी अपनी बांई नंगी जांघ को द्रौपदी को दिखाया और वह हंसने लगा।[108] क्यों हृषीकेश जी! क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि यह दुर्योधन व्यभिचारी वृत्ति का था। बांई जांघ पर बैठने के लिये संकेत करना, उसे अपनी कामिनी भोग्या बताना है।[109] अपनी विवाहिता के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के प्रति कामचेष्टा करना व्यभिचार ही है। व्यभिचारी को आपने दानपात्र कैसे समझ लिया?

विराटराज के बलशाली सेनापति कीचक के कामासक्ति के कारण मारे जाने पर और उपकीचकों के भी मर जाने पर विराटराज को असहाय जानकर त्रिगर्तराज सुशर्मा

---

108 'एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकम्। स्मयन्नवेक्ष्य पाञ्चालीमैश्वर्यमदमोहितः। कदलीस्तम्भ-सदृशं सर्वलक्षण-संयुतम्। गजहस्तप्रतीकाशं वज्रप्रतिमगौरवम्। अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव। द्रौपद्याः प्रेक्षमाणायाः सव्यमूरुमदर्शयत्' (महाभा.स. ७१.१०-१२)

109 'सव्योरुः कामिनीभोग्यः' (महाभा.आदि. ९७.१०)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्वारा उकसाने पर दुर्योधन सेना लेकर उसकी गौएँ हरने के लिये गया था। किसी की सम्पत्ति को हरना और वह भी अपने से निर्बल की हरना, चोरी-डाका है कि नहीं?

हिंसक, कुकर्मी, जुआरी, व्यभिचारी, चोर-डाकू को दान का पात्र आपने क्यों समझा ? अपात्र को दान देना अधर्म है। आपने अधर्म को धर्म समझ कर महती सेना उस पर न्यौछावर कर दी। जो अधर्म को धर्म समझती है और सब विषयों को उलट-पुलट ही समझती है, वह बुद्धि तमोगुणी बुद्धि है[110]।

तो क्यों मान्यवर्य भगवान्जी! क्या आपकी बुद्धि उस समय तमोगुण से घिर गई थी-प्रमादयुक्त हो गई थी, जिसने इतनी बड़ी गलती=कुपात्र को महादान देने की त्रुटि करवा दी? आपने नीच दुर्योधन का सत्कार भी किया और उसे सेनादान देकर उसे प्रसन्न भी कर दिया। शास्त्रज्ञ भगवानजी! शास्त्र तो कहता है – विकर्मी-नीचकर्मी शठों-धूर्तों का वाणी से भी सत्कार न करे[111]। आपने तो उचित सम्मान भी किया और दान देने में भी परम उदारता बरती !

और नीतिमान् स्थितप्रज्ञ भगवान्जी! आपने पहले तो पराया राज्य दबाये रखने पर आमादा दुर्योधन को युद्ध करने के लिये सेना दे दी और बाद में सुलह सफाई के लिये आप शान्तिदूत बन कर हस्तिनापुर गये। चाहिये तो यह था, कि आप युद्धार्थ सहायता

---

110 'अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ (महाभा.भी. ४२.३२)

111 'पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडाल-वृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ (मनु. ४.३०)

112 'स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं समाधातुं कार्यमेतद् विपन्नम्। अहापयित्वा यदि पाण्डवार्थं शमं कुरूणां यदि चेच्छकेयम्।...। अपि मे वाचं भाषमाणस्य काव्यां धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम्। अवेक्षेरन् धार्तराष्ट्राः समक्षं मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः' (महाभा.उ. २९.४७-४९)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

मांगने आये दुर्योधन को कहते कि 'भाई! तुम अभी से युद्ध का निश्चय करके युद्ध में मुझसे सहायता माँगने के लिए आ गये हो, किन्तु मैं तो युद्ध को रोकने का प्रयास करना चाहता हूँ। इसके लिये मैं तुम्हारे पिता, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य आदि के सामने कौरव-सभा में शान्ति-प्रस्ताव लेकर आऊँगा और युद्ध से होने वाले नाश को समझाकर समझौते करने-कराने की बात कहूँगा[112]।

मेरे प्रस्ताव के बाद उसके उत्तर और परिणाम पर विचार करने के बाद, मैं किसकी क्या सहायता करूँ तथा कौन सहायता का पात्र है, इस पर विचार करूँगा'।

पर भगवान्जी! आपके द्वारा उलटा कार्य हो गया। पहले करने योग्य शान्ति-प्रस्ताव कार्य को बाद में किया गया और बाद में सम्भवतः करने योग्य कार्य को पूर्व में कर दिया गया। जो इस प्रकार पूर्व-पश्चात् का विवेक नहीं रखता, उसे क्या कहेंगे और उसका परिणाम क्या होगा स्थितप्रज्ञ जी[113]?

और यदि पूर्वापर का विचार आपने नहीं किया और जान लिया था कि युद्ध अवश्यम्भावी है, तो फिर भगवान्जी! आप स्पष्ट कहते कि दुर्योधन तुम हिंसक, लोभी, डाकू, छली, कपटी और पापात्मा हो, अतः तुम सहायता के पात्र नहीं हो। मैं अपनी सेना सहित पाण्डवों की ओर से लड़ूँगा। भगवन्! ऐसा कहते ही दुर्योधन के होश उड़ जाते, सम्भवतः वह युद्ध की जिद छोड़ देता। किंच यदि आप भी 'याचक को खाली हाथ नहीं लौटाना चाहिये' इस लोक प्रवाद के वशीभूत होकर उसे भी कुछ देना चाहते थे, तो हजार दो हजार सैनिक दे देते और फिर भी देने की खाज प्रबल थी, तो भले ही सेना दे देते, पर यह दृढ़ता से कहते, कि मैं पाण्डवों की ओर से युद्ध में उतरूँगा'। भगवन्!

---

[113]'पूर्वकृत्यानि यः पश्चात् पश्चात्कृत्यं च यः पुरा।
कुर्यात्स नैव नीतिज्ञः, तस्य कृत्यं विनश्यति॥

[114]'इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत् समर्थितम्। परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम्॥ तस्मिन् बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा। पाण्डवाश्च विधेया मे, स

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत–युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ–कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते–बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण–प्रकरण

आपके इस निश्चय को देखकर दुर्योधन युद्ध के विषय में दस बार सोचता। युद्ध टाले जाने का एक अवसर आपने गंवा दिया।

और योगेश्वर कृष्णजी! आपके द्वारा सेना दिये जाने के बाद क्या दुर्योधन कृतज्ञ बना? क्या आपके प्रति मान और श्रद्धा का भाव उसके मन में उत्पन्न हुआ? नहीं, वह तो कृतघ्न ही रहा। अभी आप शान्ति–प्रस्ताव लेकर रवाना ही हुए थे, हस्तिनापुर पहुँचे नहीं थे, मार्ग में ही थे। तभी दुर्योधन भीष्म पितामह से बोला–'मैंने एक बड़े आवश्यक कार्य का निश्चय किया है और वह कार्य यह है, कि पाण्डवों के परम आश्रय आधार श्रीकृष्ण को मैं कैद कर लूँ। उसके कैद कर लिये जाने पर सारे वृष्णि लोग, पाण्डव और सारा राज्य मेरे आधीन हो जायेंगे। कृष्ण कल प्रातःकाल यहाँ आने वाले हैं, अभी मार्ग में ही, वहीं उन्हें गिरफ्तार कर लें। इस बात को गुप्त रखा जाय और ऐसा उपाय बताइये, जिससे इस कार्य में विघ्न न पड़े। जिससे कृष्ण इसे न जान पायें[114]।

देख लिया भगवान् जी! आपके द्वारा दिये गये महादान का फल? आपके द्वारा प्रदत्त सेना पाकर वह दुर्योधन और भी अहङ्कारी बन गया, साँप को दूध पिलाने से तो उसके विष में बढ़ोतरी ही होगी –'पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्।' आपने उसे सेना दी और वह कृतघ्न आपको ही कैद करने चला।

च प्रातरिहैष्यति॥ अत्रोपायान् यथा सम्यङ् न बुद्ध्येत जनार्दनः। न चापायो भवेत् कश्चित् तद् भवान् ब्रवीतु मे' (महाभा.उ. ८८.१३–१५)

115 'दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च। दुःशासन–चतुर्थानामिदमासीद् विचेष्टितम्॥ पुरायमस्मान् गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः। सहितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च॥ वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव। प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा॥ श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः। निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः॥ अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च। अस्मिन् गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम्॥ निरुद्यमा भविष्यन्ति पाण्डवाः सोमकैः सह। तस्माद् वयमिहैवेनं केशवं

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

भगवान् श्रीकृष्ण ? [२]

कौरव-सभा में शान्तिदूत श्रीकृष्ण को दुर्योधन द्वारा कैद करने के विचार पर श्रीकृष्ण का व्यवहार

श्रीकृष्ण द्वारा कौरव-सभा में शान्ति-प्रस्ताव पेश करने पर तथा भीष्म, द्रोण, विदुर, धृतराष्ट्र और माता गान्धारी द्वारा भी सब तरह से समझाये जाने पर भी जब-दुर्योधन टस से मस नहीं हुआ और पाण्डवों को कुछ भी नहीं दूंगा' इस बात पर अड़ा रहा और फुंफकारते हुए सभा से अपने साथियों के साथ उठकर चला गया। तब - "दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन यह चेष्टा करने लगे कि, इससे पहले कि राजा धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह के कहने से यह कृष्ण हमें बन्दी बनावे, हम ही इस कृष्ण को जोर-जबर्दस्ती से बन्दी बना लें। 'कृष्ण को कैद कर लिया गया है', यह जानकर पाण्डवों की बुद्धि मारी जायेगी और वे वैसे ही उत्साहहीन हो जायेंगे, जैसे टूटी दाढ़ों वाले सांप। यह कृष्ण ही तो पाण्डवों का सुखदाता और रक्षक है। इसके पकड़ लिये जाने पर पाण्डव अपने सहायक सोमकवंशी क्षत्रियों समेत उद्यमरहित हो जायेंगे - कुछ न कर सकेंगे। इसलिये हम इस शीघ्रकारी कृष्ण को यहाँ बन्दी बना लेते हैं, भले ही राजा धृतराष्ट्र रोता-चिल्लाता रहे। फिर हम, शत्रु पाण्डवों से युद्ध करेंगे[115]।

'उन पापियों के इस पाप भरे अभिप्राय को, चेष्टा को भांपने में माहिर श्रीकृष्ण के साथ आये वृष्णिवंशी सात्यकि ने झट जान लिया और वहाँ से निकलकर उसने कृतवर्मा को कहा, कि तुम शीघ्र ही सभाद्वार पर जाओ और अपनी वाहिनी को ठीक-

---

क्षिप्रकारिणम्॥ क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून्' (महाभा.उ. १३०.३-९)

116 'तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम्। इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः। तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहास्थितः॥ अब्रवीत् कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम्। व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः॥ यावदाख्याम्यहं चैतत्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

ठाक करके हमारी प्रतीक्षा करो, जब तक कि मैं इस बात की सूचना श्रीकृष्ण को दे दूँ। तब सात्यकि ने सभा में प्रवेश करके, दुर्योधन के षड्यन्त्र की सूचना श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र और विदुर को दी[116]।

काल ने पूछा – क्यों भगवन्! सात्यकि द्वारा दुर्योधन-चौकड़ी के षड्यन्त्र की सूचना देने पर आपने उस सभा में यही कहा था न कि –'हे राजन् धृतराष्ट्र ! यदि ये गुस्साये हुए तुम्हारे पुत्र बलपूर्वक मुझे बन्दी बना लें अथवा मैं ही इन्हें बन्दी बना लूँ। जैसी आपकी अनुमति हो। वैसे मैं इन सब उद्दण्डों को कैद करना चाहता हूँ। पर मैं यह निन्दित पाप कर्म कैसे भी नहीं करूँगा। कहीं पाण्डवों के ऐश्वर्य के लोभी तेरे पुत्र अपने ऐश्वर्य से भी हाथ न धो बैठें। ये तेरे पुत्र यदि अपने दुष्कर्म पर ही उतारू हैं, तब तो युधिष्ठिर का काम बन गया। आज ही मैं इनको और इनके अनुगामियों को बन्दी बनाकर इन्हें पाण्डवों को सौंप दूँ, तो क्या यह कोई दुष्कृत होगा? तो भी हे धृतराष्ट्र! मैं इस क्रोध से उत्पन्न होने वाले और पापबुद्धि की उपज निन्दनीय कर्म को आपके समीप नहीं करूँगा। यह दुर्योधन जैसा चाहता है, वैसा ही होवे। मैं तुम्हारे पुत्रों को मनमर्जी करने की अनुमति देता हूँ[117]।

कृष्णायाक्लिष्टकारिणे॥ स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव॥ आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने। धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत' (महाभा.उ. १३०. ९-१३)

117 'राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा। एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव। एतान् हि सर्वान् संरब्धान् नियन्तुमहमुत्सहे॥ न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथञ्चन। पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थान् हास्यन्ति ते सुताः॥ एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः। अद्यैव ह्यहमेनांश्च ये चैनाननु भारत॥ निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत्। इदं तु न प्रवर्त्तेयं निन्दितं कर्म भारत॥ सन्निधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम्। एष दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथास्तु तत्॥ अहं तु सर्वांस्तनयाननुजानामि ते नृप' (महाभा.उ. १३०.२४-३०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण–प्रकरण

क्यों चक्रधर भगवान्‌जी! आपने चेदिराज शिशुपाल को अपराध करने, गालियाँ देने और निन्दा करने पर ही बहुत बड़ी राजसूय सभा में मार गिराया[118]।

और यहाँ कौरव-सभा में आपको बन्दी बनाने वाली दुर्योधन-चौकड़ी का आपने बाल भी बांका नहीं किया! आप एक बार नहीं, दो बार नहीं किन्तु तीन बार यह फरमाते रहे कि मैं बन्दी बनाना चाहता हूँ -- इनको बन्दी बना सकता हूं। पर साथ ही यह भी कहते रहे कि 'इनको बन्दी बनाना निन्दनीय पाप कर्म है।' धर्मसंस्थापक जी! पापियों को बन्दी बनाना क्या पाप है? आपने उसी कौरव-सभा में अपने भाषण में दुर्योधन के अपराध गिनाते हुए उसे पापी, मिथ्यावृत्ति, जिह्म क्रूर, और अनार्य कहा[119]।

उन भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य आदि को भी जिस दुर्योधन चौकड़ी को बन्दी बनाकर पाण्डवों को सौंपने की बात उसी सभा में आपके सामने कही थी[120]।

तो फिर भगवानजी! आपने इनको बन्दी क्यों नहीं बनाया? एक तरफ तो आपका कथन है, कि अहङ्कारी, अभिमानी, कामी, क्रोधी, द्वेषी, क्रूर और मेरे से द्वेष करने वाले

---

118 'शृण्वन्तु मे महीपाला येनैतत् क्षमितं मया। अपराधशतं क्षाम्यं मातुरस्यैव याचने। दत्तं मया याचितं च तानि पूर्णानि पार्थिवाः। अधुना वधयिष्यामि पश्यतां वो महीक्षिताम्। एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात्। व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः' (महाभा.स. ४५.२३-२५)

119 'एवंबुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान्। कथं ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु। यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि। तच्च पाप प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः। कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत्। मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नद्य विप्रतिपद्यसे' (महाभा.उ. १२८.१६-१८)

120 'तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिं चापि सौबलम्।
बद्ध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छथ' (महाभा.उ. १२८.४८)

121 अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः। मामात्मपरदेहेषु

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण-प्रकरण

नराधमों को मैं आसुरी योनियों में (=अवस्थाओं में) हमेशा के लिये डाल देता हूँ[121]।

इधर आप इस नराधम दुर्योधन-चौकड़ी को बन्दी बनाने से कतरा रहे थे। भगवन्! आपने एक और अवसर महाभारत-युद्ध को टाले जाने का खो दिया। यदि इस लोभी, ईर्ष्यालु चौकड़ी को कुछ वर्षों के लिये बन्दी बना कर रख दिया जाता और पाण्डवों को उनका पित्र्य और स्व-पराक्रमोपार्जित राज्य लौटा दिया जाता, तो वह महाविनाशक महाभारत-युद्ध नहीं होता।

क्या आप दुर्योधन-कर्ण आदि से और उसके पक्षग्राही राजाओं से डरते थे, जो कि आप पापियों को बन्दी बनाने से झिझक रहे थे? किन्तु यह बात भी नहीं है। क्योंकि जब आपने शिशुपाल को सुदर्शन चक्र का ग्रास बनाया, तब भी अनेक राजा शिशुपाल के पक्ष के थे। – 'सहदेव द्वारा कृष्ण की अग्रपूजा किये जाने पर सुनीथ (=शिशुपाल) क्रोध से लाल आँखें करके राजाओं से बोला –'राजाओ! मुझे इस समय आप लोग अपना सेनापति समझो। आओ अपन मिलकर इन कृष्ण आदि वृष्णी वंशवालों के और पाण्डवों के साथ युद्ध करें। इस प्रकार शिशुपाल ने राजाओं को भड़काया और राजसूय यज्ञ के विध्वंस के लिये उनसे मन्त्रणा की। उसकी पुकार पर सभी शिशुपाल-पक्षी राजा क्रुद्ध होकर उसके साथ हो लिये[122]।

प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः। तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु' (महाभा.भी. ४०.१८.१९)

122'सहदेवो नृणां देवः समापद्यत कर्म तत्। तस्मिन्नभ्यर्चिते कृष्णे सुनीथः शत्रुकर्षणः। अतिताम्रेक्षणः कोपादुवाच मनुजाधिपान्॥ स्थितः सेनापतिर्योऽहं मन्यध्वं किंतु साम्प्रतम्। युधि तिष्ठाम संनह्य समेतान् वृष्णि-पाण्डवान्॥ इति सर्वान् समुत्साह्य राज्ञस्तांश्चेदिपुङ्गवः। यज्ञोपघाताय ततः सोऽमन्त्रयत राजभिः॥ तत्राहूताः गताः सर्वे सुनीथ-प्रमुखा गणाः। समदृश्यन्त संक्रुद्धा विवर्णवदनास्तथा (महाभा.स. ३९. १०-१४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण-प्रकरण

पर कंस-निषूदन भगवान् जी! आपने इनकी बिना परवाह किये शतापराधी शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया। 'तब अनेक राजा जनार्दन कृष्ण को देखते रहे किन्तु बोले कुछ नहीं। दूसरे कुछ राजा क्रुद्ध होकर अपने हाथ से हाथ को पीसते रहे। दूसरे कुछ गुस्साये राजा अपने दांतों से अपने होठों को काटते रहे, और कुछ राजाओं ने एकान्त में कृष्ण की प्रशंसा की[123]।

जब आप वहाँ नहीं डरे थे, तो कौरव-सभा में तो डरने का प्रश्न ही नहीं था। तब फिर आप लोभियों को बन्दी बनाने जैसे अत्यन्त उपयुक्त कार्य से कैसे रुके? यह अवसर भी सही था। उनको बन्दी बनाने का हेतु भी था – आप शान्तिदूत को बन्दी बनाकर पाण्डवों को बर्बाद करने रूपी षड्यन्त्र । राजनीति तो आततायी शत्रु से युद्ध करने के लिये कोई न कोई हेतु (बहाना) ढूँढ़ने की बात कहती है। पर कौरव-सभा में तो स्पष्ट हेतु था, पापियों के निग्रह का ! माता, पिता, दादा, गुरु और दूत के हित-कथन की हंसी उड़ाना, अवहेलना करना और शान्तिदूत को बन्दी बनाना पर्याप्त कारण था । फिर भी भगवान् जी ! आपने क्यों नहीं किया ? क्यों नहीं किया ? प्रतीत होता है, उस समय आपकी मति, प्रमाद (अनवधानता= कर्त्तव्यच्युति) के लपेटे में आ गई !!

आपने दुर्योधन-चौकड़ी को कैद करने के बजाय उस सभा में अपना घोर विश्वरूप दिखाया या अपनी घोर शक्तियों का बखान किया । इसका उस चौकड़ी पर कोई प्रभाव पड़ा क्या? उसने जान लिया था, कि श्रीकृष्ण कितना ही कुछ बोल लें। अपनी प्रतिज्ञा

---

[123]'ततः केचिन्महीपाला नाब्रुवंस्तत्र किञ्चन। अतीतवाक्पथे काले प्रेक्षमाणा जनार्दनम्॥ हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नमर्षिताः। अपरे दशनैरोष्ठानदशन् क्रोधमूर्च्छिताः। रहश्च केचिद् वार्ष्णेयं प्रशशंसुर्नराधिपाः' (महाभा.स. ४५.३०-३२)

[124]आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभ । अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः॥ भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः। अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः (महाभा.उ. १३१.३९-४०)

के अनुसार ये युद्ध नहीं लड़ेंगे और न शस्त्र हाथ में लेंगे। अतः आपके उपदेशों का और घोर रूप दिखाने का कोई असर नहीं हुआ। वे लोग वैसे ही अमर्याद रहे। जब आप हस्तिनापुर से जाने लगे, तो आपको विदा करने के लिये भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लिक, अश्वत्थामा, विकर्ण और युयुत्सु तो गये;[124] किन्तु दुर्योधन-चौकड़ी में से किसी एक ने भी शिष्टाचार नहीं निभाया।

भगवान् श्रीकृष्ण ? [३]

कुरुक्षेत्र के रणाङ्गन में दो महासेनाओं के बीच कृष्ण

दुर्योधन के लोभ, दुराग्रह, अभिमान, ईर्ष्या और महाहठ के परिणामस्वरूप कुरुक्षेत्र के विशाल मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ आ डटीं। दुर्योधन पक्ष की ११ ग्यारह अक्षौहिणी और पाण्डवपक्ष की ७ सात अक्षौहिणी। कुल १८ अठारह अक्षौहिणी सेना के ४६ लाख ८० हजार एक सौ अस्सी यौद्धा मार काट मचाने को तैयार थे। इनमें यदि सारथियों और महावतों को भी मिला दें, तो ४७,२३,९२० सैंतालीस लाख तेईस हजार नौ सौ बीस रणबांकुरे मौत के मैदान में एक दूसरे के जीवन के प्यासे उपस्थित थे। स्वभाव से दयालु[125] अर्जुन के चित्त में इस रण में होने वाली बीभत्स हत्याओं और उनके परिणामस्वरूप होने वाले अनर्थों का चित्र उतर आया। उसे ऐसे युद्ध से वैराग्य हो गया। तब आप भगवान् ने अर्जुन को अनार्य, कृपण, रणभगू आदि चुभते वचनों से और लम्बी उपदेशावली के द्वारा युद्ध के लिये तैयार कर लिया, किन्तु उस महायुद्ध का परिणाम क्या हुआ? महाविनाश। ४७ लाख से अधिक वीर मृत्यु के ग्रास बन गये, आधा करोड़ ललनाएँ विधवा हो गईं, करोड़ों बच्चे अनाथ हो गये, लाखों सर्वथा

[125] 'अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयाऽर्जुने' (महाभा.उ. ७४.२३)

[126] त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे ह्यात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्। (महाभा. शान्ति.)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

निरपराध हाथी-घोड़े मारे गये, बहुत सी भौतिक सम्पत्ति नष्ट हो गई और वर्षों तक वातावरण दूषित रहा। क्या महाविनाशकारी महाभारतयुद्ध रोका नहीं जा सकता था? रोका जा सकता था—अवश्य रोका जा सकता था। यदि भीष्म पितामह के समान आप श्रीकृष्ण भगवान् भी समयोचित कर्त्तव्य से विमुख न रहते।

हे मधुसूदन! हे केशिनिषूदन, हे कंसनिकन्दन! हे शिशुपालशातन! भगवान्! एक दुर्योधन को ठिकाने लगाने से लाखों करोड़ों का कल्याण होता। आपके पूज्य देवव्रत भीष्म ने कहा है कि—'कुल के कल्याण के लिये एक व्यक्ति को त्याग दे, ग्राम के कल्याण के लिये कुल का त्याग उचित है और राष्ट्र के हित के लिये एक ग्राम का नाश भी उचित है[126] तो भगवन्! यहाँ तो करोड़ों के कल्याण के लिये एक दुर्योधन का और उसकी तिकड़ी का ही विनाश काफी था! क्या आपको मारने मरने को तत्पर लाखों वीरों को वहाँ इकट्ठे देखकर, इस महायुद्ध के भयङ्कर परिणाम नहीं सूझे? उस समय तो इस सबके मूल दुर्योधन की ओर आपका ध्यान जाना चाहिये था। पहले आपने उसे अपनी सेना से नवाजा। चलो कोई बात नहीं। फिर आपके उपदेश-कथन का तिरस्कार करके आपको बन्दी बना लेने के षड्यन्त्र को भी आपने नजर अन्दाज कर दिया। खैर तब भी कुछ सह्य था। पर कुरुक्षेत्र के मैदान में लाखों को मौत के मुँह में धकेलने पर उतारू दुर्योधन को क्षमा करना कथमपि उचित नहीं था।

आप भगवान् जी! अर्जुन को तो युद्ध लड़ने का उपदेश देते रहे। पर आपने युद्ध को रोके जाने के लिये प्रयास क्यों नहीं किया? आप भरसक प्रयास उस समय भी कर

---

[127]वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा। नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥ दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा। सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते। तमिमं गुणसम्पन्नमार्यं च पितरं गुरुम्। अर्घ्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे संक्षन्तुमर्हथ। ऋत्विग् गुरुस्तथाऽऽचार्यः स्नातको नृपतिः प्रियः। सर्वमेतद् हृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः। (महाभा.स. ३८.१९-२२)

श्रीकृष्ण-प्रकरण

सकते थे। महाहठी दुर्योधन और उसकी तिकड़ी को तो छोड़िये। अन्य समझदारों को तो ललकार कर इस विनाशक हत्याकाण्ड से विरत होने को कहते। आप सबसे पहले भीष्म पितामह के रूबरू होते—हे भीष्म जी! आपने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय यह कहते हुए मेरी अग्र पूजा करवाई थी कि 'केशव कृष्ण सारे लोक में सबसे बढ़कर गुणी वेदवेदाङ्ग ज्ञानी, बली, दानी, दक्ष, ह्रीमान्, यशस्वी, बुद्धिमान्, आर्य और गुरु हैं। श्रीकृष्ण ऋत्विक् भी हैं, गुरु भी हैं, आचार्य भी हैं, स्नातक भी हैं और राजा भी हैं, ये सब कुछ हैं, अतः ये ही सर्वप्रथम पूजनीय हैं[127]। तो भीष्म जी! मुझे गुरु मानते हो, तो मेरा कहना मानो। जब आप स्वयं मानते हैं और कह चुके हैं, कि दुर्योधन मन्दधी, अनर्थी, नृशंस, अधर्मी, कुलघ्न और पापी है[128]। और आप यह भी स्पष्ट कह चुके हैं कि पाण्डव आधे राज्य के पूरे हकदार हैं[129]। तो फिर आप इस लोभी, अधर्मी, पापी दुर्योधन की ओर से क्यों लड़ रहे हैं। आप कई बार कह चुके कि प्राण्डव धर्म पर आरूढ़ हैं, धार्मिक हैं[130]। तो आप क्या अधर्मियों की ओर से धर्मात्माओं की सेना का संहार करने के लिए लड़ रहे हैं? भीष्म जी! आप इस अधर्मी दुर्योधन को छोड़ दीजिये और पाण्डवों की ओर से लड़िये अथवा युद्ध से अलग हो जाइये। इसी प्रकार आप द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा, विकर्ण आदि समझदारों को समझा सकते थे। ये सब दुर्योधन की करतूतों से परिचित थे और समय-समय पर उसके कुकृत्यों का इन्होंने विरोध भी किया था[131]। आपकी अपील का अवश्य प्रभाव पड़ता। साथ ही दुर्योधन

---

[128] देखो पृष्ठ ६६ और टिप्पणी।

[129] देखो पृष्ठ ६२ और टिप्पणी।

[130] 'मोक्षितश्चासि धर्मज्ञैः पाण्डवैर्न च लज्जसे' (महाभा.वन. २५३.६)
'ते सर्वेऽवस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः' (महाभा. आदि. २०२.१८)

[131] देखो पृष्ठ ४ और टिप्पणी तथा पृष्ठ ३०,३१।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

के हठ, दुराग्रह, लोभ और हिंस्रता का हवाला देकर, कौरव-पक्ष के योद्धाओं का आह्वान करते, कि आप लोगों में से जो भी धर्म-पक्ष में आना चाहते हैं, वे इस पक्ष में आ जायें। तो बहुत से विकर्ण जैसे आत्मवान् व्यक्ति पाण्डवपक्ष में आ जाते । जैसे युधिष्ठिर के आह्वान पर दुर्योधन का भाई युयुत्सु पाण्डव-पक्ष में आ गया था[132]।

आपने सेनाओं के मध्य में युद्ध करने से उपरत अर्जुन को उपदेश देने के साथ अपना घोर विश्वरूप दिखाया – अपने सामर्थ्य को प्रकट किया, जिससे महाधनुर्धर अर्जुन भी भयभीत हो गया[133]। भगवान् जी! यह रूपप्रदर्शन या सामर्थ्यप्रकटन का कर्म कौरव-सेना की ओर मुख करके करना चाहिये था। जिससे वे भयभीत होकर भाग खड़े होते। उस रूप को देखने की दृष्टि भी उन्हें देते – आपके उस महासामर्थ्य को समझने की बुद्धि भी उन्हें देते । डराना चाहिये था कौरवों को और डरा दिया अर्जुन को । उलटा काम हो गया ।

भगवन् ! आपने अर्जुन को अपने जन्म का उद्देश्य बताया था – 'मैं सज्जनों की रक्षा के लिये और दुष्कर्माओं – पापियों के विनाश के लिये और धर्म की स्थापना के

132'अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत् पाण्डवाग्रजः । योऽस्मान् वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात् ॥ अथ तान् समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत् । प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धार्तराष्ट्रजान् । युष्मदर्थं महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥ युधिष्ठिर उवाच –एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान् । युयुत्सो ! वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः॥ वृणोमि त्वां महाबाहो युद्ध्यस्व मम कारणात्। त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते । भजस्वास्मान् राजपुत्र भजमानान् महाद्युते।... ततो युयुत्सुः कौरव्यान् परित्यज्य सुतांस्तव । जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम् ॥ (महाभा.भी. ४३.९४-१००)

133'अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे' (महाभा.भी. ३५.४५)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

लिये बार-बार जन्म लेता हूँ'[134] । तो सब सज्जनों की रक्षा कहाँ हुई और पापी तो पीछे मरा। पहले आपके सामने पाण्डव-पक्ष की सात अक्षौहिणी सेना के १८,३७,०७१ अठारह लाख सैतीस हजार इगहत्तर (जीवित रहे नौ को घटाने पर)[135] सज्जन लोगों का विनाश हो गया । इन्होंने धर्मारूढ़ पाण्डवों का पक्ष लिया, अत: ये साधुस्वभाव के सज्जन थे । दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना के जो २८,८६,८३७ अट्ठाईस लाख छियासी हजार आठ सौ सैंतीस (अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा इन जीवित रहों को घटाने पर) वीर अकाल मृत्यु का ग्रास बने; उनमें से लाखों सज्जनों का भी विनाश आपके देखते-देखते हो गया। जैसे आपके द्वारा दुष्ट दुर्योधन को सौगात रूप में दिये गये 'नारायण' नाम से विख्यात लाखों वीर साधु-सज्जन थे कि नहीं ? आपकी वह नारायणी सेना पापियों का जमावड़ा थोड़े ही था। कौरव-सेना के दूसरे लाखों लोग भी सज्जन रहे होंगे। क्योंकि उनमें से कुछ तो दुर्योधन-परिवार के साथ सम्बन्ध होने के कारण, कुछ उसके द्वारा उपकृत होने के कारण और कुछ दुर्योधन से भयभीत होने के कारण उसकी सेना में सम्मिलित थे । तो महामहिम भगवान् जी! लाखों-लाखों साधु-सज्जनों का आपकी खुली आँखों के सामने विनाश हो गया । उनका परित्राण (=रक्षण) कहाँ हुआ? आपकी चूक के कारण यह सब हुआ ।

आपने तो नीति में पढ़ा ही होगा – गुरु हो, चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो और बहुत ज्ञानी ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि वह आततायी (=क्रूर, हिंसक) हो, तो उसे बिना

---

[134] 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगेयुगे' (महाभा.भी. २८.८)

[135] पाण्डवपक्ष के जीवित नौ – पांच पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, युयुत्सु, धृष्टद्युम्न का सारथि।

[136] 'गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाऽविचारयन्' (मनु. ८.३५०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण–प्रकरण

कुछ विचारे-बिना आगा-पीछा विचारे मार ही देना चाहिये[136]। तथा– 'जो अभिमानी होकर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार नहीं करता तथा कुपथ पर चलता है, वह चाहे गुरु भी क्यों न हो, उसे तो अवश्य दण्ड देना ही चाहिये[137]। तथा– जो धर्म पर स्थिर नहीं रहता– अधर्म पर चलता है, वह चाहे पिता हो, आचार्य हो, मित्र हो, माता, पत्नी, पुत्र या पुरोहित भी क्यों न हो, वह राजा के द्वारा दण्डनीय है, कोई भी अधर्मी; राजा के लिये अदण्डनीय नहीं है[138]। तो भगवान् जी! आपने आततायी (=हिंस्रवृत्ति वाले), कुपथगामी और अधर्मारूढ़ लोभी दुर्योधन को दण्ड क्यों नहीं दिया ? आप कहेंगे, कि दुर्योधन ने बुरा पाण्डवों का किया था, मेरा नहीं किया, सो मेरे द्वारा क्यों उसे दण्ड दिया जाता? सो यह बात भी नहीं है। आप कह चुके थे –'पाण्डव लोग धर्म पर आरूढ़ हैं, उन्हें कोई क्या कह सकता है। जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है। जो उनके अनुकूल है वह मेरे अनुकूल है – जो उनसे प्रेम करता है, वह मुझसे प्रेम करता है। धर्मात्मा पाण्डवों के साथ मेरी एकात्मता हैं अर्थात् पाण्डवों में और मुझमें कोई भेद नहीं है। हम एक ही हैं[139]। मेरे लिये पिता माता की और तुम सब भाईयों की और यहाँ तक कि मेरे अपने प्राणों की भी रक्षा करना इतना आवश्यक नहीं था, जितना कि युद्ध में अर्जुन की रक्षा करना मेरे लिये जरूरी था। तीनों लोकों के राज्य की प्राप्ति से भी यदि कोई अति दुर्लभ वस्तु हो, तो वह भी मुझे नहीं चाहिये, बिना अर्जुन के अर्थात् अर्जुन

---

137 'गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याऽकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः' (महाभा.शा. ५७.७)

138 'पिताऽऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नाऽदण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति (मनु.८.३३५)

139 'धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान् किं वक्तुमर्हति ॥ यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु। ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः' (महाभा.उ. ९१. २७,२९)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

मेरे लिये तीनों लोकों के राज्य आदि से भी अधिक बढ़कर है[140]। कभी इन्द्र से भी आपने अपनी मंशा प्रकट की थी, कि मेरी अर्जुन के साथ अनन्त प्रीति बने रहे[141]।

इससे स्पष्ट है कि आप अपने को पाण्डवों से अभिन्न मानते थे। पाण्डव अर्थात् आप। आप अर्थात् पाण्डव। कृष्ण अर्थात् अर्जुन। अर्जुन अर्थात् कृष्ण। तो फिर आपने अपने अभिन्न अंग रूप पाण्डवों के जन्म से ही-उनके बाल्यकाल से ही उनके अकारण द्वेषी और उनकी हत्या करने पर उतारू[142] दुर्योधन को दण्ड क्यों नहीं दिया?

पापियों का वध करना आप अपना कर्त्तव्य समझते थे। ऐसी आपकी प्रतिज्ञा भी थी। आपको स्मरण होगा, जब कर्ण के हाथों घटोत्कच मारा गया, तब पाण्डव तो अपने पुत्र के मारे जाने से बहुत दुःखी थे, पर आप अति प्रसन्न हो रहे थे[143]। अर्जुन द्वारा आपकी इस अति प्रसन्नता का कारण पूछे जाने पर आपने कहा था, कि कर्ण ने जिस शक्ति को तुम्हें मारने के लिये सुरक्षित रख रखा था, उसे घटोत्कच पर चलवाकर

140'न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा। न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे॥ त्रैलोक्यराज्याद् यत्किञ्चिद् भवेदन्यत् सुदुर्लभम्। नेच्छेयं सात्वताहं तद् विना पार्थं धनञ्जयम्' (महाभा. द्रो. १८२.४३,४४)

141'वासुदेवोऽपि जग्राह प्रीतिं पार्थेन शाश्वतीम्।
ददौ सुरपतिश्चैव वरं कृष्णाय धीमते' (महाभा.आदि. २३३.१३)

142'अकस्माद् द्वेष्टि वै राजन् जन्मप्रभृति पाण्डवान्। प्रियानुवर्त्तिनो भ्रातॄन् सर्वैः समुदितान् गुणैः। अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते' (महाभा.उ. ९१.२६,२७)

143'अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन। शोकस्थाने तु सम्प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु। विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम्। वयं च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बेस्तु निपातनात्। (महाभा. द्रो. १८०.६७)

144'यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना। वासवेन महाबाहो क्षिप्ता याऽसौ

तुम्हारी मृत्यु की संभावना को समाप्त कर दिया गया है और अब कर्ण का मारा जाना सुनिश्चित समझो[144]। हर्ष का दूसरा कारण यह है, कि पापी घटोत्कच मारा गया – 'यदि युद्ध में कर्ण की शक्ति के द्वारा घटोत्कच नहीं मारा जाता, तो यह भीम-पुत्र घटोत्कच मेरे द्वारा मारा जाता। मैंने अब तक तुम लोगों के प्रेम को ध्यान में रखकर ही इसे नहीं मारा था। यह राक्षस घटोत्कच ब्राह्मणों का और यज्ञ आदि का द्वेषी था। यह धर्म का विनाशक और पापात्मा था, इसलिये यह इन्द्र द्वारा कर्ण को प्रदत्त 'शक्ति' के द्वारा मार दिया गया है। जो जो भी धर्म के विनाशक होते हैं, वे मेरे द्वारा अवश्य मारे जाते हैं। धर्म की संस्थापना के लिये मेरी यह प्रतिज्ञा है[145] तो फिर उस पापी अधर्मारूढ़ दुर्योधन को आपने क्यों नहीं मारा? आपने तो कहा था न, कि यदि दुर्योधन नहीं माना, तो वह मेरे द्वारा वध्य होगा – मेरे द्वारा मारा जायेगा। आपको तो स्मरण ही होगा, ज़ब शान्ति-प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने से पहले पाण्डवों ने कौरवों से शान्तिपूर्वक बात करने को कहा था। युधिष्ठिर तो स्वभाव से धर्म की बात कहने वाले थे। उनकी कोमलता भरी बातों पर आपने उन्हें युद्धार्थ उकसाया था। स्वभाव से ही मन्युमान् महाबली भीम ने भी कलि, मुदावर्त, नीप, बहुल आदि पूर्ववर्ती अठारह क्रोधी दुर्मद राजाओं का उदाहरण देकर कहा था, कि क्रोध और अभिमान के कारण कैसे राजा लोग अपने ज्ञातिजनों, मित्रों और बन्धु-बान्धवों के विनाश के कारण बनते हैं। 'इधर इस दुर्योधन के क्रोध के कारण सारे भरतवंशी वैसे ही जल जायेंगे जैसे शिशिर ऋतु के बीत

घटोत्कचे ॥ तां प्राप्यामन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे। शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते। कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय' (महाभा.द्रो. १८०.२१,२२,१२)

[145]'हैडिम्बश्चाप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः। यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णः शक्त्या महामृधे। मया वध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्घटोत्कचः। मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ॥ एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः। धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेव निपातितः। ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव। धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया' (महाभा.द्रो. १८१.२५-२९)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

जाने पर प्रचण्ड अग्नि के लग जाने से वन जल जाते हैं। यह दुर्योधन कुलाङ्गार, नीच और पापी है, इसलिये आप नरमाई के साथ धीरे-धीरे धर्मार्थयुक्त हितकारी वचन ही बोलना, उग्र वचन मत बोलना। यदि दुर्योधन शान्ति से मान जाता है, तो कोई बात नहीं हम थोड़ा दब कर ही रह लेंगे, उसका अनुसरण कर लेंगे। मैं इसलिये ऐसा कह रहा हूँ, जिससे कि भरतवंशी नष्ट न हो जायें। भाईयों का परस्पर भ्रातृत्व बना रहे और दुर्योधन शान्त हो जावे। इसलिये मैं ऐसा कह रहा हूँ। युधिष्ठिर भी इस बात को पसन्द करते हैं। अर्जुन भी युद्ध नहीं चाहता है, क्योंकि अर्जुन में बहुत अधिक दयाभाव है[146]। भीम के ऐसे वचन सुनकर जब आपने दुर्योधन द्वारा दिये गये अनेक असह्य कष्टों को याद करा करके भीम की घोर सन्ताप वाली स्थिति को याद दिलाकर कहा था – 'यह तो जैसे पर्वत छोटा हो जाय अथवा अग्नि में ठंडक आ जाय' ऐसी बात हो गई। तुम भाईयों के बीच में कहते रहते थे, कि मैं गदा को हाथ में लेकर सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, कि इस गदा से ही दुर्योधन को मार डालूँगा। और आज तुम्हारी बुद्धि शान्ति की बात कर रही है! यह कथन तुम्हारे अनुरूप नहीं है। क्षत्रिय जिसे अपने पराक्रम से प्राप्त नहीं करता उसका वह उपभोग नहीं करता' तब भीम ने कहा था – 'न तो मेरी मज्जा ठंडी पड़ गई है और न मेरा मन कांप रहा है। अपितु सबके साथ सबका सौहार्द बना रहे, इसी दृष्टि से मैंने दयायुक्त नरमी की बात कही है। और इसलिये मैं सब क्लेशों को सहन कर रहा हूँ, कि कहीं भरतवंशी नष्ट न हो जायें[147]।

---

[146] दुर्योधनस्य क्रोधेन भरता मधुसूदन। धक्ष्यन्ते शिशिरापाये वनानीव हुताशनैः॥ दुर्योधनः कुलाङ्गारो जघन्यः पापपूरुषः॥ तस्मान् मृदु शनैर्ब्रूया धर्मार्थसहितं हितम्। कामानुबन्धबहुलं नोग्रमुग्रपराक्रम॥ अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः। नीचैर्भूत्वानुयास्यामो मा स्म भो भरता नशन्॥... भ्रातॄणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम्। अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति। अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने॥ (महाभा.उ. ७४.८, १८-२३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण-प्रकरण

उसके बाद अर्जुन के भी उद्‌गार आपने सुने, तो आपने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा था - 'वह दुष्टबुद्धि दुर्योधन धर्म का और लोकव्यवहार का भी त्याग करके, अपनी मनमर्जी पर चल रहा है। अपने द्वारा किये गये कुकृत्यों पर उसे कोई पश्चात्ताप नहीं है। उसके मन्त्री बने हुए शकुनि, कर्ण और दुःशासन उसकी पापमयी बुद्धि में और अधिक पाप-भावना को भर रहे हैं। वह आप लोगों के राज्य को आप लोगों को देकर शान्त हो जायेगा। ऐसी आशा नहीं है। दुर्योधन सगे सम्बन्धियों सहित मृत्यु को प्राप्त हुए बिना शान्त नहीं होगा। और युधिष्ठिर भी दुर्योधन के आगे झुककर-दबकर अपने भाग को त्यागना नहीं चाहते। और दुष्टबुद्धि दुर्योधन मांगने से आप लोगों के राज्य को लौटायेगा भी नहीं। मैं समझता हूँ, कि युधिष्ठिर ने हेतु के साथ जो अन्य बात कही है, उस बात को दुर्योधन के सामने नहीं रखना चाहिये। क्योंकि वह पापी वैसा कुछ भी नहीं करेगा। हमारी बात को यदि वह नहीं मानता है, तो लोक में यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट हो जायेगी, कि दुर्योधन वध्य है—मारने योग्य है। तब तो वह दुर्योधन मेरे द्वारा भी वध्य होगा और सारे जगत् के द्वारा भी वध्य होगा। जिसने बाल्यकाल में भी सदा आप लोगों को तिरस्कृत किया और हानि पहुँचाई। उस क्रूर दुरात्मा दुर्योधन ने आप लोगों का राज्य हड़प लिया। युधिष्ठिर के पास राज्यलक्ष्मी देखकर उस पापी को शान्ति नहीं मिली। हे

---

147 'न मे सीदन्ति मज्जानो न ममोद्वेपते मनः ८.. किं तु सौहृदमेवैतत् कृपया मधुसूदन। सर्वांस्तितिक्षे संक्लेशान् मा स्म नो भरता नशन्' (महाभा.उ. ७६.१८)

148 स हि धर्मं च लोकं च त्यक्त्वा चरति दुर्मतिः ॥ न हि सन्तप्यते तेन तथारूपेण कर्मणा। तथापि बुद्धिं पापिष्ठां वर्धयन्त्यस्य मन्त्रिणः। शकुनिः सूतपुत्रश्च भ्राता दुःशासनस्तथा। स हि त्यागेन राज्यस्य न शमं समुपैष्यति। अन्तरेण वधं पार्थ सानुबन्धः सुयोधनः। न चापि प्रणिपातेन त्यक्तुमिच्छति धर्मराट्। याच्यमानश्च राज्यं स न प्रदास्यति दुर्मतिः ॥ न तु मन्ये तद् वाच्यो यद् युधिष्ठिर-शासनम्। उक्तं प्रयोजनं यत्तु धर्मराजेन भारत ॥ तथा पापस्तु तत्सर्वं न करिष्यति कौरवः। तस्मिंश्चाक्रियमाणेऽसौ लोके वध्यो भविष्यति ॥ मम चापि स वध्यो हि जगतश्चापि भारत। येन कौमारके

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

अर्जुन! उसने कई बार तुमसे मुझे अलग करने के लिये हमारे में फूट डालने के लिये भी प्रयत्न किये, किन्तु मैंने उसकी पापमयी इच्छा पूरी नहीं होने दी[148]।

तो हे केशिनिषूदन ! हे मधुसूदन ! हे कंसनिकन्दन! हे शिशुपालशातन! भगवान्! आप पाण्डवों के सामने दृढ़ता के साथ कहकर आये थे, कि उस पापी दुर्योधन को उस दुष्टबुद्धि को, उस दुरात्मा को, उस क्रूर को मैं मार डालूँगा, यदि वह मेरी बात नहीं मानेगा तो। आपकी बात जब उसने नहीं मानी, तो आपने उसे मारा क्यों नहीं ? अपनी प्रतिज्ञा आप स्वयं ही भूल गये । उस एक को मारने से,उन दो-चार को ठिकाने लगाने से, लाखों-लाखों लोग मौत का ग्रास बनने से बच जाते।

उस सेना-समूहों के बीच में ही उस चौकड़ी के धुर्रे क्यों नहीं उड़ाये? आपका सुदर्शन चक्र उस समय क्यों नहीं याद आया आपको ?

आप कहेंगे, 'मैंने तो युद्ध न करने का और शस्त्र न उठाने का वचन दिया था'। भगवान् जी! आपके उस वचन की तो कीमत उसी समय समाप्त हो गई थी, जब आपने अर्जुन को कहा था 'दुर्योधन मेरे द्वारा वध्य होगा। युद्ध न करने और शस्त्र न उठाने की बात आपने द्वारका में कही थी और उसके बाद 'उपप्लव्य' नगर में 'वध्य' वाली बात कही थी । बाद वाले कथन से पूर्व कथन की काट हो जाती है । शस्त्र बिना उठाये क्या उसे फूंक से मारने का विचार था? तो वैसा ही कर दिखाते समर्थ जी!

यह बात भी नहीं थी, कि आप शत्रु-पक्ष की विशालसेना से भयभीत होकर चन्द दुरात्माओं के विनाश करने से हिचक गये हों। क्योंकि सन्धिवार्त्ता के लिये जब आप हस्तिनापुर जाने को उद्यत हुए, तो युधिष्ठिर के यह कहने पर कि 'दुर्योधन- दल आपके

यूयं सर्वे विप्रकृताः सदा॥ विप्रलुप्तं च वो राज्यं नृशंसेन दुरात्मना। न चोपशाम्यते पापः श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ असकृच्चाप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ भेदितः । न मया तद् गृहीतं च पापं तस्य चिकीर्षितम्' (महाभा.उ. ७९.६-१४)

149'न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः । क्रुद्धस्य संयुगे स्थातुं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

हितकारी वचन को भी नहीं मानेगा और वहाँ के सब राजा लोग दुर्योधन के गुलाम हो गये हैं, अतः उनके बीच में आप मत जाइये, वे आपके साथ कुछ गड़बड़ कर सकते हैं" तब आपने कहा था – 'वहाँ के सारे के सारे राजा लोग मिलकर भी मेरे लिये नहीं के समान हैं। मेरे क्रुद्ध हो जाने पर वे उसी प्रकार मेरे सामने नहीं टिक सकेंगे जैसे सिंह के आगे अन्य पशु। और यदि उन्होंने मेरे साथ कुछ गड़बड़ की तो मैं सब कौरवों को जला डालूँगा।[149]

फिर युद्धभूमि में तो आपके साथ अर्जुन भी था। जब खाण्डवप्रस्थ वन को अग्नि से जलाया गया था, तब आप दोनों से लड़ने के लिये अनेकानेक देवलोग (=विविधविज्ञानी वीर) अपने-अपने पन्द्रह प्रकार के शस्त्र लेकर आप दोनों पर आक्रमण करने आये थे, तब 'युद्ध में कभी न दबा सकने योग्य, रणनिपुण आप दोनों निर्भीक होकर वहीं डटे रहे और उन देवों के समीप आने पर आप दोनों ने क्रुद्ध होकर वज्र सरीखे बाणों से उन्हें ऐसी मार मारी, कि वे युद्धभूमि से भाग खड़े हुए। उनको अनेक बार मुँह की खानी पड़ी। इसे देखकर वहाँ के मुनिजन आश्चर्यमग्न हो गये[150]।

भगवान् जी! सब प्रकार से समर्थ होने पर भी दुष्ट दुर्योधन को आपने उस समय मारकर महाविनाशक युद्ध को रोकने का प्रयास क्यों नहीं किया ? क्यों नहीं किया ?

सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ अथ चेत्ते प्रवर्त्तन्ते मयि किंचिदसाम्प्रतम्। निर्दहेयं कुरून् सर्वानिति मे धीयते मतिः' (महाभा.उ. ७२.८६,८७)

150'अभीतौ युधि दुर्धर्षौ तस्थतुः सज्जकार्मुकौ। आगच्छतस्ततो देवानुभौ युद्धविशारदौ ॥ व्यताडयेतां संक्रुद्धौ शरैर्वज्रोपमैस्तदा। असकृद् भग्नसङ्कल्पाः सुराश्च बहुशः कृताः ॥ भयाद् रणं परित्यज्य शक्रमेवाभिशिश्रियुः। दृष्ट्वा निवारितान् देवान् माधवेनार्जुनेन च ॥ आश्चर्यमगमंस्तत्र मुनयो नभसि स्थिताः' (महाभा.आदि. २२६. ४१-४४)

151'पार्थस्य दृष्ट्वा मृदुयुद्धतां च भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम्। अमृष्यमाणः

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

श्रीकृष्ण–प्रकरण

युद्ध न करने की, शस्त्र न उठाने की द्वारका वाली बात भी धरी रह गई। क्योंकि आखिर आपको भीष्म को मारने के लिये उद्यत होना ही पड़ा और एक बार ही नहीं दो बार आप भीष्म के सफाये के लिये युद्ध में कूदे। प्रथम बार जब तीसरे दिन के युद्ध में भीष्मपितामह के प्रति अर्जुन के नरमी से युद्ध करने के भाव को भांपा और उधर भीष्म को पाण्डव सेना संहार में और अधिक उग्र होते देखा तो कृष्ण से यह सहन नहीं हुआ। तब कृष्ण ने पाण्डव सेना को ढांढ़स बंधाने वाले शिनिप्रवीर को और आक्रमण करती हुई कौरव सेना को सुनाकर कहा–'आज कौरव सेना का कोई महारथी मेरे क्रोध के आगे बच न सकेगा। अतः मैं चक्र लेकर भीष्म के प्राण हरूँगा। भीष्म और द्रोण को उनके सहायकों सहित मारकर आज मैं अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव की प्रसन्नता में वृद्धि करूँगा तथा युधिष्ठिर को उसका राज्य दिलवाऊँगा' ऐसा कहकर कृष्ण सूर्यसम चमकीले तेज धारवाले सुदर्शन चक्र को हाथ में लेकर रथ से कूद पड़े और चरणों से भूमि को कंपाते हुए वेग से भीष्म की ओर लपके। तब अर्जुन भी शीघ्रता से रथ से उतरा और कृष्ण के पीछे चल पड़ा। उसने दौड़कर कृष्ण की भुजाओं को पकड़ लिया किन्तु कृष्ण उसको लिये ही वेग से वैसे ही बढ़ते गये जैसे झंझावात किसी वृक्ष को उखाड़कर उसे लपेटे में लिये हुए आगे बढ़ता है। तब भीष्म की ओर झपटते हुए कृष्ण के पांवों को अर्जुन ने कसकर पकड़ लिया, तब दसवें कदम पर कृष्ण रुके। अर्जुन ने तभी कृष्ण को

सततो महात्मा यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता।उवाच शैनेयमभिप्रशंसन् दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान्। न मे रथी सात्वत कौरवाणां क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित्। तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य। निहत्य भीष्मं सगणं तथाऽऽजौ द्रोणं च शैनेय रथप्रवीरौ। प्रीतिं करिष्यामि धनञ्जयस्य राज्ञश्च भीमस्य तथाश्विनोश्च। निहत्य सर्वान् धृतराष्ट्रपुत्रांस् तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः। राज्येन राजानमजातशत्रुं सम्पादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः॥ ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः क्षुरान्तमुद्यस्य भुजेन चक्रं रथादव प्लुत्य विसृज्य वाहान्। संकम्पयन् गां चरणै महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम्।...। रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान् पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम्। जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

उनका वचन स्मरण कराया आषैर कहा 'मैं अपने पुत्रों की और भाईयों की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं घोर युद्ध करके कौरवों का नाश करूँगा। तब जाकर कृष्ण अपने चक्र के साथ वापिस अर्जुन के रथ पर सवार हुए[151]।

'कृष्ण ने अर्जुन की भीष्म के प्रति नरमाई से युद्ध करने की वृत्ति को देखकर और भीष्म पितामह को युद्ध में निरन्तर बाणों की वर्षा करते हुए, पाण्डव पक्ष के बढ़िया-बढ़िया वीरों को मौत की नींद सुलाते हुए और पाण्डव-सेना में प्रलय सा मचाते हुए देखकर श्रीकृष्ण सहन नहीं कर सके। उन्होंने अर्जुन-रथ के घोड़ों को छोड़ा और वे रथ से कूद पड़े। अपनी भुजाओं से ही भीष्म को पीस डालूंगा ऐसा सोचकर प्रतोद (=चाबुक) हाथ में लेकर सिंह के समान गर्जना करते हुए, भीष्म को मारने की इच्छा से क्रोध से तमतमाती आँखों वाले कृष्ण भीष्म की ओर धरती कंपाते हुए लपके। श्रीकृष्ण को इस अवस्था में भीष्म की ओर दौड़ते हुए देखकर लोग कृष्ण के भय से चिल्लाने लगे, कि अरे भीष्म मारे गये, भीष्म मारे गये। इस अवस्था में कृष्ण को अपनी ओर तेज़ी से आते हुए देखकर भीष्म ने अपना बड़ा धनुष खींच लिया और कृष्ण से बोले 'हे कृष्ण! आप

बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः। निगृह्यमाणश्च तदादिदेवो भृशं संरोषः किल चात्मयोगी। आदाय वेगेन जगाम विष्णुर्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम्। पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम्। बलान्निजग्राह हरिं किरीटी पदेऽथ राजन् दशमे कथञ्चित्। अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनं चित्रमाली। उवाच कोपं प्रतिसंहरेति गतिर्भवान् केशव पाण्डवानाम्। न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च। अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां त्वयाहमिन्द्रानुज सम्प्रयुक्तः। ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य जनार्दनः प्रीतमना निशम्य। स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं स चक्रः पुनरारुरोह' (महाभा.भी. ५९.८२...१०४)

[152]वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम्। भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि॥ वरान् वरान् विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्। युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले। नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा। उत्सृज्य रजतप्रख्यान् हयान् पार्थस्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

श्रीकृष्ण-प्रकरण

इच्छानुसार मुझ पर प्रहार करो। मैं आपका दास हूँ। तभी कृष्ण के पीछे-पीछे आते हुए अर्जुन ने श्रीकृष्ण को भुजाओं से पकड़ कर आगे बढ़ने से रोका। पर कृष्ण अर्जुन सहित वेग से आगे बढ़ते ही गये। तब अर्जुन ने पूरा जोर लगाकर श्रीकृष्ण के दोनों चरण पकड़ लिये। तब भी कृष्ण नौ पग आगे चले गये और दसवें पग पर जाकर किसी प्रकार रुके[152]।

तो भगवान् जी ! अन्त में आपको युद्ध में उतरना ही पड़ा न। यह दूसरी बात है, कि आपके परम सखा अर्जुन की प्रार्थना पर आप रुक गये। एक बात और है, आप मारने चले भीष्म को। भगवान् जी ! भीष्म द्वारा मृत्युताण्डव मचाने का और महाविनाश का जो मूल कारण दुर्योधन था, उसको मारने जाना था आपको और इतना नरसंहार होने के बाद नहीं। पहले ही पापी का काम तमाम करना था। फिर द्रोण के सेनापतित्व में जब अर्जुन के बाणों से व्यथित महाबलशाली भगदत्त ने महाभयङ्कर वैष्णवास्त्र को अर्जुन की

मारिष। वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात्। अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली। प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद् विनदन् मुहुः। दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः। क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः।...। हतो भीष्मो हतो भीष्मस्तत्र तत्र वचो महत्। अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात्तदा।...। तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे। असम्भ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महाधनुः। उवाच चैव गोविन्दमसम्भ्रान्तेन चेतसा।...। प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ। अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम्। निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै। निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः। जगामैवैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः। पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा। निजग्राह हृषीकेशं कथंचिद् दशमे पदे॥ (महाभा.भी. १०६. ५३-७०)

153 'विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन्। अभिमन्त्र्यांकुशं क्रुद्धो व्यसृजत् पाण्डवोरसि। विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै। उरसा प्रतिजग्राह पार्थं सञ्छाद्य केशवः। ततोऽर्जुनः क्लान्तमना: केशवं प्रत्यभाषत। अयुध्यमानस्तुरगान्

छाती को छेदने हेतु फेंका तो आपने अर्जुन को अपनी ओट में करके, उस अस्त्र को अपनी वक्षःस्थली पर झेल लिया। तब अर्जुन ने आपको अपनी प्रतिज्ञा भंग न करने हेतु कहा था[153]। इस प्रकार तीन बार आपको युद्ध में उतरना पड़ा।

महा मान्यवर भगवान् जी ! अर्जुन को स्थितप्रज्ञता (=विवेक) का उपदेश देने वाले महाराज जी ! क्या युद्धारम्भ के समय में आपकी प्रज्ञा में स्थितत्व का ह्रास हो गया था ?

अब रही धर्मसंस्थापना की बात। धर्मसंस्थापना क्या युधिष्ठिर के राज्य- शासन संभालने से हुई ? यह कोई धर्मसंस्थापना हुई ? जो लाखों-लाखों वीरों की लाशों पर हुई ! जो आधा करोड़ स्त्रियों के करुण-क्रन्दन और सूनी मांगों पर हुई!! जो करोड़ों बच्चों की असहाय अनाथता पर हुई !!!

न पापियों का समय रहते विनाश हुआ। न सज्जनों का-साधुओं का परित्राण हुआ और न ही तथाकथित धर्मसंस्थापना हुई। महाविनाश हुआ इस महायुद्ध से। भगवान् जी ! आप चाहते तो – आप विचारते तो इस महायुद्ध को आप रोक सकते थे।

काल की इस खरी-खरी समीक्षा को सुनकर और द्वारका में यादवों की नशेबाजी तथा दुरवस्था को देखकर श्रीकृष्ण भगवान् बीती बातों पर विचार करने वन को चले गये।

तब काल ने द्रोणाचार्य के विषय में जानने का निश्चय किया। क्योंकि द्रोण

संयन्तास्मीति चानघ। इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि' (महाभा.द्रो. २९. १७,१८,२१,२२)

[154]अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित्। अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम्' (महाभा.आदि. २.३०) 'युद्धं कृत्वा महद् घोरं पञ्चाहानि महाबलः। ब्राह्मणो निहतो राजन् ब्रह्मलोकमवाप्तवान्'। (महाभा.द्रो. २०२.१५५)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

द्रोणाचार्य-प्रकरण

कौरवों और पाण्डवों को बाल्यकाल से जानते थे, उनके स्वभाव से प्रवृत्तियों से सुपरिचित थे। यद्यपि द्रोण तो युद्ध के पन्द्रहवें दिन मारे जा चुके थे,[154] तथापि उनकी आत्मा कदाचित् किसी प्रकार सुन सके, ऐसी सम्भावना से काल द्रोण से जिज्ञासा करने लगा —

द्रोणाचार्य ? [१]

द्रोणाचार्य और एकलव्य का दक्षिण-अङ्गुष्ठ-कर्तन

हे द्रोणाचार्य जी महाराज ! आप पाण्डवों और धार्तराष्ट्रों के गुरु थे। उनके स्वभाव से सुपरिचित थे। उनकी प्रवृत्तियों की बारीकी से आपको जानकारी थी। आपने उन्हें नाना अस्त्र-शस्त्रों की विद्या में पारङ्गत किया। पाण्डव-कौरवों के साथ आपके पुत्र अश्वत्थामा भी अस्त्र-शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। आपने अपने पुत्र को अधिक शिक्षा देने के लिये युक्ति सोची। अन्य शिष्यों को तो कमण्डलु से जल भरने की व्यवस्था की, किन्तु अश्वत्थामा घड़े से जल भरे, ऐसी आज्ञा। फलतः अश्वत्थामा शीघ्र ही अपना कार्य पूरा करके आपके पास आ जाता। तब आप उसे अतिरिक्त शस्त्रास्त्र-विद्या सिखा देते। इस बात को अर्जुन ताड़ गया। वह वारुणास्त्र से जल भरने का कार्य शीघ्र पूरा करके अश्वत्थामा के साथ आपके पास आने लगा। इस प्रकार अश्वत्थामा के साथ ही साथ अर्जुन भी उस अतिरिक्त शिक्षा को प्राप्त करने लगा और गुरु-पुत्र से कमती नहीं रहा[155]।

---

155 'कमण्डलुं च सर्वेषां प्रायच्छच्चिरकारणात्। पुत्राय च ददौ कुम्भमविलम्बन-कारणात्। यावत्ते नोपंगच्छन्ति तावदस्मै परां क्रियाम्। द्रोण आचष्ट पुत्राय तत् कर्म जिष्णुरौहत॥ ततः स वारुणास्त्रेण पूरयित्वा कमण्डलुम्। सममाचार्यपुत्रेण गुरुमभ्येति फाल्गुनः॥ आचार्यपुत्रात् तस्मात् तु विशेषोपचयेऽपृथक्। न व्यहीयत मेधावी पार्थोऽप्यस्त्रविदां वरः' (महाभा. आदि १३१.१६-१९)

156 अर्जुनः परमं यत्नमतिष्ठद् गुरुपूजने। अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य–प्रकरण

जब आपने देखा कि अर्जुन भी अश्वत्थामा के समान अस्त्रविद्या में पारङ्गत हो रहा है और वह बड़े यत्न से मेरे सम्मान में लगा रहता है और अस्त्र-कौशल में एकाग्रता से लगा हुआ है, तो आपने 'अर्जुन कहीं शब्दवेधी अस्त्र चलाना न सीख जाय' इस मंशा से –

'रसोइये को एकान्त में बुलाकर कहा – हे रसोइये ! तू अर्जुन को कभी भी अन्धेरे में भोजन न कराना और मेरी इस आज्ञा को तू अर्जुन को न बताना'। तब एक बार रात्रि में जब अर्जुन भोजन कर रहा था, तो वायु के तीव्र प्रवाह से दीपक बुझ गया। तब अर्जुन ने अनुभव किया कि अन्धेरे में भी ग्रास वाला हाथ तो सीधा मुख में ही जा रहा है। तो यह निश्चय ही अभ्यास के कारण है। सो उसने अन्धेरे में भी धनुष से बाण चलाने का अभ्यास शुरू कर दिया। रात्रि में अर्जुन के अभ्यास के समय की धनुषटंकार को सुनकर द्रोण ने आकर अर्जुन को गले लगाया और कहा 'हे अर्जुन ! मैं ऐसा यत्न करूँगा कि संसार में तू सबसे बढ़कर धनुर्धर हो सके। तेरी बराबरी का दूसरा कोई न मिले। ऐसी मेरी सत्य प्रतिज्ञा है[156]।

तो गुरु द्रोणाचार्य जी ! यह कौनसा तरीका हुआ अर्जुन को अद्वितीय धनुर्धारी

चाऽभवत्। तं दृष्ट्वा नित्यमुद्युक्तमिष्वस्त्रं प्रति फाल्गुनम्। आहूय वचनं द्रोणो रहः सूदमभाषत ॥ अन्धकारेऽर्जुनायान्नं न देयं ते कदाचन। न चाख्येयमिदं चापि मद्वाक्यं विजये त्वया ॥ ततः कदाचिद् भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने। तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो विलोपितः। भुंक्त एव तु कौन्तेयो नास्यादन्यत्र वर्तते। हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहणकारणात्। तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावपि स पाण्डवः। योग्यां चक्रे महाबाहुर्धनुषा पाण्डुनन्दनः ॥ तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारत। उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येदमब्रवीत्। द्रोण उवाच – प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धरः। त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद् ब्रवीमि ते' (महाभा.आदि. १३१.२०–२७)

157 'ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः। एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम

> **"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.**

बनाने का ? दूसरे का अंगूठा कटवा कर अपने चहेते को अनुपम बनाने का? दूसरे की क्रूरतापूर्वक अधर्म से हानि करके अपनी प्रतिज्ञा निभाने का ?

'द्रोणाचार्य की शस्त्रास्त्र-शिक्षण-संबंधी ख्याति सुनकर निषादराज हिरण्यधनुः का पुत्र एकलव्य भी द्रोण के पास आ गया। किन्तु द्रोण ने 'यह तो निषाद का पुत्र है, ऐसा विचार कर, उसे शिक्षा देने से मना कर दिया। तब एकलव्य ने द्रोण को प्रणाम करके वन में जाकर द्रोण को ही अपना गुरु मानते हुए, मिट्टी से द्रोण जैसा विग्रह बनाकर एक तरफ रख दिया और दत्तचित्त होकर बाण चलाने का अभ्यास करने लगा। परम श्रद्धा और मनोयोग से निरन्तर अभ्यास के कारण उसने बाणों को तरकस से खींचने, उन्हें धनुष-डोरी पर फिट करने और छोड़ने में अत्यधिक फुर्ती हासिल कर ली[157]।

'तब एक बार कौरव और पाण्डव गुरु से अनुमति लेकर आखेट के लिये रथों से वन की ओर निकल पड़े। एक अन्य मनुष्य भी उनके पीछे अपने कुत्ते के साथ जा रहा था। वह कुत्ता वन में विचरता हुआ उस ओर चला गया जहाँ एकलव्य बाण चलाने का

ह ॥ न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन् । शिष्यं धनुषि धर्मज्ञस्तेषामेवान्ववेक्षया। स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परं तपः । अरण्यमनुसम्प्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम् । तस्मिन्नाचार्यवृत्तिं च परमामास्थितस्तदा। इष्वस्त्रे योगमातस्थे परं नियममास्थितः । परया श्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च । विमोक्षादानसन्धाने लघुत्वं परमाप सः' (महा.भा.आदि. १३१.३१-३५)

158'अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाताः कदाचित् कुरुपाण्डवाः । रथैर्विनिर्ययुः सर्वे मृगयामरिमर्दन ॥ तत्रोपकरणं गृह्य नरः कश्चिद् यदृच्छया । राजन्ननुजगामैकः श्वानमादाय पाण्डवान् ॥ तेषां विचरतां तत्र तत्तत्कर्म चिकीर्षया। श्वा चरन् स वने मूढो नैषादिं प्रति जग्मिवान् ॥ स कृष्णं मलदिग्धाङ्गं कृष्णाजिन-जटाधरम् । नैषादिं श्वा समालक्ष्य भषंस्तस्थौ-तदन्तिके ॥ तदा तस्याथ भषतः शुनः सप्त शरान् मुखे । लाघवं दर्शयन्नस्त्रे मुमोच युगपद् यथा ॥ स तु श्वा शरपूर्णास्यः पाण्डवाना जगाम ह । तं दृष्ट्वा पाण्डवा वीराः परं विस्मयमागताः ॥ लाघवं शब्दवेधित्वं दृष्ट्वा तत् परमं तदा।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

अभ्यास कर रहा था। कुत्ता मृगचर्म पहने हुए काले रंग के उस जटाधारी मनुष्य को देखकर भौंकने लगा। कुत्ते को भौंकता हुआ देखकर एकलव्य ने कुत्ते के मुख में इतनी फुर्ती से सात बाण मारे, कि वे बाण बिना कुत्ते के मुख को चोट पहुँचाये उसके मुख में फिट हो गये। तब वह कुत्ता उन बाणों को मुख में लिये हुए पाण्डवों के समीप आया। उसे देखकर पाण्डव चकित हो गये। वे बाण चलाने वाले की फुर्ती और शब्दवेध कला को विचार कर लज्जित हो गये और उसकी प्रशंसा करने लगे। तब उसे ढूँढते हुए वे उस धनुर्धारी के पास पहुँचे जो निरन्तर बाण चलाने में निमग्न था। उससे पूछने पर पता चला, कि वह निषादराज हिरण्यधनुः का पुत्र एकलव्य है और द्रोणाचार्य का शिष्य है। तब वे उससे विदा लेकर द्रोणाचार्य के पास आये और वन में जो अद्भुत घटना घटी उसे बताया। अर्जुन तो एकलव्य का ही स्मरण करते हुए एकान्त में गुरु द्रोण से लाड से बोला– गुरुजी! आपने तब मुझे गले लगाकर कहा था, 'कि मेरा कोई भी शिष्य तेरे से बढ़कर नहीं होगा' तो फिर आपका वह शिष्य जो निषादराज का पुत्र है, वह मेरे से भी और संसार के सभी वीरों से भी अधिक पराक्रमी है। यह कैसे?

प्रेक्ष्य तं व्रीडिताश्चासन् प्रशशंसुश्च सर्वशः ॥ तं ततोऽन्वेषमाणास्ते वने वननिवासिनम्। ददृशुः पाण्डवा राजन्नस्यन्तमनिशं शरान्॥ न चैनमभ्यजानंस्ते तदा विकृतदर्शनम्। अथैनं परिपप्रच्छुः को भवान् कस्य वेत्युत॥ निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम्। द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम्'॥ ते तमाज्ञाय तत्त्वेन पुनरागम्य पाण्डवाः। यथावृत्तं वने सर्वं द्रोणायाचख्युरद्भुतम्॥ कौन्तेयस्त्वर्जुनो राजन्नेकलव्यमनुस्मरन्। रहो द्रोणं समासाद्य प्रणयादिदमब्रवीत् – 'तदाहं परिरभ्यैकः प्रीतिपूर्वमिदं वचः। भवतोक्तो न मे शिष्यस्त्वद्विशिष्टो भविष्यति॥ अथ कस्माद् मद्विशिष्टो लोकादपि च वीर्यवान्। अन्योऽस्ति भवतः शिष्यो निषादाधिपतेः सुतः।' मुहूर्त्तमिव तं द्रोणश्चिन्तयित्वा विनिश्चयम्। सव्यसाचिनमादाय नैषादिं प्रति जग्मिवान्॥ ददर्श मलदिग्धाङ्गं जटिलं चीरवाससम्। एकलव्यं धनुष्पाणिमस्यन्तमनिशं शरान्' (महाभा.आदि. १३१.३६–५१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

तब द्रोणाचार्य थोड़ी देर विचार कर और कुछ निश्चय करके अर्जुन को साथ लेकर निषादपुत्र की ओर गये। वहाँ उन्होंने मृगचर्म पहने, मैले-कुचेले जटाधारी एकलव्य को देखा जो निरन्तर बाण चलाने में मग्न था[158]।

एकलव्य ने द्रोणाचार्य को समीप आया देखकर सिर नवाकर प्रणाम किया और उनका यथायोग्य सत्कार करके 'मैं आपका ही शिष्य हूँ' ऐसा कहकर वह हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया। तब द्रोण एकलव्य से बोले – 'हे वीर! यदि तुम मेरे शिष्य हो, तो मेरे गुरुपने का वेतन मुझे प्रदान करो'। यह सुनकर एकलव्य प्रेम से बोला–'हे गुरुदेव! आप आज्ञा करें, मैं आपको क्या भेंट करूँ। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो गुरु को न दी जा सके।' तब द्रोण बोले –'तुम मुझे अपना दाहिना अंगूठा दे दो'। एकलव्य ने द्रोणाचार्य के उस क्रूर कठोर वचन को सुनकर अपनी प्रतिज्ञा के सत्य की रक्षा करते हुए प्रसन्नवदन और शान्तचित्त से बिना कुछ विचार किये अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर द्रोण को दे दिया[159]।

हाय! हाय!! श्री द्रोण जी! आप आचार्य थे। आचार्य तो वही कहलाता है, जो शिष्यों को सत्य, अहिंसा आदि आचार की शिक्षा दे[160]। पर आप तो स्वयं ही कदाचार

---

[159]एकलव्यस्तु तं दृष्ट्वा द्रोणमायान्तमन्तिकात्। अभिगम्योपसंगृह्य जगाम शिरसा महीम्। पूजयित्वा ततो द्रोणं विधिवत् स निषादजः। निवेद्य शिष्यमात्मानं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः। ततो द्रोणोऽब्रवीद् राजन्नेकलव्यमिदं वचः। यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतनं दीयतां मम॥ एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणोऽब्रवीदिदम्– 'किं प्रयच्छामि भगवन्नाज्ञापयतु मां गुरुः॥ न हि किंचिददेयं मे गुरवे ब्रह्मवित्तम–। तमब्रवीत्त्वयाऽङ्गुष्ठो दक्षिणो दीयतामिति॥ एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा वचो द्रोणस्य दारुणम्। प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् सत्ये च नियतः सदा॥ तथैव हृष्टवदनस्तथैवादीनमानसः। छित्त्वाऽविचार्य तं प्रादाद् द्रोणायाङ्गुष्ठमात्मनः॥ (महाभा.आदि. १३१.५२-५८)

[160]'आचार्यः कस्माद् – आचारं ग्राहयति...' निरुक्त (१.२.४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

पर उतर आये। आपने तो एकलव्य को अपना शिष्य बनाने से मना कर दिया था। उस भोले युवक ने फिर भी मन में आपको गुरु मानकर धनुर्विद्या का स्वयं ही अभ्यास किया था। आपका मिट्टी का विग्रह उसने जरूर बनाया था, पर धनुष-बाण का अभ्यास तो अपने परिश्रम से किया था, बिना आपके सिखाये। फिर आपको उससे वेतन मांगने का क्या अधिकार था ? आपने तो उसको एक क्षण के लिये भी कुछ भी नहीं सिखाया। फिर भी उससे मुफ्त में वेतन (=दक्षिणा) मांग ली और दक्षिणा भी ऐसी क्रूर-हिंसा वाली! पहले का इतिहास तो आपको ज्ञात ही होगा। गुरु जन दक्षिणा मांगते ही नहीं थे। शिष्यों के अत्याग्रह करने पर धन या अन्य वस्तु की दक्षिणा के लिये कहते थे। वरतन्तु ने कौत्स से धन की दक्षिणा चाही[161]। विश्वामित्र ने शिष्य गालव के आग्रह करने पर घोड़ों की दक्षिणा मांगी[162]।

पर आपने तो दक्षिणा को ही कलङ्कित कर दिया। आपने चालाकी से उसे लुञ्ज बना दिया। नाजायज वेतन के बहाने अधर्म से उसका अंगूठा कटवा दिया! जो जैसा करता है, वैसा ही उसे भरना पड़ता है। इसीलिये आपका वध भी अधर्म के आश्रय से किया गया। और इस क्रूर दक्षिणा मांगने का हेतु क्या था ? अपने प्रिय अर्जुन को संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बनाये रखना। द्रोणाचार्यजी ! कितना अनुचित था यह ढंग अपने शिष्य को अद्वितीय रूप में देखने का। चाहिये तो यह था, कि आप अर्जुन से कहते –

161

162 'असकृद् गच्छ गच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः। किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषत।...किंचिदागतसंरम्भो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम्। एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम्। अष्टौ शतानि मे देहि गच्छ गालव मा चिरम् (महाभा.उ. १०६. २५-२७)

163 रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः। गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

देखो पुत्र! तुम अच्छे भवनों में रहते हो, सुन्दर राजसी वस्त्र पहनते हो, उत्तम भोजन जीमते हो। ये सब वस्तुएँ उस एकलव्य को सुलभ नहीं है। फिर मैं सदा तुम्हें प्रयत्नपूर्वक अस्त्रविद्या का प्रशिक्षण देता हूँ। उस निषादपुत्र को सिखाने वाला कोई नहीं है। इतना सब होने पर भी, वह तुमसे अधिक निपुण धनुर्धर है, तो इसका एकमात्र कारण उसका घोर परिश्रम और लगन है। तुम भी ऐसे ही लगनपूर्वक घोर परिश्रम करो। ऐसा करने से तुम उससे भी आगे निकल सकते हो।

श्री आचार्यप्रवर! एक और उपाय था अर्जुन की ईर्ष्या को दूर करने का। वह था एकलव्य के साथ अर्जुन की मित्रता कराने का। आप एकलव्य और अर्जुन के दाहिने हाथों को परस्पर जोड़ कर कहते -'आज से तुम एकदूसरे के अभिन्न सखा हो गये हो। सगे भाईयों के समान व्यवहार करना। जब श्रीराम और सुग्रीव हाथ मिलाने से जीवन भर के सखा बन गये थे[163], तो अर्जुन और एकलव्य क्यों नहीं? यहाँ कहा जा सकता है, कि एकलव्य तो निषाद था, अतः कम संस्कार वाला था। तो क्या हुआ। संस्कार बड़ी चीज हैं। आप अच्छी शिक्षा से उसे उत्तम संस्कारवान् बना सकते थे। जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, संस्कार के कारण से ही द्विजत्व प्राप्त कराया जाता है[164]। एकलव्य में सीखने की भरपूर अदम्य लालसा थी। उसका लोकोत्तर हस्तलाघव इस बात का प्रमाण था। आचार्य जी! यदि आप एकलव्य को इस प्रकार पाण्डवों से जोड़ देते, तो धर्मात्मा पाण्डव भविष्य में अधिक शक्ति-सम्पन्न नजर आते। किन्तु आपने न तो अर्जुन को समझाया और न उनकी मित्रता कराई। बस अन्याय से उस श्रद्धालु का अंगूठा कटवा दिया। वस्तुतः अर्जुन की ईर्ष्यावृत्ति ने आपके मन में एकलव्य के प्रति द्वेष उत्पन्न कर दिया अथवा आपकी बुद्धि प्रमाद (=अनवधानता) की शिकार हो गई?

ध्रुवा ॥ एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितं। सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना' (वा.रा.कि. ५.११,१२)

164 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते'

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

और आचार्य! आपने हजारों राजकुमारों तथा अन्यों को शस्त्रास्त्र विद्या सिखाई थी। कौरवों-पाण्डवों को एवं अन्यों को भी। क्या किसी अन्य एक से भी आपने वेतन रूप में दक्षिण अँगुष्ठ मांगा था? नहीं न! तो हुआ था न यह भारी अत्याचार, मात्र एकलव्य से अँगुष्ठ माँगने का! महाअपराध!!

द्रोणाचार्य? [२]

दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में पाण्डवों को जलाने की योजना और द्रोण

क्यों आचार्य जी ! जब दुर्योधन ने पिता धृतराष्ट्र को बहकाकर, पाण्डवों को वारणावत में लाक्षागृह में जला मारने का षड्यन्त्र रचा, तब आपको उसकी भनक नहीं लगी ? जब विदुर जी दुर्योधन की कुचाल को भांप गये, तब आप भी उस दुर्नीति को समझ सकते थे । अथवा अपने पुत्र अश्वत्थामा के कारण दुर्योधन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते थे। दुर्योधन आपके व्यवहार से समझ गया था कि जिधर अश्वत्थामा होगा उधर ही द्रोण होंगे[165]। पाण्डवों से तथा विशेष अर्जुन से प्रेम रखने वाले आप से तो विदुर ही अच्छे रहे, जो दुर्योधन की दुर्नीति को भांप कर पाण्डवों को जल मरने से सचेत करने में और वहाँ से बच निकलने की सहायता करने में सफल रहे[166]।

चलो, आपको लाक्षागृह-षड्यन्त्र की भनक नहीं लगी। पर यह तो आपको ज्ञात ही हो गया था, कि धृतराष्ट्र ने रमणीयतम नगर वारणावत में जाने के लिये पाण्डवों

165'मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः ।
यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः' (महाभा.आदि. १४१.२०)

166द्रष्टव्य – पृ. ९,१० और टिप्पणियाँ ।

167धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित् कुशलमन्त्रिणः । कथयाञ्चक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥ अयं समाजः सुमहान् रमणीयतमो भुवि । उपस्थितः पशुपतेर्नगरे

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

को ही तैयार किया। आपने और भीष्म आदि ने क्यों विचार नहीं किया, कि वारणावत की रमणीयता और वहाँ के समाज (=मेले) को देखने के लिये केवल पाण्डवों को ही क्यों फुसलाया गया है, कौरवों को क्यों नहीं ? धृतराष्ट्र के आदेश से उसके कुछ चालाक मन्त्रियों ने पाण्डवों के सामने वारणावत नगर की भव्यता और रमणीयता का तथा वहाँ लग रहे अनुपम मेले (=समाज) का बखान करना शुरू किया, जिससे पाण्डवों में उसको देखने का विचार हुआ। तब धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से कहा – हे प्यारो ! यदि अति सुन्दर वारणावत के उत्सव को देखने का तुम्हारा मन करे, तो अपनी माता सहित वहाँ जाओ और देवताओं के समान वहाँ विहार करो[167]। इस बात पर चिन्तन करने से आप लोगों को 'दाल में कुछ काला' दिखाई देने लगता। यह भी, आपको स्मरण होगा, कि वारणावत को प्रस्थान करते समय आप लोगों से विदा लेते हुए, युधिष्ठिर का चेहरा दीनता से भरा हुआ था और उसने धीरे से कहा था, कि हम <u>धृतराष्ट्र की आज्ञा से वारणावत जा रहे हैं</u>[168]।

फिर आपकी स्मृति में यह बात भी रही होगी, कि धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वारणावत भेजा था कुछ समय के लिये–थोड़े समय के लिये और कहा था कि वहाँ आनन्द मना

वारणावते ।। सर्वरत्न-समाकीर्णे पुंसां देशे मनोरमे ।। इत्येवं धृतराष्ट्रस्य वचनाच्चक्रिरे कथाः ।।...। रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम्।। ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते । सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथामराः।। (महाभा.आदि. १४२. २–४,७,८)

168 'ततो भीष्मं शान्तनवं विदुरं च महामतिम् । द्रोणं च बाह्लिकं चैव सोमदत्तं च कौरवम् ।।...। युधिष्ठिरः <u>शनैर्दीन</u> उवाचेदं वचस्तदा। रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते। सगणास्तत्र यास्यामो <u>धृतराष्ट्रस्य शासनात्</u>' (महाभा.आदि. १४२.१४,१५)

169 'कंचित् कालं विहृत्यैवमनुभूय परां मुदम् ।
इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ' (महाभा.आदि. १४२.१०)

कर वापिस सुखपूर्वक हस्तिनापुर लौट आना[169]। तो आचार्य जी! पाण्डवों को वारणावत गये पूरा वर्ष बीत गया[170]। पर आपको इतने लम्बे समय में कभी अपने प्रिय पाण्डवों के विषय में—अपने लाड़ले अर्जुन के विषय में यह जानने की इच्छा नहीं हुई, कि वे अब तक वारणावत से वापिस क्यों नहीं आये हैं? यदि आप इस बात की पड़ताल करते और स्वयं भी वारणावत जाते, तो दुर्योधन के षड्यन्त्र का पता चल जाता और आप अधर्मारूढ़ दुर्मति दुर्योधन को सीधे मार्ग पर लाने का प्रयास करते या स्वयं के, अधर्मिसङ्ग से छुटकारा पाने पर विचार करते।

द्रोणाचार्य ? [३]

कपट द्यूत-सभा और द्रोणाचार्य

द्रोणाचार्य जी! आप तो महान् वेदवेत्ता और वेदाङ्गों के भी ज्ञाता थे, साथ ही बड़े भारी तपस्वी भी थे[171]। तो आपने ऋग्वेद के दशम मण्डल के 34वें सूक्त का तो मनन किया ही होगा, जिसमें अक्षक्रीडा (=द्यूत) की बुराई का और जुआरी की दुर्दशा का सुन्दर चित्रण है तथा आदेश है, कि मनुष्य भले ही खेती करके अपना निर्वाह कर ले, पर जुआ कभी न खेले[172]। इतना ज्ञान होने पर भी आपने वह कपट-द्यूत-क्रीड़ा क्यों होने दी ? जब हजारों खम्भों वाली, सौ द्वारों वाली और कोस भर विस्तारवाली सभा का

---

170 'तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान्। विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः' (महाभा.आदि. १४७.१)

171 'ततः समभवद् द्रोणः...। अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः। (महाभा. आदि. १२९.३८)

172 'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व' तथा पृष्ठ सं. १४ की टि.२०

173 'सहस्रस्तम्भां हेमवैदूर्यचित्रां शतद्वारां तोरणस्फाटिकाख्याम्। सभामग्र्यां क्रोशमात्रायतां मे तद्विस्तारमाशु कुर्वन्तु युक्ताः' (महाभा.सभा. ५६.१८)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

(=सभा-मण्डप का) निर्माण हो रहा था[173]। उसका पता तो आपको भी लगा ही होगा। आपने उस दुरोदर-मण्डप को बनवाने से रोका क्यों नहीं ? हो सकता है आपके लक्ष्य में उसका निर्माण न रहा हो। किन्तु उस द्यूतसभा में तो आप भी उपस्थित थे। भले ही अनमने भाव से[174]। आपको यदि कपटद्यूत-क्रीडा पसन्द नहीं थी,[175] तो आपने उसका विरोध क्यों नहीं किया? आप तो आचार्य थे। भीष्म पितामह भी आपका सत्कार करते थे, उन्होंने ही आपको कौरवों और पाण्डवों का गुरु बनाया था[176]। यदि आप डटकर द्यूतक्रीड़ा का विरोध करते, तो भीष्म आदि भी आपके साथ होते। इस प्रकार न कपट जुआ खेला जाता और न पाण्डवों का राज्यहरण होता और फलतः न महाविनाशक महाभारत-युद्ध होता। आप तो तेजस्वी ब्राह्मण थे। आपका वह ब्रह्मतेज कहाँ चला गया था उस समय? आप से तो सामान्य परिस्थिति वाले विदुरजी ही अच्छे रहे, जिन्होंने इस द्यूतक्रीडा का हर कदम पर विरोध किया[177]।

---

[174]उपोह्यमाने द्यूते तु राजानः सर्व एव ते। धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्ते सभां ततः। भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विदुरश्च महामतिः। नातिप्रीतेन मनसा तेऽन्ववर्त्तन्त भारत।...। सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे भास्वरमूर्त्तयः' (महाभा.सभा. ६०.१,२,५)

[175]'नैतद् रोचयते भीष्मो न द्रोणो विदुरो न च।
गान्धारी नेच्छति द्यूतं तत्र मोहात् प्रवर्त्तितम् (महाभा.वन. ९.२)

[176]ततः सम्पूजितो द्रोणो भीष्मेण द्विपदां वरः। विशश्राम महातेजाः पूजितः कुरुवेश्मनि॥ विश्रान्तेऽथ गुरौ तस्मिन् पौत्रानादाय कौरवान्। शिष्यत्वेन ददौ भीष्मो वसूनि विविधानि च। गृहं च सुपरिच्छन्नं धनधान्यसमाकुलम्। (महाभा. आदि. १३१.१-३)

[177]द्रष्टव्य – पृ. १४ तथा उसकी टिप्पणियाँ तथा बाद के पृष्ठ।

[178]यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः।
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत् कुलम्। (मनु. ३.५६,५७)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

द्रोणाचार्य ? [४]

भरी सभा में रजस्वला द्रौपदी को लाने का दुर्योधन का हठ और द्रोण

क्यों आचार्य जी ! कपटद्यूत द्वारा युधिष्ठिर के पराजित होने पर जब दुर्योधन भरी सभा में एकवस्त्रा द्रौपदी को मंगाने पर उतारू था, तो आपने इस अन्याय का विरोध क्यों नहीं किया । क्या आपने स्मृति में पढ़ा नहीं था, कि जहाँ स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वहाँ की सब क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जहाँ की स्त्रियाँ शोकाकुल रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है[178]।

द्रोणाचार्य ? [५]

द्यूतसभा में द्रौपदी का घोर अपमान और द्रोण

द्रौपदी को सभा में लाने की आज्ञा जब विदुरजी ने नहीं मानी और न ही प्रातिकामी ही उसके लिये तैयार हुआ, तब दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन द्रौपदी को केशों से पकड़कर जबर्दस्ती घसीटकर सभा में लाया और कर्ण आदि के साथ उसे 'दासी' कहकर लज्जित किया।[179] क्यों आचार्य जी! आपने कैसे सहन कर लिया। एक सन्नारी के भरी सभा में अपमान को ? फिर रोती-बिलखती द्रौपदी अपने ऊपर हो रहे अत्याचार

---

[179] 'ततो जवेनाभि ससार रोषाद् दुःशासनस्तामभिगर्जमानः । दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु दुःशासनो नाथवतीमनाथवच्चकर्ष वायुः कदलीमिवार्ताम्॥ ...। 'आधूय वेगेन विसञ्ज्ञकल्पामुवाच दासीति हसन् सशब्दम् । दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णामवेक्षमाणां कृपणान् पतींस्तान् । कर्णस्तु तद्वाक्यमतीव हृष्टः सम्पूजयामास हसन् सशब्दम् (महाभा.सभा. ६७.२९,३१,४४.४५)

[180] द्रष्टव्य – पृ. ३० तथा... टिप्पणी ।

के औचित्य या अनौचित्य के विषय में पूछ रही थी। क्या उस समय धर्मधुरन्धरों के समान आपकी मति या वाणी को भी लकवा मार गया था? जो आप लोगों के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। आपसे तो दुर्योधन का भाई विकर्ण ही अच्छा रहा, जिसने द्रौपदी के साथ हो रहे अत्याचार की साहस के साथ निडरतापूर्वक भर्त्सना की।[180] और तब तो निर्लज्जता और अत्याचार की पराकाष्ठा ही हो गई, जब कि कर्ण के उकसाने से दुःशासन ऋतुमती महारानी द्रौपदी के शरीर पर वर्त्तमान एक मात्र वस्त्र को भी जबर्दस्ती खींचकर उतारने लगा तब द्रौपदी नीचे गिर पड़ी और विलाप करने लगी[181]।

क्यों सहन कर लिया? आपने निर्लज्ज अतिनीच आचरण को ? क्यों नहीं झपट कर दुःशासन के हाथ से द्रौपदी को छुड़वाया? कहाँ गया था आपका पौरुष? आप कहेंगे मैं तो वृद्ध था और वह दुःशासन युवक था । सो यह बात भी ठीक नहीं है। आपने बाद में अपने अधर्मी अन्नदाता (?) के लिये लड़ते हुए युद्ध में हजारों को मारा वहीं धृष्टद्युम्न के युवा पुत्रों क्षत्रधर्मा, क्षत्रवर्मा; विराटपुत्र शङ्ख आदि अनेक युवाओं के – शस्त्रधारी युवकों के आपने गले काट डाले[182]। तो इस समय निहत्थे दुःशासन को नीचकर्म से

---

[181]कर्ण उवाच – 'दुःशासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः । पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर ॥... ततो दुःशासनो राजन् द्रौपद्या वसनं बलात्। सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ (महाभा.सभा. ६८.३८,४०) 'सा तेन च समाधूता दुःखेन च तपस्विनी। पतिता विललापेदं सभायामतथोचिता' (महाभा. ६९.३)

[182]आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् । स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् (महाभा. द्रो. १२५.६६) 'तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां (=क्षत्रंजयक्षत्रदेव-क्षत्रवर्मणाम्) निशितैः शरैः। त्रिभिर्द्रोणोऽहरत् प्राणान् ते हता न्यपतन् भुवि' (महाभा. द्रो. १८६.३३,३४) भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम् । चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वर। स तस्य हृदयं भित्त्वा पीत्वा शोणितमाहवे । जगाम धरणीं बाणः... (महाभा.भी. ८२.२१,२२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

रोक नहीं सकते थे क्या ? आप आकाओं के लिये युद्ध करते समय ८५ वर्ष के होते हुए भी १६ वर्ष के युवा के समान विचरते थे[183]।

द्यूतसभा-समय में तो आप ७२ वर्ष के ही थे। युद्ध-समय की अपेक्षा अधिक बलवान् थे। इतने शूरवीर-धुरन्धर होते हुए भी आप उस समय चुप्पी साधे रहे! आश्चर्य!! क्या आप अन्य उपस्थित राजाओं के समान दुर्योधन से डरे हुए थे[184]। अथवा यह दुर्व्यवहार परायी स्त्री=पराये परिवार की बहू के साथ हो रहा था न, इसलिये आप उस अन्याय की अनदेखी कर रहे थे? यदि यही घोर अपमान आपकी पुत्रवधू=अश्वत्थामा की पत्नी के साथ होता तो क्या आप सहन कर लेते? नहीं । तब तो कालमूर्त्ति बनकर उस अत्याचारी के हाथ काट देते ।

द्रोणाचार्य ? [६]

कपट से पराजित पाण्डवों का वनवासार्थ प्रस्थान और द्रोणाचार्य

युधिष्ठिर की निर्बुद्धितावश दुबारा सशर्त खेले गये जुए में भी कपट-द्यूत द्वारा युधिष्ठिर के पराजित होने पर द्रौपदी-सहित पाँचों पाण्डव मृगचर्म धारण कर वन जाने लगे तब युधिष्ठिर ने जिन लोगों से विदा मांगी, उनमें आप भी थे। तब आप भी लज्जित तो हुए, किन्तु आपके मुख से उनके साथ हुए अन्याय के विषय में एक भी शब्द नहीं निकला और न उन्हें सान्त्वना दी। आप लोगों से तो सामान्य नागरिक अच्छे रहे,

---

183 आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत्' (महाभा.द्रो. १२५.७३)

184 'तथा तु दृष्ट्वा बहु तत्र देवीं रोरूयमाणां कुररीमिवार्ताम् । नोचुर्वचः साध्वथवाप्यसाधु महीक्षितो धार्तराष्ट्रस्य भीताः' (महाभा. सभा. ७०.१)

185 द्रष्टव्य - पृ. ३४,३५ और उनकी टिप्पणियाँ ।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

जिन्होंने उस समय न केवल पाण्डवों के दुःख पर विलाप किया अपितु अन्याय के मूकदर्शक बने आप सब बुजुर्गों को धिक्कारा और अन्यायी कौरवों के सङ्ग को छोड़कर पाण्डवों के साथ वन में जाने का मन बनाया[185]। अन्याय के शिकार पाण्डव तो वन में भटकने, कन्दमूल आदि से गुजारा करने और तापस जीवन जीने को जा रहे थे। पर आपको उत्तम-भवन-निवास और स्वादिष्ठ भोजन का आकर्षण पाण्डवों के प्रति सहानुभूति के दो शब्द भी निकालने से रोक रहा था !!

द्रोणाचार्य ? [७]

दुर्योधन-दल द्वारा विराट-गोहरण और द्रोणाचार्य

पाण्डवों ने बारह वर्ष जंगल की खाक छानी और विराटराज के यहाँ नाना अक्षत्रियोचित कर्म करते हुए एक वर्ष का दुस्साध्य अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष भी बिता दिया। तब त्रिगर्त्त देश के राजा सुशर्मा द्वारा उकसाने से गौ आदि सम्पत्ति के लोभी दुर्योधन ने विराटराज की एक लाख गौओं के हरण करने हेतु सेना-सहित विराट के मत्स्य राज्य पर आक्रमण कर दिया और विराट के घोषों (=गोपालक-ग्रामों) को तहस-नहस करके ६० हजार गौओं को अगुआ करके ले चले। हे द्रोणाचार्य जी! आप भी उस लुटेरे दुर्योधन-दल में सम्मिलित थे[186]। आचार्य जी! आपने तो कौरव शिष्यों को भी अध्यापन काल में अहिंसा-सत्य-अस्तेय की शिक्षा दी होगी। चेला स्तेय (=चोरी-डाका) करने चला तो आप गुरु भी उसके साथ हो लिये ! आपके अपने कौरव-पाण्डव शिष्यों की विद्या-समाप्ति के अवसर पर समावर्त्तन के समय आपने उन्हें भावी जीवन के

[186] दुर्योधनः सामात्यो विराटमुपयादथ। भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित्।...।एते मत्स्यानुपागम्य विराटस्य महीपतेः। घोषान् विद्राव्य तरसा गोधनं जहुरोजसा । षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति स्म' (महाभा.वि. ३५.१-५)

[187] वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति – सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

लिये अनुशासन दिया ही होगा कि—सत्य के विपरीत आचरण न करना, धर्म के विरुद्ध आचरण न करना, किसी के कुशलक्षेम को मत छीनना तथा श्रद्धा से अश्रद्धा से, सम्पन्नता हो .. असम्पन्नता हो, तो भी हर अवस्था में तुम दान देने से हाथ मत खींचना आदि[187]। तो आचार्य देव! आपके ये कौरव चेले तो असत्य के मार्ग पर आरूढ़ थे, जिस विराट राज ने कौरवों का कुछ नहीं बिगाड़ा; उसकी गौओं के अपहरण रूप अधर्म का काम कर रहे थे, उन के कुशल-क्षेम के आधार गोधन को भगा ले जा रहे थे। ऐसे लोगों के साथ ऐसे लोभी, हिंस्रवृत्ति वाले और अविद्याग्रस्त दुर्योधन-दल के साथ आप भी कुकृत्य करने गये! कुछ तो विचार करते। प्रतीत होता है, आपकी मति में उस समय प्रमाद (=अनवधानता) ने कब्जा कर लिया था। दुष्टों के सङ्ग से सज्जनों की मति में भी विकार आ जाता है। अतः भीष्म पितामह के सदृश आपके विषय में भी यह लोकप्रवाद क्यों अनुचित लगे—'असतां सङ्गदोषेण यान्ति सन्तोऽपि विक्रियाम्। दुर्योधनस्य सङ्गेन द्रोणोऽपि गोहृतौ गतः'।

आपको चाहिये तो यह था कि आप गोहरण की योजना का जोरदार विरोध करते और विरोध करने पर दुर्योधन न मानता तो आप उस डाकाकर्म में सम्मिलित न होते। पर सम्भवतः आपको अपने योगक्षेम के—भोजनाच्छादन-निवास के बन्द हो जाने का भय था! हाय री दीनता!!

द्रोणाचार्य ? [८]

शान्तिदूत कृष्ण के प्रस्ताव का द्रोण द्वारा समर्थन और दुर्योधन का उत्तर

धर्म पर दृढ़ पाण्डवों ने बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास को

प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्।... (तै.उ.शी. ११ अनु.)

188 द्रष्टव्य – पृ. ४१,४२ तथा टिप्पणी।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

जब पूरा कर लिया, तब दुर्योधन को चाहिये था, कि वह शर्त के अनुसार पाण्डवों को उनका राज्य और सम्पत्ति सम्मानपूर्वक लौटा दे । पर छलकपट द्वारा मुफ्त में पाई अकूत धन सम्पदा को कौन देता है । विशेषकर दुर्योधन जैसा ईर्ष्यालु व्यक्ति। जिसने राजसूय-यज्ञ के अवसर पर पाण्डवों द्वारा स्व-पराक्रम से उपार्जित और राजाओं द्वारा भेंट की गई अनगिनत रत्नराशि को देखकर ईर्ष्या से महासन्तप्त होकर अपने मामा कपटी शकुनि के द्वारा छलकपट भरे जुए से वह महालक्ष्मी हथियाई हो[188]।

दुर्योधन की स्वतः पाण्डवों की राज्यलक्ष्मी न लौटाने की भावना को जानकर जब श्रीकृष्ण सन्धि का शान्ति-प्रस्ताव लेकर कौरव-सभा में गये और दुर्योधन को अपने प्रभावशाली उद्‌बोधन से समझाया । तब आचार्य जी ! आपने भी क्रोध से ग्रस्त और फुंफकारते हुए दुर्योधन से कहा था – 'हे प्रिय तात! श्रीकृष्ण ने तुम्हें धर्म और अर्थ प्राप्त कराने वाली बात कही है । और भीष्म भी वही बात कह रहे हैं । उसे तुम मान लो। ये दोनों ज्ञानी, बुद्धिशाली, मनस्वी और बहुत शास्त्रों के ज्ञाता हैं । ये जो कह रहे हैं, वह हित के लिये है । अपनी बुद्धि की मूढ़ता के कारण तुम श्रीकृष्ण का अपमान न करो'। ये जो लोग तुम्हें उल्टे मार्ग पर चलने को उकसा रहे हैं, उनका यह कर्म उचित नहीं है । ये समय आने पर शत्रुता का पाश पराये गले पर थोप देंगे। तुम समस्त प्रजाओं को, पुत्रों

---

[189]अथ द्रोणोऽब्रवीत्तत्र दुर्योधनमिदं वचः । अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनःपुनः ॥ धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः। तथा भीष्मः शान्तनवस्तज्जुषस्व नराधिप ॥ प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ । ऊचतुस्त्वां हितं वाक्यं तज्जुषस्व नराधिप । अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः । माधवं बुद्धिमोहेन मावमंस्थाः परन्तप॥ ये त्वां प्रोत्साहयन्त्येते नैते कृत्याय कर्हिचित् । वैरं परेषां ग्रीवायां प्रतिमोक्ष्यन्ति संयुगे ॥ मा जीघनः प्रजाः सर्वाः पुत्रान् भ्रातॄंस्तथैव च। वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्ध्यजेयानलं हि तान् ॥ एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः। यदि नादास्यसे तात पश्चात् तप्स्यसि भारत' (महाभा.उ. १२५.९-१५)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

को और भाईयों को मत मरवाओ। जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों, उन्हें तुम अजेय ही समझो। श्रीकृष्ण और भीष्म का जो मत है, वह सत्य है। यदि तुम इसे नहीं स्वीकारोगे तो पीछे पश्चात्ताप करोगे[189]।

तदनन्तर विदुर के और धृतराष्ट्र के द्वारा भी समझाने पर जब दुर्योधन नहीं माना, तो पुनः आपने और भीष्म ने, उन सबके अनुशासन का–उद्बोधनं का तिरस्कार करने वाले दुर्योधन को समझाया[190]।

पर आचार्य जी ! वह दुर्मति दुर्योधन कहाँ माना। वह अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। टस से मस नहीं हुआ। बोला – हे कृष्ण ! आप, विदुर, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह आदि सब मेरी ही निन्दा कर रहे हैं। मैंने खूब विचारकर देख लिया है, मेरा लेशमात्र भी कोई अपराध नहीं है। आप और राजा लोग मुझसे द्वेष करने पर तुले हैं।...। मैं तो सुई की नोक की बराबर भी भूमि पाण्डवों को नहीं दूँगा[191]।

आचार्यदेव ! देख लिया अपने चेले का मानस और सुन लिये उसके सद्वचन !! उसके बाद श्रीकृष्ण ने जल्दी-जल्दी में दुर्योधन के कुछ अपराध गिनाये – 'हे मूढ़

---

[190]महाभा.उ. १२६.१-१८

[191]भवान् क्षत्ता च राजा वाप्याचार्यो वा पितामहः। मामेव परिगर्हन्ते नान्यं कञ्चन पार्थिवम्। न चाहं लक्षये कंचिद् व्यभिचारमिहात्मनः। अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः॥ न चाहं कं चिदत्यर्थमपराधमरिन्दम। विचिन्तयन् प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव'।...। 'यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति' (महाभा.उ. १२७.४-६,२५)

[192]ततः प्रशम्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः। दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि॥ यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद् व्यतिक्रमः। पाण्डवेष्विति तत्सर्वं निबोधत नराधिपाः॥ श्रिया सन्तप्यमानेन पाण्डवानां महात्मनाम्। त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत॥ अक्षद्यूतं महाप्राज्ञ सतां बुद्धिविनाशनम्। असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

दुर्योधन ! तुम जो यह कह रहे हो, कि 'पाण्डवों का मैंने कभी कुछ नहीं बिगाड़ा है' सो तुम और सब राजा लोग सुनें। महात्मा पाण्डवों की राज्य लक्ष्मी को देखकर ईर्ष्यावश सन्तप्त होकर तुमने और शकुनि ने कपटद्यूत का षड्यन्त्र रचा। जुआ तो सज्जनों की भी मति को भ्रष्ट कर देता है। उससे दुष्टता और फूट की वृद्धि होती है। सो यह घोर कामज व्यसन रूप द्यूत तुमने रचा। फिर उसमें सदाचार को धत्ता बताते हुए तुमने अपने पापी साथियों के साथ; कुलीन, सुशीला और पाण्डवों को प्राणों से भी प्रिय महाराणी द्रौपदी का सभा में सबके सामने घोर अपमान किया और तुमने जो-जो उसे कुवाच्य कहे उसे समस्त कुरुवंशी जानते हैं और वन को प्रस्थान करते समय पाण्डवों पर दुःशासन और तूने क्रूर और अनार्यों वाले वाग्बाण छोड़े। माता सहित पाण्डवों को वारणावत में जला मारने का तूने पूरा प्रयत्न किया। पर वह तुम्हारा कुकृत्य किसी तरह पूरा नहीं हो सका। तदनन्तर तुम्हारे कारण ही पाण्डव चिरकाल तक एकचक्रा नगरी में छिपकर ब्राह्मण के घर में रहे। विष के द्वारा, सर्पबन्ध के द्वारा और अन्य सब उपायों से पाण्डवों के विनाश का प्रयत्न किया, पर तुम्हारा मनोरथ सफल नहीं हुआ। इस प्रकार के कुबुद्धि वाले तुम पाण्डवों का सदा अशुभ ही करते रहे। फिर कैसे तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। सो तुम

व्यसनानि च ॥ तदिदं व्यसनं घोरं त्वया द्यूतमुखं कृतम्। असमीक्ष्य सदाचारान् सार्धं पापानुबन्धनैः।... आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया॥ कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी। महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया॥ जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि। कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम्॥ सह मात्रा प्रदग्धुं तान् बालकान् वारणावते। आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं च तत्तव॥ ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा। मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने॥ विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया। सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं च तत्तव॥ एवं बुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान्। कथं ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु॥ यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि। तच्च पाप! प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः॥ कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत्। मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नद्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

पाण्डवों को उनका अपना पैतृक राज्य भाग मांगने पर भी नहीं देना चाहते हो, तो हे पापी! तुम मारे जाने पर उसे दोगे। पाण्डवों के प्रति क्रूर के समान कुकृत्य करके अब झूठ बोल रहे हो। माता, पिता, भीष्म, द्रोण और विदुर के द्वारा बार-बार शान्ति के लिये समझाये जाने पर भी तुम शान्त नहीं हो रहे हो[192]।

तत्पश्चात् धृतराष्ट्र के द्वारा बुलाये जाने पर माता गान्धारी ने इस दुरवस्था के लिये धृतराष्ट्र को उलाहना[193] देते हुए दुर्योधन को समझाया, पर वह सबकी बातों का उपेक्षापूर्वक अनादर करता रहा और फिर अपनी तिकड़ी के साथ परामर्श करके शान्तिदूत श्रीकृष्ण को ही बन्दी बनाने पर उतारू हो गया[194]।

हे द्रोणाचार्य जी ! कहाँ माना वह दुर्हठी मतिमन्द दुर्योधन। आपके पढ़ाये का-सिखाये का क्या मान रखा उसने ? शान्ति-प्रस्ताव-सभा के अन्त में फिर आपने कुछ दोष गिनाये, जिन्हें आपने दुर्योधन में देखा – 'मित्रद्रोही, दुष्ट भाव वाला, नास्तिक, कुटिल, धूर्त्त मनुष्य सज्जनों में सम्मान नहीं पाता, जैसे यज्ञ में आया हुआ मूर्ख। उसे पाप कर्मों से हटाने का प्रयास किया जाता है, तथापि वह पापात्मा पाप ही करना चाहता है। ये दोष उसका अहित ही करते हैं। तुम्हें भीष्म ने, मैंने, विदुर ने और श्रीकृष्ण ने समझाया, पर तुम उस कल्याणकारी उद्बोधन को मानते ही नहीं हो[195]। सब बुजुर्गों

विप्रतिपद्यसे॥ मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च। शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव' (महाभा.उ. १२८.१-१९)

[193]द्रष्टव्य – पृ. ४८

[194]द्रष्टव्य – पृ. ५२

[195]मित्रध्रुग् दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः। न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः॥...। अहितत्वाय कल्पन्ते दोषा भरतसत्तम॥ त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च। वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाभिमन्यसे॥ (महाभा.उ. १३९.७-१०)

की सर्वहितकारी सीख सर्वथा नकारने वाले, सर्वनाश पर उतारू, झूठे और लोभी दुर्योधन-मण्डल में, फिर भी आप मग्न रहे । हाय री कुशल-क्षेम की चिन्ता भरी लाचारी !!

द्रोणाचार्य ? [९]

युद्धभूमि में युधिष्ठिर से द्रोणाचार्य का क्लीबवचन

कपटद्यूत में हारे हुए पाण्डवों ने शर्त्त के अनुसार अज्ञातवास समेत तेरह वर्ष वनवास के जब पूरे कर लिये और विराटराज के गौओं के हरण के प्रसंग में हुए अर्जुन के साथ कौरव-सेना के युद्ध के समय जब भीष्म पितामह ने द्रोण और दुर्योधन आदि के सामने कालगणना करके स्पष्ट रूप से घोषित किया था कि पाण्डवों के अज्ञातवास-सहित तेरह वर्षों से पाँच महीने और बारह दिन अधिक हो गये हैं[196] । तब भी दुर्योधन ने शर्त्त के अनुसार स्वतः पाण्डवों को उनकी राज्यलक्ष्मी नहीं लौटाई । उसकी पाप-भावना को जानकर पाण्डवों ने समझ लिया कि युद्ध के बिना हमें अपना भाग प्राप्त नहीं हो सकता । तदर्थ विराटनगर में पाण्डवों और उनके हितैषियों की सभा जुटी । जिसमें युद्ध अथवा समन्वय के-सन्धि के विचार प्रकट किये गये ।

शान्तिवार्त्ता के लिये श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये। कौरव-सभा में उन्होंने शर्त्तानुसार शान्तिपूर्वक पाण्डवों का भाग लौटा देने का प्रस्ताव रखा । जिसका भीष्म, द्रोण, विदुर आदि ने पूरा समर्थन किया । पिता धृतराष्ट्र और माता गान्धारी ने भी भरसक समझाया। सब अपने परायों की हरचंद कोशिश के बाद भी दुर्योधन माना नहीं ।

---

196 'एषामभ्यधिका मासा : पञ्च च द्वादश क्षपाः । त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः। सर्वं यथावच्चरितं यद् यदेभिः प्रतिश्रुतम्' (महाभा. वि. ५२.४,५)

197 पितामह! विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम् ! नाहं भवति न द्रोणे कृपे न च

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

द्रोणाचार्य-प्रकरण

तब युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। कौरवों के लम्बे-चौड़े पारिवारिक सम्बन्धों के कारण, तेरह वर्षों के अन्तराल में अन्य राजाओं के साथ सधाये सम्बन्धों के कारण और उनकी समस्त राज्य पर भी लम्बे समय से गहरी पकड़ के कारण कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना जुटी। पाण्डव तेरह-चौदह वर्ष पहले ही राज्य से वंचित हो गये थे। बारह वर्ष वनों में जहाँ-तहाँ भटकते रहे। राजाओं से प्रत्यक्ष और प्रभावी सम्पर्क उस अन्तराल में सम्भव ही नहीं था। अज्ञातवास के समय में तो किसी राजा से सम्पर्क का प्रश्न ही नहीं था। तो भी कुछ सम्बन्धी राजाओं के कारण और कुछ कृतज्ञ राजाओं के कारण सात अक्षौहिणी सेना का जुगाड़ पाण्डवों ने भी कर लिया।

दुर्योधन को भारी मिथ्याभिमान था कि हम पाण्डवों को युद्ध में मार गिरायेंगे। 'हे पितामह! आप 'पाण्डव जीतेंगे' ऐसा क्यों कहते हैं। मैं युद्ध की भेरी आप, द्रोण, कृप या बाह्लिक के या अन्य राजाओं के सहारे नहीं बजा रहा। मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, ये हम तीन ही पाँच पाण्डवों को मार गिरायेंगे[197]। उसने अर्जुन के वध के लिये कर्ण को पर्याप्त समझा था। भीम के वध के लिये स्वयं को तैयार कर रखा था। क्योंकिं दुर्योधन ने एक लोहे का भीम बनवाया और तेरह वर्ष तक वह उस पर गदा प्रहार का अभ्यास करता रहा[198]। शेष तीन पाण्डवों की काट वह दुःशासन को मान बैठा था।

तब दुर्योधन का अभिमान और विजय की निश्चितता आकाश को छूने लगी,

बाह्लिके ॥ अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे। अहं वैकर्त्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ पाण्डवान् समरे पञ्च हनिष्यामः शितैः शरैः' (महाभा.उ. ६३.४-६)

[198]एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश।
आयसे पुरुषे राजन् भीमसेन- जिघांसया ॥ (महाभा.शल्य. ३३.४,५)

[199]भीष्म उवाच – 'हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम्।...। मुञ्चेयं यदि वास्त्राणि महान्ति समरे स्थितः। शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत॥ द्रोण उवाच – यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम। एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

जब भीष्म पितामह ने एक मास में पाण्डव सेना का संहार करने की अपनी शक्ति बताई, द्रोणाचार्य ने भी एक मास का समय बताया, कृपाचार्य ने दो महीनों में पाण्डव सेना का सफाया करने का अपना सामर्थ्य बताया, अश्वत्थामा ने दस दिनों में और कर्ण ने तो पाँच दिनों में ही पाण्डव सेना का काम तमाम करने की प्रतिज्ञा करी[199]।

परिणामतः दोनों पक्षों की अठारह अक्षौहिणी सेनाओं के लाखों वीर एक दूसरे का गला काटकर विजय पाने के लिये कुरुक्षेत्र के विशाल मैदान में आ डटे। एक ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना और दूसरी ओर सात अक्षौहिणी। कौरव-सेना का मुख पश्चिम की ओर था और पाण्डव-सेना का मुख पूर्व की ओर था[200]।

दोनों ओर की सेनाओं को तैयार देखकर युधिष्ठिर अपने कवच और आयुधों को रथ में छोड़कर पहले पितामह भीष्म को प्रणाम करने और उनसे आशीर्वाद लेने गये[201]। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर आपके पास आये प्रणाम करने और आशीर्वाद पाने। तब आपने भी भीष्म पितामह के समान कहा – 'हे युधिष्ठिर! मनुष्य अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है। यह सत्य है। मैं अर्थ (=धन-सुविधादि) के कारण कौरवों के साथ बंधा हुआ हूँ। इसलिये मैं क्लीब (=नपुंसक) के समान ये वचन कह रहा हूँ। मैं युद्ध में तो कौरवों की ओर ही रहूँगा। अतः इस बात को छोड़कर, तुम मुझसे अन्य

द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्। द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम्॥ कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित्' (महाभा. उ. १९३.११-२०)

[200]पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः। दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् (महाभा.भी. २०.५)

[201]द्रष्टव्य – पृ. ५४,५५ तथा टिप्पणी।

[202]द्रोण उवाच – 'अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥ ब्रवीम्येतत् क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत् किमिच्छसि। योत्स्येऽहं कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मम' (महाभा.भी. ४३.५६,५७)

क्या चाहते हो? मैं लड़ूँगा तो कौरवों की ओर से पर तुम विजयी होओ यह कामना करता हूँ[202]।

वाह ! विप्रर्षि द्रोणाचार्य जी! क्या यह कथन आप जैसे तेजस्वी ब्राह्मण के अनुरूप था ? कोई सामान्य मनुष्य ऐसा कहता, तो कुछ जंचता था । आप जैसा वेदवेदाङ्गवित् दृढ़प्रतिज्ञ आचार्य ऐसा कहे ! शोक की बात है !!

क्या सच्चा ब्राह्मण—सच्चा आचार्य—तेजस्वी गुरु—मनस्वी पुरुष अर्थ का, धन वैभव का दास हो सकता है ? गुरु वसिष्ठ ने अर्थ की कभी परवाह नहीं की। राजा दशरथ के दरबार में जब विश्वामित्र मुनि यज्ञरक्षार्थ राम को मांगने आये, तब पुत्रमोही वृद्ध दशरथ ने राम को देने से स्पष्ट मना कर दिया । तब वसिष्ठ ने राजा की इच्छा के विरुद्ध राम को विश्वामित्र के साथ भेजने के लिये दशरथ को तैयार कर दिया[203]। आचार्य तो दूर, तेजस्वी स्नातक भी अर्थ का दास नहीं बनता। वरतन्तु के शिष्य कौत्स को भी अर्थ (=धन) अपना दास नहीं बना सका। कौत्स के, गुरु- दक्षिणा प्रदान करने के हठ को देखकर, वरतन्तु द्वारा चतुर्दश कोटि धन लाने के लिये कहने पर कौत्स राजा दिलीप के पास पहुँचे। उससे पहले राजा दिलीप सर्वहुत यज्ञ में सब कुछ दान दे चुके थे। किन्तु कौत्स द्वारा गुरु दक्षिणार्थ अपेक्षित धन की व्यवस्था करने को अपना कर्त्तव्य समझ कर दिलीप ने महाधनी कुबेर पर आक्रमण करने का विचार किया । कुबेर को

---

[203] त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत् सर्वं महानृषिः। नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ।। इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद् धर्म इवापरः धृतिमान् सुव्रतः श्रीमान् न धर्मं हातुमर्हति ।। प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः । इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद् रामं विसर्जय ।। इति मुनिवचनात् प्रसन्नचित्तो रघुवृषभश्च मुमोद पार्थिवाग्र्यः । गमनमभिरुरोच राघवस्य प्रथितयशाः कुशिकात्मजायबुद्ध्या' (वा.रा.बाल. २१. ५,६,८,२२)

[204] 'गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च' र.वं. ५.३१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

दिलीप की योजना का पता लगा, तो उसने रातों रात दिलीप महाराज के पास अकूत धन सम्पदा भिजवा दी। दिलीप कौत्स को वह सम्पूर्ण धन देना चाहते थे, पर तेजस्वी विप्र स्नातक व्यर्थ के अर्थ के मोह में नहीं पड़ा और गुरुदक्षिणापूर्ति-मात्र के ही धन को उसने स्वीकार किया। वह अर्थ का दास नहीं बना, अर्थ कौत्स का दास बना[204]।

यदि ब्राह्मण सच्चा तपस्वी हो तो अर्थ का दास नहीं बनता। अत्यन्त दरिद्रावस्था को प्राप्त सुदामा अपनी पत्नी के बारम्बार के आग्रह पर अपने बाल- सखा कृष्ण के पास द्वारका पहुँचे। बालसखा को पाकर कृष्ण ने उनका भरपूर स्वागत सत्कार किया। बहुत दिन अपने पास रखा। पर 'धोती फटी सी लटी दुपटी' वाले सुदामा ने श्रीकृष्ण के अर्थ वैभव को देखकर भी अर्थ की याचना नहीं की। अर्थ के दासत्व में पड़ने को उसका मन नहीं माना। यह अलग बात है कि महाराज श्रीकृष्ण ने गुपचुप उसके ग्राम में उसके लिये भव्य भवन बनवा दिया।

जब ये लोग अर्थ के दास नहीं बने, तो महातेजःपुञ्ज होते हुए भी आप अर्थ के दास क्यों बने ? लोकोत्तर 'बाणसन्धान में निपुण होने पर भी आप भोजन- मात्र के लिये हस्तिनापुर आये। राजकुमारों की सूखे कुए में गिरी हुई वीटा (गुल्लीनुमा गेंद) और अंगूठी को; सरकंडों को बाणवत् सन्धान करके निकालने की अद्भुत महिमा के बदले में आपने उनसे भोजन-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की[205]।

आप कहेंगे वीटा और अंगुलि को कूप से निकालने पर भोजन पाने की बात तो

---

[205]'वीटां च मुद्रिकां चैव ह्यहमेतदपि द्वयम्। उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम्। एवमुक्त्वा कुमारांस्तान् द्रोणः स्वाङ्गुलिवेष्टनम् कूपे निरुदके तस्मिन्नपातयदरिन्दमः' (महाभा.आदि. १३०.२४,२५)

[206]द्रुपदेनैवमुक्तोऽहं मन्युनाभिपरिप्लुतः॥ अभ्यागच्छं कुरून् भीष्म शिष्यैरर्थी गुणान्वितैः। ततोऽहं भवतः कामं संवर्धयितुमागतः॥ (महाभा.आदि. १३०.७४,७५)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

महज एक माध्यम था भीष्म से मिलने का, क्योंकि मैं ऐसे तेजस्वी शिष्यों की तलाश में था, जो मेरा अपमान करने वाले द्रुपद से बदला ले सके[206]।

ठीक है । आपका भीष्म से मिलना सफल रहा । आपको कौरव पाण्डव जैसे बलवान् राजकुमार शिष्य मिल गये । आप उनके गुरु नियत हुए । किन्तु मन में समाये हुए द्रुपद-प्रतिशोध के कार्य का बीड़ा बिना झिझके किसने उठाया ? मात्र अर्जुन ने । 'तब द्रोण ने प्रसन्न मन से धृतराष्ट्र की सन्तानों को और पाण्डवों को शिष्य रूप में स्वीकार किया । तभी एक दिन एकान्त में उन शिष्यों के सामने द्रोण ने कहा – 'हे शिष्यो! मेरे हृदय में एक भारी आकांक्षा है, जिसे शस्त्रास्त्र सीखने के बाद तुम्हें पूरा करना है । बोलो, मेरे उस संकल्प को कौन पूरा करेगा ? गुरु की बात सुनकर कौरव तो चुप हो गये । किन्तु अर्जुन ने तुरन्त कहा, कि मैं आपके उस कार्य को पूरा करने की प्रतिज्ञा करता हूँ । अर्जुन के वचन सुनकर द्रोण ने बार-बार अर्जुन के सिर को सूंघा और उसे प्रेम से गले लगाकर आनन्द के आंसू बहाये[207]।

कौरव-पाण्डवों की शस्त्रास्त्रशिक्षा आरम्भ हुई । पराक्रमी द्रोणाचार्य ने उन्हें नाना प्रकार के लौकिक और अलौकिक अस्त्र-शस्त्रों की विद्या ग्रहण कराई। एक दिन शिष्यों की परीक्षार्थ द्रोण ने शिल्पी से एक नकली भास (=गिद्ध) बनवाया और चुपचाप

---

[207] 'स तान् शिष्यान् महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान् । पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः।। प्रतिगृह्य च तान् सर्वान् द्रोणो वचनमब्रवीत्। रहस्येकः प्रतीतात्मा कृतोपसदनांस्तथा – 'कार्यं मे कांक्षितं किंचिद् हृदि सम्परिवर्त्तते । कृतास्त्रैस्तत् प्रदेयं मे तदेतद् वदतानघाः।। तच्छ्रुत्वा कौरवेयास्ते तूष्णीमासन् विशांपते । <u>अर्जुनस्तु ततः सर्वं प्रतिजज्ञे</u> परन्तप।। ततोऽर्जुनं तदा मूर्ध्नि समाघ्राय पुनः पुनः। प्रीतिपूर्वं परिष्वज्य प्ररुरोद मुदा तदा' (महाभा.आदि. १३१.४-८)

[208] तांस्तु सर्वान् समानीय सर्वविद्यास्त्रशिक्षितान् । द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभः। कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम् । अविज्ञातं कुमाराणां

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

एक ऊँचे वृक्ष पर लटकवा दिया। जो अत्यन्त एकाग्रचित्त होगा वही इस गिद्ध का सिर काट सकेगा, इस दृष्टि से गुरु ने युधिष्ठिर, दुर्योधन आदि को जब व्यग्र (=एकाग्रतारहित) चित्त वाला पाया, तो अन्त में अर्जुन से भी यह प्रश्न किया कि तुम किस-किस को देख रहे हो? अर्जुन ने कहा–'हे आचार्य! मुझे केवल गिद्ध दिखाई दे रहा है। न तो वृक्ष और न ही आप दिख रहे हैं और भास का भी केवल सिर मेरी आँखों के सामने है। उसका शेष शरीर भी नहीं। तब गुरु ने अर्जुन को बाण चलाने की आज्ञा दी। अर्जुन ने तुरन्त एक पैने बाण से उस गिद्ध का सिर काट के गिरा दिया। उसे देखकर द्रोण ने अर्जुन का आलिंगन किया और मान लिया कि अब द्रुपद को सन्तान-सहित पराजित किया जा सकेगा[208]।

एक अवसर पर और अर्जुन की योग्यता प्रकट हुई। 'एक समय द्रोण शिष्यों सहित गङ्गा में नहाने गये। गहरे पानी में एक मगर ने द्रोण की जंघा को पकड़ लिया।

लक्ष्यभूतमुपादिशत्।...। अन्यांश्च (=युधिष्ठिरदुर्योधनादिव्यतिरिक्तान्) शिष्यान् भीमादीन् राज्ञश्चैवान्यदेशजान्। तथा च सर्वे तत्सर्वं पश्याम इति कुत्सिताः॥ ततो धनञ्जयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत। पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि चार्जुन?। पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत। न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत।... शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत्॥ ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन हि। शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः। तस्मिन् कर्मणि संसिद्धे पर्यष्वजत पाण्डवम्॥मेने च द्रुपदं संख्ये सानुबन्धं पराजितम्' (महाभा.आदि. १३१. ६७,६८,७९,१३२.१,४,५,७,९,१०)

209 'कस्यचित्त्वथ कालस्य सशिष्योऽङ्गिरसां वरः। जगाम गङ्गामभितो मज्जितुं भरतर्षभ॥ अवगाढमथो द्रोणं सलिले सलिलेचरः। ग्राहो जग्राह बलवान् जङ्घान्ते कालचोदितः॥ स समर्थोऽपि मोक्षाय शिष्यान् सर्वानचोदयत्। ग्राहं हत्वा मोक्षयध्वं मामिति त्वरयन्निव॥ तद्वाक्यसमकालं तु बीभत्सुर्निशितैः शरैः। अवार्यैः पञ्चभिर्ग्राहं मग्नमम्भस्यताडयत्। इतरे त्वथ सम्मूढास्तत्र तत्र प्रपेदिरे। स पार्थबाणैर्बहुधा खण्डशः

"इस विग्रह के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

स्वयं समर्थ होते हुए भी (परीक्षार्थ) द्रोण ने शिष्यों को जल्दी से पुकारा 'मगर को मारकर मुझे 'बचाओ, बचाओ'। इस पुकार को सुनते ही अर्जुन ने जल में वर्तमान मगर को पांच तीखे बाणों से खण्ड-खण्ड कर दिया और द्रोण को छुड़ा लिया। उस समय दूसरे शिष्य तो किंकर्त्तव्यमूढ़ से होकर जहाँ-तहाँ हाथ-पाँव मारते रहे। अर्जुन के इस कृत्य को देखकर द्रोण ने उसे अन्य सब शिष्यों से विशेष माना और उस पर उनका और प्रेम बढ़ गया[209]।

रङ्गभूमि में राजकुमारों के अस्त्रकौशल का भी प्रदर्शन हुआ। कर्ण को छोड़कर अन्य कोई अर्जुन की बराबरी न कर सका।

शस्त्रास्त्र-शिक्षण के द्वारा सब राजकुमार शिष्यों को अस्त्रविद्या में पारंगत जानकर, आचार्य ने समावर्त्तन किया। जब गुरुदक्षिणा की वेला आई। तब द्रोण ने सब शिष्यों को पुकार कर कहा – 'हे शिष्यो ! तुम युद्ध में पञ्चाल-देश के राजा द्रुपद को बन्दी बनाकर मेरे पास लाओ, यही मेरी असली गुरुदक्षिणा है। ठीक है जी। ऐसा कहकर आचार्य की दक्षिणा के लिये दुर्योधन, कर्ण, युयुत्सु, दुःशासन, विकर्ण, जलसन्ध,

---

परिकल्पितः। ग्राहः पञ्चत्वमापेदे जङ्घां त्यक्त्वा महात्मनः॥ तं तु दृष्ट्वा क्रियोपेतं द्रोणोऽमन्यत पाण्डवम्। विशिष्टं सर्वशिष्येभ्यः प्रीतिमांश्चाभवत्तदा। अथाब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम्। गृहाणेदं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम्। अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्त्तनम्' (महाभा.आदि. १३२.११-१८)

210पाण्डवान् धार्त्तराष्ट्रांश्च कृतास्त्रान् प्रसमीक्ष्य सः। गुर्वर्थं दक्षिणाकाले प्राप्तेऽमन्यत वै गुरुः। ततः शिष्यान् समानीय आचार्योऽर्थमचोदयत्। द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते॥ पञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि। पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात् परमदक्षिणा॥ तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः। आचार्य-धनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः॥ दुर्योधनश्च कर्णश्च युयुत्सुश्च महाबलः। दुःशासनो विकर्णश्च जलसन्धः सुलोचनः॥ एते चान्ये च बहवः कुमारा बहुविक्रमाः। अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

सुलोचन तथा अन्य बहुत से क्षत्रियकुमार 'मैं पहले, मैं पहले' इस होड़ से पञ्चालराज द्रुपद यज्ञसेन के नगर पर आक्रमण करने को भागे ।

इस आक्रमण को जानकर द्रुपद यज्ञसेन तथा उसके भाइयों ने कौरवों पर बाणों की घोर वर्षा कर दी । तब अर्जुन ने उन क्षत्रियकुमारों की गर्व भरी डींग को देखकर कुछ विचार करके द्रोण से कहा – 'हे आचार्य ! इन लोगों को पहले अपना पराक्रम दिखाने दो । बाद में हम साहस करेंगे । युद्ध में पञ्चाल-राज का इनके द्वारा पकड़ा जाना सम्भव नहीं है। ऐसा कहकर अर्जुन अपने भाइयों सहित नगर से आधा कोस पहले ही ठहर गया[210]।

द्रुपद ने कौरवों को देखकर चारों ओर धूम मचाकर उन्हें अपने बाणों की बोछारों से मूढ़ सा बना दिया । वह अपने एक ही रथ से इतनी शीघ्रता से इधर-उधर झपट रहा था, कि कौरवों को लगा मानो एक द्रुपद नहीं, अनेक द्रुपद हों । दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, सुलोचन तथा दुःशासन इन भाइयों ने उस पर बाण-वर्षा कर दी। इससे तिलमिलाये

क्षत्रियर्षभाः। प्रविश्य नगरं सर्वे राजमार्गमुपाययुः। तस्मिन् काले तु पाञ्चालः श्रुत्वा दृष्ट्वा महद् बलम्। भ्रातृभिः सहितो राजंस्त्वरया निर्ययौ गृहात्।। ततो रथेन शुभ्रेण समासाद्य तु कौरवान्। यज्ञसेनः शरान् घोरान् ववर्ष युधि दुर्जयः।। पूर्वमेव तु सम्मन्त्र्य पार्थो द्रोणमथाब्रवीत्। दर्पोद्रेकात् कुमाराणामाचार्यं द्विजसत्तमम्।। एषां पराक्रमस्यान्ते वयं कुर्याम साहसम्। एतैरशक्यः पाञ्चालो ग्रहीतुं रणमूर्धनि। एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सहितोऽनघ। अर्धक्रोशे तु नगरादतिष्ठद् बहिरेव सः। (महाभा.आदि. १३७. १-१३)

[211]द्रुपदः कौरवान् दृष्ट्वा प्राधावत समन्ततः। शरजालेन महता मोहयन् कौरवीं चमूम्। तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे । अनेकमिव सन्त्रासान्मेनिरे तत्र कौरवाः।। दुर्योधनो विकर्णश्च सुबाहुर्दीर्घलोचनः। दुःशासनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन्। सोऽतिविद्धो महेष्वासः पार्षतो युधि दुर्जयः। व्यधमत्तान्यनीकानि तत्क्षणादेव भारत।

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

द्रोणाचार्य-प्रकरण

पृषत्पुत्र द्रुपद ने तुरन्त उनकी सेना को हंकाल दिया और दुर्योधन विकर्ण आदि भाइयों को, राधेय महाबली कर्ण को तथा अन्य सहायक राजकुमारों को एवं उनके सैनिकों को ऐसे घूम-घूमकर बाणों से छका दिया मानो दहकता हुआ अधजले काष्ठ का चक्र चारों ओर अग्नि बरसा रहा हो। द्रुपद की गर्जना को सुनकर सभी नगरवासी भी मूसल और लाठियाँ लेकर कौरव-सेना पर पिल पड़े। उस भारी युद्ध के घोर शब्दों को सुनकर ऐसा लगने लगा मानो वहाँ कौरव हैं ही नहीं। तब कौरव पुकार मचाते हुए चिल्लाते हुए पाण्डवों की ओर भाग लिये।

कौरवों की पीड़ा भरी रोंगटे खड़ी करने वाली गुहार को सुनकर, पाण्डव गुरु द्रोणाचार्य को प्रणाम करके अपने रथों पर सवार हुए। उन्होंने बड़े भाई युधिष्ठिर को तो लड़ने से रोक दिया। अर्जुन के रथ के चक्रों के रक्षक नकुल-सहदेव बने और भीमसेन गदा लेकर अर्जुन के आगे-आगे बढ़ा। उसने पाञ्चालों की हाथी सेना को तहस-नहस कर दिया। जिससे उन गिरे हुए हाथियों के शरीरों से खून की धाराएँ बह निकलीं। भीम की गदा के प्रहारों से घुड़सवारों के घोड़ों की, रथों की और पैदल सेना की भी यही गति हुई। गुरु द्रोण की आकांक्षा को पूरा करने के लिये अर्जुन ने द्रुपद को बाणों की वर्षा से ढक कर उसके अन्य अनेक हाथी, घोड़े और रथ भूमि पर गिरा दिये। तब द्रुपद-सेना ने

दुर्योधनं विकर्णं च कर्णं चापि महाबलम्। नानानृपसुतान् वीरान् सैन्यानि विविधानि च। अलातचक्रवत् सर्वं चरन् बाणैरतर्पयत्॥ ततस्तु नागराः सर्वे मूसलैर्यष्टिभिस्तथा। अभ्यवर्षन्त कौरव्यान् वर्षमाणा घना इव। श्रुत्वा सुतुमुलं युद्धं कौरवा नेव भारत॥ द्रवन्ति स्म नदन्ति स्म क्रोशन्तः पाण्डवान् प्रति॥ पाण्डवास्तु स्वनं श्रुत्वा आर्तानां लोमहर्षणम्। अभिवाद्य ततो द्रोणं रथानारुरुहुस्तदा। युधिष्ठिरं निवार्याशु मा युध्यस्वेति पाण्डवम्। माद्रेयौ चक्ररक्षौ फाल्गुनश्च तदाकरोत्। सेनाग्रगो भीमसेनः सदाऽभूद् गदया सह। स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चातुलः। अहनत् कुञ्जरानीकं गदया कालरूपधृत्। ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तो रुधिरं बहु।...। भारद्वाज-प्रियं कर्तुमुद्यतः फाल्गुनस्तदा। पार्षतं शरजालेन क्षिपन्नागात् स पाण्डवः॥ हयौघांश्च रथौघांश्च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

सिंहनाद करके अर्जुन पर बाण मारे और उससे युद्ध करने लगे[211]। उस सिंहनाद को सुनकर अर्जुन पाञ्चाल-सेना पर टूट पड़ा और उन पर इतनी तेजी से बाण चलाने लगा कि पता ही नहीं चलता था, कि वह कब तरकस से बाण निकालता है, कब उसे धनुष-डोरी पर चढ़ाता है और कब उसे चलाता है। तत्पश्चात् पञ्चालराज द्रुपद अपने भाई सत्यजित् के साथ अर्जुन की ओर लपके, तो अर्जुन ने उन्हें बाणों की भारी वर्षा से ढक दिया। तभी पञ्चाल-सेना में हलहला शब्द (=अरेऽऽऽ अरेऽऽऽ) की चिल्लाहट हुई। वे कहने लगे कि अर्जुन द्रुपद को वैसे ही पकड़ लेना चाहता है, जैसे बब्बर शेर हाथी को। तब सत्यजित् अपने भाई द्रुपद को बचाने के लिये अर्जुन पर प्रहार करने लगा। उन दोनों का युद्ध होने लगा और उन्होंने एक दूसरे की सेना को परेशान कर दिया। तब अर्जुन ने सत्यजित् को दस मर्मभेदी बाणों से बुरी तरह बींध दिया। सत्यजित् ने भी अर्जुन को सौ बाणों से तिलमिला दिया। अर्जुन ने भी तीव्र वेग से बाणवर्षा से उसे ढककर उसके धनुष को काट डाला और द्रुपदराज की ओर मुख किया। तभी सत्यजित् भी फुर्ती से अर्जुन के घोड़ों को, सारथि को और अर्जुन को बाण मारने लगा। अर्जुन ने

गजौघांश्च समन्ततः। पातयन् समरे राजन् युगान्ताग्निरिव ज्वलन्। ततस्ते हन्यमाना वै पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा। शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पार्थं सञ्छाद्य सर्वशः॥ सिंहनादं मुखैः कृत्वा समयुध्यन्त पाण्डवम्॥ (महाभा.आदि. १३७.१५....३८)

[212]सिंहनादस्वनं श्रुत्वा नामृष्यत् पाकशासनिः। ततः किरीटी सहसा पाञ्चालान् समरेऽद्रवत्। छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव॥ शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान् संदधानस्य चानिशम्। नान्तरं ददृशे किंचित् कौन्तेयस्य यशस्विनः॥ ततः पञ्चालराजस्तु तथा सत्यजिता सह। त्वरमाणोऽभिदुद्राव महेन्द्रं शम्बरो यथा। महता शरवर्षेण पार्थः पाञ्चालमावृणोत्॥ ततो हलहलाशब्द आसीत् पाञ्चालके बले। जिघृक्षति महासिंहो गजानामिव यूथपम्॥ दृष्ट्वा पार्थं तदाऽऽयान्तं सत्यजित् सत्यविक्रमः। पाञ्चालं वै परिप्रेप्सुर्धनंजयमुपाद्रवत्॥ ततस्त्वर्जुनपाञ्चालौ युद्धाय समुपागतौ। व्यक्षोभयेतां तौ सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव॥ ततः सत्यजितं पार्थो दशभिर्मर्मभेदिभिः। विव्याध बलवद्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

भी सत्यजित् के घोड़ों को, उसके ध्वज को, धनुष की मूठ को, पृष्ठरक्षक को और सारथि को ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार बार-बार अपने धनुषों को काटे जाने पर और घोड़ों के मारे जाने से सत्यजित् तो युद्ध से हट गया। सत्यजित् को युद्ध से विमुख देखकर द्रुपद ने अर्जुन के साथ घोर युद्ध किया। उसी बीच अर्जुन ने द्रुपद के धनुष को काट डाला और ध्वजा को नीचे गिरा दिया तथा पांच बाणों से उसके घोड़ों और सारथि को घायल कर दिया। जब द्रुपद दूसरा धनुष लेने लगा, तभी अर्जुन तलवार लेकर निर्भीक होकर सिंहनाद करता हुआ द्रुपद के रथ पर चढ़ गया और द्रुपद को पकड़ लिया। तब तो सभी पञ्चाल-सैनिक इधर-उधर भाग खड़े हुए[212]।

उसी बीच अर्जुन सब सैनिकों को अपनी भुजाओं के बल को दिखाता हुआ सिंहगर्जना करके उनके बीच में से द्रुपद को लिये हुए बाहर निकल आया। अर्जुन को आता देखकर अन्य राजकुमारों ने द्रुपद के नगर को रौंदना शुरू कर दिया। तब अर्जुन ने

गाढं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ततः शरशतैः पार्थं पाञ्चालः शीघ्रमार्दयत्। पार्थस्तु शरवर्षेण छाद्यमानो महारथः वेगं चक्रे महावेगो धनुर्ज्यामवमृज्य च। ततः सत्यजितश्चापं छित्वा राजानमभ्ययात् ॥ अथान्यद् धनुरादाय सत्यजिद् वेगवत्तरम्। साश्वं ससूतं सरथं पार्थं विव्याध सत्वरः। स तं न ममृषे पार्थः पाञ्चालेनार्दितो युधि। ततस्तस्य विनाशार्थं सत्वरं व्यसृजच्छरान्। हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ तौ पार्ष्णिसारथी। स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनःपुनः। हयेषु विनियुक्तेषु विमुखोऽभवदाहवे॥ स सत्यजितमालोक्य तथा विमुखमाहवे। वेगेन महता राजन्नभ्यवर्षत पाण्डवम्। तदा चक्रे महद् युद्धमर्जुनो जयतां वरः॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्वा ध्वजं चोर्व्यामपातयत्। पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान् सूतं च सायकैः॥ तत उत्सृज्य तच्चापमाददानं शरावरम्। खड्गमुद्धृत्य कौन्तेयः सिंहनादमथाकरोत्॥ पाञ्चालरथमास्थाय अवित्रस्तो धनञ्जयः। विक्षोभ्याम्भोनिधिं पार्थस्तं नागमिव सोऽग्रहीत्। ततस्तु सर्वपाञ्चाला विद्रवन्ति दिशो दश॥' (महाभा.आदि. १३७.३८...५८)

213 'दर्शयन् सर्वसैन्यानां स बाह्वोर्बलमात्मनः। सिंहनादस्वनं कृत्वा निर्जगाम

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

भीम से कहा 'हे भाई! यह द्रुपद कौरवों का सम्बन्धी लगता है, अतः इसकी सेना को अब मत मारो। हमें गुरूजी को दक्षिणा-दान ही तो करना है, सो आओ गुरूजी को दक्षिणा दे दो'। तब वे सब यज्ञसेन द्रुपद को मन्त्रियों सहित बन्दी बनाकर द्रोण के समीप ले आये।

पुराने वैर का ध्यान करके वश में आये हुए द्रुपद से द्रोण ने कहा 'अब तो तुम्हारा घमण्ड चूर-चूर हो गया? और राज्य रूपी धन भी हर लिया गया है। तुम्हारे राज्य और नगर को रौंद डाला गया है। अब तुम्हें मित्र के रूप में क्या चाहिये? कुछ हंसकर द्रोण फिर बोले – 'तुम प्राणों के विषय में डरो मत, हम क्षमा करने वाले ब्राह्मण हैं। गुरु अग्निवेश के आश्रम में मेरे साथ तुम खेलते थे, इसी से हम दोनों का परस्पर स्नेह और प्रेम बढ़ गया था। हे राजन्! मैं फिर तुम्हारे साथ मित्रता का इच्छुक हूँ। मैं तुम्हें वरदान के रूप में तुम्हारा आधा राज्य लौटाता हूँ। अब तुम गंगा के दक्षिण के भाग के राजा होओगे और मैं उत्तर भाग का। तब से गंगा के दक्षिण में काम्पिल्य नगर को राजधानी

धनञ्जयः॥ आयान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कुमाराः सहितास्तदा। ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महात्मनः। अर्जुन उवाच – सम्बन्धी कुरुवीराणां द्रुपदो राजसत्तमः। मा वधीस्तद्बलं भीम गुरुदानं प्रदीयताम्। ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि। उपाजह्रुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभ॥ भग्नदर्पं हृतधनं तं तथा वशमागतम्। स वैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत्॥ विमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया। प्राप्य जीवं रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते॥ एवमुक्त्वा प्रहस्यैनं किंचित् स पुनरब्रवीत्। मा भैः प्राणभयाद् वीर क्षमिणो ब्राह्मणा वयम्॥ आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह। तेन संवर्द्धितः स्नेहः प्रीतिश्च क्षत्रियर्षभ। प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप। वरं ददामि ते राजन् राज्यस्यार्धमवाप्नुहि॥ राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे। सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे॥ माकन्दीमथ गंगायास्तीरे जनपदायुताम्। सोऽध्यावसद् दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम्॥ अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत' (महाभा.आदि. १३७.५९...७७)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

बनाकर द्रुपद राज करने लगे और अर्जुन के पराक्रम से प्राप्त अहिच्छत्र नगर द्रोण के राज्य की राजधानी बना[213]।

हे मनस्वी आचार्य जी! जिस अर्जुन ने आपके द्वारा सिखाई गई अस्त्रविद्या की परीक्षाओं में समुत्तीर्ण होकर आपको प्रसन्न किया, जिस अर्जुन ने आपको शुरु से ही आश्वस्त किया, जिस अर्जुन ने मगर को मारकर आपकी जान बचाई तथा जिस अर्जुन ने अपने चारों भाइयों के सहयोग से घोर युद्ध करके आपके अपमानकर्त्ता द्रुपद को पकड़कर आपके चरणों में उपस्थित किया, उसी अर्जुन के – उन्हीं पाण्डवों के विरुद्ध आप युद्ध करने आ गये। उनकी सेनाओं का संहार करने के लिये आप आ डटे !! क्या यही कृतज्ञता है ?

कितना अन्तर है कृतज्ञ मयासुर में और आप में ! खाण्डव-वन के दाह के समय अग्नि से और श्रीकृष्ण के चक्र-प्रहार सें बचने के लिये मयासुर जब 'मुझे बचाओ' यह पुकारता हुआ अर्जुन की ओर भागा। तब 'तुम मत डरो' ऐसा बोलकर दयालु अर्जुन ने उसे बचा लिया[214]। तब अग्निदाह से संरक्षित मयासुर अर्जुन का, बहुत मान करके हाथ जोड़कर मधुर वाणी से बोला – हे अर्जुन ! आपने अग्नि से और क्रुद्ध कृष्ण से मुझे

---

214 'अभिधावार्जुनेत्येव मयस्त्राहीति चाब्रवीत्। तस्य भीतस्वनं श्रुत्वा मा भैरिति धनञ्जयः॥ प्रत्युवाच मयं पार्थो जीवयन्निव भारत॥ (महाभा.आदि. २२७.४३-४४)

215 'ततोऽब्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य सन्निधौ। प्राञ्जलिः श्लक्ष्णया वाचा पूजयित्वा पुनः पुनः। अस्मात् कृष्णात् सुसंरब्धात् पावकाच्च दिधक्षतः। त्वया त्रातोऽस्मि कौन्तेय ब्रूहि किं करवाणि ते॥ अर्जुन उवाच – कृतमेव त्वया सर्वं स्वस्ति गच्छ महासुर। प्रीतिमान् भव मे नित्यं प्रीतिमन्तो वयं च ते॥ मय उवाच – युक्तमेतत्त्वयि विभो यथाऽऽत्थ पुरुषर्षभ। प्रीतिपूर्वमहं किंचित् कर्तुमिच्छामि भारत॥ अहं हि विश्वकर्मा वै दानवानां महाकविः। सोऽहं त्वत्कृते कर्तुं किंचिदिच्छामि पाण्डव॥...। अर्जुन उवाच – प्राणकृच्छ्राद् विमुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया। एवं गते न शक्ष्यामि

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

बचाया है, सो बताइये मैं आपका कौन सा कार्य करूँ ! अर्जुन ने कहा – बस ऐसा निवेदन करके तुमने मेरा सब कार्य कर दिया है। जाओ तुम्हारा कल्याण हो । बस तुम मेरे प्रति प्रेम रखना और मैं भी तुमसे प्रेम रखूँगा'। मय ने निवेदन किया – हे अर्जुन ! आपने जो वचन कहे, वे आपके ही अनुरूप हैं। किन्तु मैं प्रेम से आपके लिये कुछ करना चाहता हूँ । मैं दानवजाति का महाकुशल विश्वकर्मा हूँ । अर्जुन ने फिर कहा – भाई ! तुमने मेरे द्वारा अपने प्राण बचाने की बात कही है, ऐसे प्राण-रक्षा-कर्म के बदले में कुछ करवाने के लिये मैं तुमसे कुछ भी नहीं कह सकता । फिर भी मैं तुम्हारे हार्दिक भाव का तिरस्कार भी नहीं करना चाहता । तो ऐसा करो, ये जो श्रीकृष्ण हैं न, उन्हीं का कोई प्रिय कार्य तुम कर दो । बस वह मेरा ही कार्य तुमने किया है, यह मान लूँगा। तब मय के आग्रह करने पर श्रीकृष्ण ने मयासुर से कहा कि हे शिल्पिश्रेष्ठ मय ! यदि तुम कुछ करना ही चाहते हो, तो युधिष्ठिर के लिये एक ऐसे अलौकिक सभा-भवन का निर्माण करो जिसको देखकर सभी आश्चर्यचकित हो जायें[215]। तब मय ने विभिन्न स्थानों से नाना सामग्री लाकर मणियों से युक्त दिव्य 'सभा-भवन' का निर्माण किया[216]।

देखिये आचार्य ! मयासुर शिल्पी की कृतज्ञता । बार-बार मना करने पर भी मय ने भारी आग्रह किया कुछ करने के लिये और फिर एक अत्युत्तम अद्वितीय सभा-भवन का निर्माण करके दिखा दिया। और आप....।

किंचित् कारयितुं त्वया ॥ न चापि तव संकल्पं मोघमिच्छामि दानव। कृष्णस्य क्रियतां किंचित् तथा प्रतिकृतं मयि॥... चोदयामास तं कृष्णः सभा वै क्रियतामिति॥ यदि त्वं कर्तुकामोऽसि प्रियं शिल्पवतां वर। धर्मराजस्य दैतेय यादृशीमिह मन्यसे । यां कृतां नाऽनुकुर्वन्ति मानवाः प्रेक्ष्य विस्मिताः। मनुष्यलोके सकले तादृशीं कुरु वै सभाम्' (महाभा.सभा. १.१-६,८...१०-१५)

[216]तदाहृत्य च तां चक्रे सोऽसुरोऽप्रतिमां सभाम्।
विश्रुतां त्रिषु लोकेषु दिव्यां मणिमयीं शुभाम्' (महाभा.सभा. ३.२०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

इसी तरह विराटराज और आपके बीच का भी अन्तर देखिये। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा के द्वारा हरी जाती हुई गौओं के युधिष्ठिर आदि चारों भाइयों के द्वारा छुड़ा लेने और अर्जुन द्वारा दुर्योधनदल के पञ्जे से; भारी युद्ध करके गौओं के त्राण के बदले में न केवल अपनी पुत्री उत्तरा का अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ विवाह किया और अपने राज्य, सेना तथा कोष सहित अपने को पाण्डवों का ही माना अपितु आजीवन पाण्डवों के कृतज्ञ रहे और युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़ते हुए विराटराज अपने पुत्रों शङ्ख और उत्तर के साथ वीरगति को प्राप्त हुए[217]।

आचार्यवर! आप कह सकते हैं, 'मेरे विषय में कृतज्ञता की बात नहीं आ सकती है, क्योंकि पाण्डवों को मैंने शस्त्रास्त्र-विद्या सिखाई थी'। मान्य गुरुदेव! शस्त्रास्त्र-विद्या तो आपने दुर्योधन आदि कौरवों को भी सिखाई थी। सो यह विद्या-शिक्षण की बात तो दोनों ओर सामान्य हो गई। कौरवों को आपने जो विद्या सिखाई, उसका प्रतिफल क्या हुआ? न सब कौरव परीक्षा में समुत्तीर्ण हुए, न वे आपत्ति के समय मगर आदि से आपकी रक्षा कर सके और न गुरुदक्षिणा के रूप में मांगे गये द्रुपद-निग्रह के कार्य में ही वे सफल हो सके। किंच अनेक बार आपके द्वारा दी गई उचित सलाह का

---

[217]परिवार्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलङ्कृताम्। सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे॥ प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्दनम्। विवाहं कारयामास सौभद्रस्य महात्मनः'। राज्यं बलं च कोशं च सर्वमात्मानमेव च (प्रादात्) (महाभा.वि. ७२.३२,३५,३७)। 'ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः। द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे' (महाभा.द्रो. १८६.४२-४३) भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम्। चिक्षेप समरे तूर्णं शंखं प्रति जनेश्वर। स तस्य हृदयं भित्त्वा पीत्वा शोणितमाहवे॥ (महाभा.भी. ८२.२१-२२) 'उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा।... अभ्यधावज् जिघांसन् वै शल्यं मद्राधिपं बली (महाभा.भी. ४७.४३...४५)

[218]'शूराश्च कृतविद्याश्च बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः। धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

द्रोणाचार्य-प्रकरण

भी वे तिरस्कार करते रहे। ऐसे लोगों के हित में आप लड़े! किनके विरूद्ध? जिन्होंने आपकी शिक्षा को उच्च सीमा पर पहुँचाया, जिन्होंने आपकी रक्षा की और जिन्होंने अपने प्राणों को संकट में डालकर, तुमुल युद्ध करके आपकी मुँहमांगी गुरुदक्षिणा प्रदान की उनके विरुद्ध !!

जिन पाण्डवों को आप विद्यानिष्णात, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ तथा कृतज्ञ कहते रहे और जिस युधिष्ठिर को आप धर्मार्थ के तत्त्वों का ज्ञाता, धर्म पर आरूढ़, सत्य पर टिके रहने वाला और अजात शत्रु मानते रहे[218]। उन्हीं पाण्डवों के विरूद्ध आप लड़ने को उनकी सेना का संहार करने को उद्यत हुए। किनकी ओर से – किनका हित करने के लिये, जिनमें आप मित्रद्रोह, दुष्टभाव, नास्तिकता, कुटिलता और धूर्त्तता आदि दोष देखते थे। इन दोषों को गिनाकर और ये अहितकारी हैं, ऐसी चेतावनी देने पर भी जो नहीं माने उनके हित के लिये[219]।

रही बात यह कि 'मैं इन कौरवों के साथ अर्थ (=धन-सुविधादि) के कारण बंधा हुआ हूँ। इसलिय मैं इनकी ओर से लडूँगा'। सो यह कहना अनुचित है। कौरवों ने आपको आराम से बिठाकर तो खिलाया पिलाया नहीं। आपने उन्हें शस्त्रास्त्र-विद्या सिखाने में पूरा श्रम किया था। मुफ्त में उनकी रोटी नहीं खाई। अतः अधर्मियों के हित के लिये धर्मात्माओं के विरूद्ध लड़ने का कोई औचित्य नहीं था!

युधिष्ठिर आपसे आशीर्वाद मांगने आये थे। आपने कहा – 'लडूँगा तो मैं कौरवों की ओर से पर तुम्हारी जीत की कामना करता हूँ। – 'योत्स्येऽहं कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मया'। इस आशीर्वाद का क्या अर्थ हुआ? मैं तुम्हारी सेना के गले

धर्मराजमनुव्रताः॥ नतधर्मार्थतत्त्वज्ञं पितृवच्च समाहितम्। धर्मे स्थितं सत्यधृतिं ज्येष्ठं ज्येष्ठानुयायिनः॥ अजातशत्रुं श्रीमन्तं सर्वभ्रातृननुव्रतम्' (महाभा.वि. २७.२-४)

[219] मित्रध्रुग् दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः।
न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः (महाभा.उ. १३९.७)

काटूँगा और विजय तुम्हारी होवे। युधिष्ठिर की जीत हुई। सारे पुत्र मारे गये, सगे-सम्बन्धी मारे गये, पूजनीय बुजुर्ग मारे गये। उसके केवल आठ लोग – पांच पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि और धृष्टद्युम्न का सारथि। सात अक्षौहिणी सेना के लाखों वीरों की लाशों पर यह जीत हासिल हुई। इस जीत को कौन जीत कह सकता है? कौरव-पक्ष के बहुत से बुजुर्ग और आदरणीय जन जिन्हें पाण्डव कतई मारना नहीं चाहते थे, पर युद्ध में वे भी मारे गये। इन लाखों-लाखों वीरों की हत्या को रोका जा सकता था। द्रोणाचार्य जी! आप जैसे मतिमान् लोग विचार करते और भरसक प्रयास करते, तो यह हत्याकाण्ड न मचता।

आपको स्पष्ट घोषणा करनी थी, कि मैं अधिक धर्मात्मा पाण्डवों की ओर से लड़ूँगा। आपके ऐसा कहने पर भीष्म पितामह, आपके साले कृपाचार्य, पुत्र अश्वत्थामा आदि भी पाण्डव-पक्ष में आ जाते। तब युद्ध होता ही नहीं और होता तो भी उसका परिणाम और ही होता। आपसे तो दुर्योधन का भाई युयुत्सु ही अच्छा रहा, जिसने धर्म पर आरूढ़ और न्याय्य पाण्डवों के पक्ष में युद्ध किया और जीवित भी रहा। अथवा आप युद्ध से विमुख रहते। आपके अनुसार भीष्म आदि भी वैसा अवश्य करते। तब भी युद्ध का दृश्य अन्य ही होता।

इन सब पर विचार करने से पता लगता है, कि आपकी बुद्धि में प्रमाद= (अनवधानता) के छा जाने से आप समय पर सही निर्णय नहीं कर सके।

काल की कड़वी बातें सुनकर द्रोणाचार्य की आत्मा मानो अपने किये पर पश्चात्ताप करके अगले शुभ जन्म में इन त्रुटियों को न दुहराने का संकल्प लेने लगी।

---

220 गोपितौ गौतमस्तत्र तपसा समविन्दत॥ आगत्य तस्मै गोत्रादि सर्वमाख्यातवांस्तदा। चतुर्विधं धनुर्वेदं शास्त्राणि विविधानि च। निखिलेनास्य तत्सर्वं गुह्यमाख्यातवांस्तथा। सोऽचिरेणैव कालेन परमाचार्यतां गतः' (महाभा.आदि. १२९. २०-२२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

तब काल कृपाचार्य से रूबरू हुआ – कृपाचार्य जी ! आप भी तो इस कौरव-पाण्डव-घटनाचक्र के द्रष्टा साक्षी थे। आपने महाभारत-युद्ध को रोकने में कोई भूमिका क्यों नहीं निभाई ?

कृपाचार्य? [१]

कृपाचार्य और कपटद्यूत-सभा

हे कृपाचार्य जी ! आपको भी तो आपके पिता शरद्वान् ने धनुर्वेद और सब शास्त्र सम्पूर्ण रूप से पढ़ाये थे[220]। तो वेदों में शास्त्रों में जो द्यूत-क्रीडा को महाव्यसन बताया गया है और उसके दुष्परिणाम भी बताये गये हैं, उन्हें आपने पढ़ा ही होगा। तथा इतिहास में, नल के अपने छोटे भाई पुष्कर के साथ जुआ खेलने से, नलदमयन्ती को जो अकल्पनीय कष्ट उठाने पड़े, उन्हें भी आपने पढ़ा ही होगा। तब फिर आपने द्यूतक्रीडा का विरोध क्यों नहीं किया ? उस द्यूतक्रीडा के समय भीष्म द्रोण आदि के साथ आप भी उपस्थित थे[221]। आप कौरव-पाण्डवों के गुरु थे। आपसे उन्होंने धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी[222]। अतः आप बलपूर्वक अपने शिष्यों को उस दुर्व्यसन से हटा सकते थे। तब भीष्म, द्रोण तथा अन्य समझदार लोग भी आपके साथ होते। यह कपट द्यूत ही तो महाभारत-युद्ध का असली मूल था।

---

[221] द्रष्टव्य-पृ. १३

[222] 'ततोऽधिजग्मुः सर्वे ते धनुर्वेदं महारथाः।
धृतराष्ट्रात्मजाश्चैव पाण्डवाः सह यादवैः॥ (महाभा.आदि. १२९.२३)

[223] विकर्ण उवाच – 'अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः॥ भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ। समेत्य नाहतुः किञ्चिद् विदुरश्च महामतिः। भारद्वाजश्च सर्वेषामाचार्यः कृप एव च। कुत एतावपि प्रश्नं नाहतुर्द्विजसत्तमौ' (महाभा.सभा. ६८.१२-१४)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

कृपाचार्य? [२]

भरी सभा में द्रौपदी का अपमान और कृपाचार्य

कृपाचार्य जी ! उस कपट जुए में युधिष्ठिर के हार जाने पर तथा शकुनि द्वारा उकसाने पर विमूढ़ युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया और बाजी हार गया। तब विदुर के बार-बार मना करने पर भी दुर्योधन के आदेश पर दुःशासन एकवस्त्रा ऋतुमती द्रौपदी को जबर्दस्ती घसीटकर सभा में लाया, द्रौपदी को कुवाच्य कहे गये, दुर्योधन द्वारा अपनी बाईं जांघ को नंगा करके द्रौपदी को दिखाया गया और दुःशासन ने द्रौपदी के शरीर पर वर्त्तमान एक मात्र वस्त्र को खींचकर इसे नग्न करने का प्रयास रूपी अति नीचकर्म किया। तब आप भी वहाँ उपस्थित थे[223]।

द्रौपदी गुहार कर रही थी अपनी इस दुर्दशा से छुटकारा पाने की पर अन्यों की तरह आप भी चुप थे। तब निश्चय ही आपकी आत्मा और बुद्धि को लकवा मार गया था, केवल आप लोग सूने शरीर से वहाँ वर्त्तमान थे[224]। या आप भी अन्य राजाओं की तरह दुर्योधन से डरते थे[225] ? आप समर्थ लोगों के द्वारा भी उपेक्षित एक सन्नारी का घोर अपमान और उसके मुँह से निकली पीड़ा भरी आहें भी, लाखों वीरों के मौत के द्वारा लीले जाने का कारण बनीं।

---

[224]भीष्म उवाच – 'उत्पन्नं च पाञ्चालि तवेदं वृत्तमीदृशम्। यत् कृच्छ्रमपि सम्प्राप्ता धर्ममेवान्ववेक्षसे। एते द्रोणादयश्चैव वृद्धा धर्मविदो जनाः। शून्यैः शरीरैस्तिष्ठन्ति गतासव इवानताः' (महाभा. सभा. ६९.१९,२०)

[225]'तथा तु दृष्ट्वा बहु तत्र देवीं रोरूयमाणां कुररीमिवार्ताम्। नोचुर्वचः साध्वथ वाप्यसाधु महीक्षितो धार्त्तराष्ट्रस्य भीताः' (महाभा.सभा. ७०.१)

[226]द्रष्टव्य – पृ. ३४

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

कृपाचार्य? [३]

पाण्डवों का वनवासार्थ प्रस्थान और कृपाचार्य

द्यूत में अनिपुण द्यूतरसिक युधिष्ठिर के, महाचतुर द्यूतक्रीडी शकुनि द्वारा निकृति से पराजित होने पर शर्त्त के अनुसार पाण्डवों के वनप्रस्थान के समय युधिष्ठिर ने जिन लोगों से विदा ली, उनमें कृपाचार्य जी आप भी थे[226]। आप से भी उस समय उनके दुःख-समय में सहानुभूति का एक भी शब्द नहीं निकला। इसलिये नागरिकों ने पाण्डवों के वन-निष्कासन में भारी दुःख जताया, वे रोये-कलपे और अन्यों के साथ आपकी भी निन्दा की[227]।

उन नागरिकों द्वारा आप लोगों की निन्दा करना, सर्वथा उचित था। क्योंकि न आप लोग जुए को रोक सके और न द्रौपदी की अपमान से रक्षा कर सके। एक तरह से पाण्डवों के वनवास भेजने में आप परोक्ष रूप से कारण बने।

कृपाचार्य? [४]

दुर्योधन द्वारा विराटगोहरण और कृपाचार्य

कृपाचार्य जी! त्रिगर्तनृप सुशर्मा के द्वारा उकसाने पर दुर्योधन की बुद्धि पर भी जब लोभ छा गया, तो वह मत्स्य देश के राजा विराट की गौओं का हरण करने के लिये दलबल सहित मत्स्य देश के घोषों (गोपालग्रामों) को तहस-नहस करके गौओं के अपहरण के लिये चल पड़ा। उस अपहर्तादल-डाकू-गिरोह में भीष्म द्रोण आदि के

---

[227]गतानेतान् विदित्वा तु पौराः शोकाभिपीडिताः। गर्हयन्तोऽसकृद् भीष्मविदुरद्रोणगौतमान् (वन. १.१२)

[228]द्रष्टव्य - पृ. ४०

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

समान आप भी थे[228]। नीति-व्यवहार का कथन है–'जो अपने पुत्रों और शिष्यों को कुमार्गगामी देखकर उन्हें मन्यु के साथ झिड़कते नहीं है, वे पिता या गुरु कहलाने के योग्य नहीं हैं[229]। सो जिस मत्स्य राज्य के राजा विराट ने तथा उसकी गोपाल प्रजा ने कौरवों का कुछ भी नहीं बिगाड़ा था, उनकी गोसम्पत्ति का हरण करने जाना सर्वथा अन्याय था–अधर्म था–डाका और चोरी था। सो गुरु कृपाचार्य जी! आपको उन्हें इस कर्म से हटाने का प्रयत्न करना था, न मानने पर आपको तो उससे विमुख रहना था। पर आप भी चेलों के चौर्य कर्म में – दस्युकृत्य में सम्मिलित हो गये। भीष्म द्रोण आदि के समान आपकी बुद्धि में भी प्रमाद छा गया। सो अब यदि भीष्मादि के समान आपके विषय में भी लौकिक परिवाद – 'असतां सङ्गदोषेण यान्ति सन्तोऽपि विक्रियाम्। दुर्योधनस्य सङ्गेन कृपोऽपि गोहृतौ गतः' बने तो क्या आश्चर्य !

कृपाचार्य? [५]

अज्ञातवास के समय पाण्डवों का पता लगाने में कृप की सम्मति

पाण्डवों के वनवास के जब बारह वर्ष पूरे हो गये और तेरहवें वर्ष में जब उन्हें अज्ञात रूप में रहना था, तब –

'शरद्वान् के पुत्र वृद्ध कृपाचार्य ने पाण्डवों के विषय में कहा – उन पाण्डवों की गतिविधि और उनके निवास-स्थान के विषय में विचार करना चाहिये। ऐसी नीति

---

[229]'पुत्रान् शिष्यान् कुमार्गस्थान् ये न तर्जन्ति मन्युना।
कथं ते तु वाच्याः स्युः पितरो गुरवोऽथवा' (व्यवहारभानुः)

[230]'ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा। युक्तं प्राप्तं च वृद्धेन पाण्डवान् प्रति भाषितम्। तेषां चैव गतिस्तीर्थैर्वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम्। नीतिर्विधीयतां चापि साम्प्रतं या हिता भवेत्॥ नावज्ञेयो रिपुस्तात प्राकृतोऽपि बुभूषता। किं पुनः पाण्डवास्तात सर्वास्त्रकुशला रणे॥ तस्मात् सत्रं प्रविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु। गूढभावेषु

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

बनानी चाहिये जो इस समय हमारे लिये हितकारी हो। उन्नति के इच्छुक किसी भी मनुष्य को सामान्य शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, फिर युद्ध में समर्थ और सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों में कुशल पाण्डवों की तो बिल्कुल ही नहीं। इसलिये सत्र (=गुप्त स्थान) में प्रविष्ट हुए महात्मा पाण्डवों का पता लगाओ। गुप्त रूप से छिपे हुए पाण्डव समय आने पर अवश्य प्रकट होंगे। निश्चित कालावधि के पूरा होने पर महाबलशाली महात्मा पाण्डव महान् उत्साह से सम्पन्न हो जायेंगे और अधिक पराक्रमी भी होंगे[230]।

कपटद्यूत को रोकने में आपने कोई प्रयत्न नहीं किया। विपन्ना द्रौपदी को घोर अपमान से बचाने में भी आप कुछ न कर सके। पाण्डवों को वनवास का दुःख झेलने से बचाने में भी आपकी कोई भूमिका नहीं रही। पर अब अज्ञातवास के समय में तो उन्हें अज्ञात रूप में शान्ति से रहने देते। और पाण्डव आपके शत्रु कबसे बन गये ? शान्तिदूत बनकर आये श्रीकृष्ण द्वारा सभा में रखे गये सन्धि-प्रस्ताव का अनुमोदन करके हठी दुर्योधन को समझाने वालों में आप कृपाचार्य भी थे। तभी तो गान्धारी ने कहा था– 'हे प्रिय पुत्र दुर्योधन ! मेरे वचन पर ध्यान दे जो कि तेरे और तेरे परिवार के लिये हितकारी है और भविष्य में सुख देने वाला है। इसलिये तेरे पिता ने, भीष्म ने, द्रोण ने, कृपाचार्य ने और विदुर ने जो तुझे समझाया है, उसके अनुसार तू कर'।[231]

पर दुर्योधन भीष्म आदि के समान आपके भी हितवचन को नहीं माना। तो आपके हितकथन को न मानने वाला तो आपका मित्र हो गया और धर्म पर आरूढ़

छन्नेषु काले चोदयमागते ॥ उदयः पाण्डवानां च प्राप्ते काले न संशयः। निवृत्तसमयाः पार्था महात्मानो महाबलाः। महोत्साहा भविष्यन्ति पाण्डवा ह्यमितौजसः' (महाभा.वि. २९.१-७)

[231]विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत्। दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक। हितं ते सानुबन्धस्य तथाऽऽयत्यां सुखोदयम् ॥ दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम। भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद्वचः' (महाभा.उ. १२९.१८-२०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

पाण्डव आपके लिये शत्रु हो गये ! आश्चर्य है कृपाचार्य जी ! पाण्डवों की धर्म पर आस्था, सत्य पर दृढ़ता और अपनी जान के प्यासे शत्रुओं पर भी दया करने का इससे बड़ा क्या उदाहरण होगा जो द्वैतवन में घटा –

जब पाण्डव वनवास का समय काटने के लिये द्वैतवन में रह रहे थे, उस समय दुर्योधन का अभिन्न अङ्ग कर्ण दुर्योधन की मन की इच्छा के अनुसार उससे बोला–'हे दुर्योधन ! जो पाण्डव किसी समय तेरी आज्ञा की परवाह नहीं करते थे और न ही तेरे शासन में थे, उन राज्यलक्ष्मी से रहित वनवासी पाण्डवों को अपन देखें । सुना है कि वे द्वैतवन में सरोवर तट पर ब्राह्मणों और वनवासियों के साथ रह रहे हैं । तो हे महाराज ! परम राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न आप उन पाण्डवों को सन्तप्त करने के लिये चिढ़ाने के लिये जायँ ।...। सम्पन्न स्थिति वाले मनुष्य को दुःखावस्था में वर्त्तमान शत्रुओं को देखकर वैसा ही परम सुख मिलता है, जैसे पर्वतस्थित मनुष्य को नीची भूमि पर रखड़ते हुए को देखकर होता है। मनुष्य को पुत्र की, धन की या राज्य की प्राप्ति से भी वैसी प्रसन्नता नहीं होती, जैसी कि अपने शत्रु को दीनदशा में देखकर होती है । वृक्ष की छाल और मृगचर्म धारण किये अर्जुन को वनाश्रम में देखकर किस सम्पन्न मनुष्य को सुख नहीं होगा । उत्तम

---

232 'यैः स्म ते नाद्रियेताज्ञा न च ये शासने स्थिताः । पश्यामस्तान् श्रिया हीनान् पाण्डवान् वनवासिनः ।। श्रूयते हि महाराज सरो द्वैतवनं प्रति । वसन्तः पाण्डवाः सार्धं ब्राह्मणैर्वनवासिभिः ।। स प्र याहि महाराज श्रिया परमया युतः । तापयन् पाण्डुपुत्रांस्त्वं रश्मिवानिव तेजसा ।।... समस्थो विषमस्थान् हि दुर्हृदो योऽभिवीक्षते । जगतीस्थानिवाद्रिस्थः किमतः परमं सुखम् ।। न पुत्रधनलाभेन न राज्येनापि विन्दति । प्रीतिं नृपतिशार्दूल याममित्राघदर्शनात् ।। किं नु तस्य सुखं न स्यादाश्रमे यो धनञ्जयम् । अभिवीक्षेत सिद्धार्थो वल्कलाजिनवाससम् ।। सुवाससो हि ते भार्या वल्कलाजिनसंवृताम् । पश्यन्तु दुःखितां कृष्णां सा च निर्विद्यतां पुनः' (महाभा.वन. २३७.१२-१४, १८-२१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

वस्त्रों से सुभूषित तुम्हारी स्त्रियाँ; पेड़ की छाल और मृगचर्म से ढकी हुई दुःख में डूबी द्रौपदी को देखें। तब वह द्रौपदी और भी अधिक दुःखी होगी[232]।

'कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन प्रसन्न तो हुआ, किन्तु फिर दीन बनकर बोला – 'हे कर्ण जो तुम कह रहे हो, वह सब मेरे भी मन में है। किन्तु कठिनाई यह है, कि द्वैत-वन में जाने की अनुमति धृतराष्ट्र से मिलना सम्भव नहीं है, क्योंकि पिताजी उन पाण्डवों के लिये विलाप करते रहते हैं और उनकी तपःसाधना के कारण उनको अधिक बलवान् और योग्य मानते हैं। बाकी मुझे भी महान् हर्ष होगा, जब मैं दुःखी अवस्था में पड़े हुए भीम, अर्जुन और द्रौपदी को देखूँगा। सारी पृथिवी के राज्य को पाकर भी मुझे इतनी प्रसन्नता नहीं होगी, जितनी उन पाण्डुपुत्रों को वन में पेड़ की छाल और मृगचर्म धारण किये हुओं को देखकर होगी। हे कर्ण! इससे भी अधिक बढ़िया बात क्या हो सकती है, कि मैं वन में द्रौपदी को गेरुए वस्त्र धारण की हुई को देखूँ। जब युधिष्ठिर और भीमसेन मुझे परम लक्ष्मी से सम्पन्न देखेंगे तो मानो मुझे नया जीवन प्राप्त हो गया। पर मुझे कोई ऐसा उपाय नहीं दिख रहा है, जिससे हम उस वन में जा सकें और तदर्थ पिताजी हमें

---

[233]कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः। हृष्टो भूत्वा पुनर्दीन इदं वचनमब्रवीत्॥ ब्रवीषि यदिदं कर्ण सर्वं मनसि मे स्थितम्। न त्वभ्यनुज्ञां लप्स्यामि गमने यत्र पाण्डवाः॥ परिदेवति तान् वीरान् धृतराष्ट्रो महीपतिः। मन्यतेऽभ्यधिकांश्चापि तपोयोगेन पाण्डवान्॥...। ममापि हि महान् हर्षो यदहं भीमफाल्गुनौ क्लिष्टावरण्ये पश्येयं कृष्णया सहिताविति॥ न तथा ह्याप्नुयां प्रीतिमवाप्य वसुधामिमाम्॥ दृष्ट्वा यथा पाण्डुसुतान् वल्कलाजिनवाससः॥ किं नु स्यादधिकं तस्माद् यदहं द्रुपदात्मजाम्। द्रौपदीं कर्ण पश्येयं काषायवसनां वने॥ यदि मां धर्मराजश्च भीमसेनश्च पाण्डवः। युक्तं परमया लक्ष्म्या पश्येतां जीवितं भवेत्॥ उपायं न तु पश्यामि येन गच्छेम तद् वनम्। यथा चाभ्यनुजानीयाद् गच्छन्तं मां महीपतिः॥ स सौबलेन सहितस्तथा दुःशासनेन च। उपायं पश्य निपुणं येन गच्छेम तद् वनम्' (महाभा.वन. २३८.१-१३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

अनुमति दे दें। सो तुम शकुनि और दुःशासन के साथ मिलकर कोई ऐसी तरकीब लगाओ जिससे हम वन में जा सकें[233]।

तब कर्ण और शकुनि ने धृतराष्ट्र को वन में स्थित घोषों (गायों के स्थानों) में जाकर गोपालों को उन्हें उनका कर्त्तव्य याद दिलाने का तथा बछड़ों के चिह्नीकरण का और आखेट का बहाना लगाकर तथा यह विश्वास दिलाकर कि हम पाण्डवों वाले वनभाग में नहीं जायेंगे और न ही कोई अनार्योचित काम वहाँ होगा। तब धृतराष्ट्र ने इच्छा न होते हुए भी दुर्योधन को मन्त्रियों सहित वन में जाने की अनुमति दे दी[234]।

अनुमति मिलने पर दुर्योधन; कर्ण, शकुनि, दुःशासन तथा अन्य भाईयों के साथ परिवार की अनेकों स्त्रियों को साथ लेकर निकल पड़ा। साथ में बड़ी सेना भी थी। द्वैत वन की ओर इनको जाते हुए देखकर नगरवासी भी अपनी स्त्रियों सहित इनके पीछे चल पड़े[235]। उस वन में पहुँचकर दुर्योधन ने घोषों (गोपालग्रामों) के समीप अपना डेरा डाला। वहाँ उसने सैंकड़ों हजारों गौओं को देखा और भृत्यों के द्वारा उन्हें नाम्ना चिन्हों

---

234 'अनन्तरं राधेयः शकुनिश्च विशांपते। आहतुः पार्थिवश्रेष्ठं धृतराष्ट्रं जनाधिपम्॥ रमणीयेषु देशेषु घोषाः सम्प्रति कौरव। स्मारणे समयः प्राप्तो वत्सानामपि चाङ्कनम्॥ मृगया चोचिता राजन्नस्मिन् काले सुतस्य ते। दुर्योधनस्य गमनं समनुज्ञातुमर्हसि। स्मारणं तु चिकीर्षामो न तु पाण्डवदर्शनम्। न चानार्यसमाचारः कश्चित्तत्र भविष्यति॥ न च तत्र गमिष्यामो यत्र तेषां प्रतिश्रयः। एवमुक्तः शकुनिना धृतराष्ट्रो जनेश्वरः। दुर्योधनं सहामात्यमनुजज्ञे न कामतः॥ (महाभा.वन. २३९. ३-५,२०,२१)

235 अनुज्ञातस्तु गान्धारिः कर्णेन सहितस्तदा। निर्ययौ भरतश्रेष्ठो बलेन महता वृतः॥ दुःशासनेन च तथा सौबलेन च धीमता। संवृतो भ्रातृभिश्चान्यैः स्त्रीभिश्चापि सहस्रशः॥ तं निर्यान्तं महाबाहुं द्रष्टुं द्वैतवनं सरः। पौराश्चानुययुः सर्वे सहदारा वनं च तत्॥ (महाभा.वन. २३९.२३-२५)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

और पहचानों से चिह्नित करवाया। बछड़ों के और अन्य समीपस्थ पशुओं के ऊपर भी चिह्न लगवाये। उसके पश्चात् वह मतवाले भौंरों से गुंजित और नीलकंठों की ध्वनि से युक्त द्वैतवन के उस सरोवर की ओर बड़े छोटे के क्रम में चल पड़ा जहाँ स्वाभाविक रूप से पहले ही युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी सहित उस सरोवर के पास रह रहे थे।

उस द्वैतवन के सरोवर वाले उपवन में जैसे ही दुर्योधन की सेना की अग्रिम टुकड़ी प्रवेश करने लगी, तभी द्वार पर गन्धर्व चित्रसेन के गन्धर्वों ने उसे रोक दिया। क्योंकि चित्रसेन गन्धर्व पहले से ही अपने समुदाय-सहित क्रीडा-विहार के लिये आया हुआ था। तब दुर्योधन के सैनिकों ने कहा कि धृतराष्ट्र के महाबली पुत्र दुर्योधन यहाँ विहार के लिये आ रहे हैं, इसलिये तुम यहाँ से हट जाओ। तब गन्धर्वों ने उन्हें धमकाते हुए कहा, कि तुम शीघ्र अपने कौरव राजा के ही पास पहुँच जाओ, नहीं तो तुम आज यमराज के पास पहुँच जाओगे। गन्धर्वों के ऐसा कहने पर वे उधर ही भाग चले जिधर दुर्योधन था[236]।

---

[236]अथ दुर्योधनो राजा तत्र तत्र वने वसन्। जगाम घोषानभितस्तत्र चक्रे निवेशनम्॥ ददर्श स तदा गावः शतशोऽथ सहस्रशः। अङ्कैर्लक्षैश्च ताः सर्वा लक्षयामास पार्थिवः॥ अङ्कयामास वत्सांश्च जज्ञे चोपसृतांस्त्वपि॥ अगच्छदानुपूर्व्येण पुण्यं द्वैतवनं सरः। मत्तभ्रमरसंजुष्टं नीलकण्ठरवाकुलम्॥... यदृच्छया च तत्रस्थो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः। कृत्वा निवेशमभितः सरसस्तस्य कौरव। द्रौपद्या सहितो धीमान् धर्मपत्न्या नराधिपः॥ प्रविशन्तं वनद्वारि गन्धर्वाः समवारयन् सेनाग्र्यं धार्तराष्ट्रस्य प्राप्तं द्वैतवनं सरः॥ तत्र गन्धर्वराजो वै पूर्वमेव विशांपते। कुबेरभवनाद्राजन्नाजगाम गणावृतः॥ कौरवा ऊचुः- राजा दुर्योधनो नाम धृतराष्ट्रसुतो बली। विजिहीर्षुरिहायाति तदर्थमपसर्पत। गन्धर्वा जगदुः- गच्छध्वं त्वरिताः सर्वे यत्र राजा स कौरवः। न चेदद्यैव गच्छध्वं धर्मराजनिवेशनम्॥ एवमुक्तास्तु गन्धर्वै राज्ञः सेनाग्रयायिनः। सम्प्राद्रवन् यतो राजा धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् (महाभा.वन. २४०.१...३१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

भागकर आये अपने सैनिकों को दुर्योधन ने कहा – मेरा बुरा करने वाले उन अधर्मियों को दण्ड दो, चाहे वहाँ देवों सहित इन्द्र भी क्यों न हो। दुर्योधन की आज्ञा सुनकर दुर्योधन के भाई और अन्य हजारों योद्धा सिंहनाद करके उधर दौड़े और गन्धर्वों द्वारा शान्तिपूर्वक मना करने पर भी कौरव सैनिक उनकी परवाह न करके उस वम में घुस गये। इस बात का जब चित्रसेन को पता लगा, तो उसने क्रुद्ध होकर गन्धर्वों को आदेश दिया, कि उन कौरवों को दण्डित करो। चित्रसेन से आदेश पाते ही गन्धर्व हथियार लेकर कौरवों पर आक्रमण करने को दौड़ पड़े। हथियारों से लैस गन्धर्वों को आते देखकर, कौरव सैनिक दुर्योधन के देखते-देखते इधर-उधर भाग गये। एक कर्ण अवश्य ऐसा था, जो दुर्योधन के युद्ध से विमुख भाइयों और सैनिकों को भागते देखकर भी वहाँ डटा रहा। उसने गन्धर्वों को बाण वर्षा से ढक दिया[237]।

उसके बाद दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, विकर्ण और दूसरे अनेक भाइयों ने अपने गरुड़ों की सी ध्वनि वाले रथों पर बैठकर उन गन्धर्वों पर दबिश दी और कर्ण को

---

[237]दुर्योधन उवाच – 'शासतैनानधर्मज्ञान् मम विप्रियकारिणः। यदि प्रक्रीडते देवैः सर्वैः सह शतक्रतुः॥ दुर्योधनवचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रा महाबलाः। सर्व एवाभिसन्नद्धा योधाश्चापि सहस्रशः। ततः प्रमथ्य सर्वांस्तांस्तद् वनं विविशुर्बलात्। सिंहनादेन महता पूरयन्तो दिशो दश॥ ते वार्यमाणा गन्धर्वैः साम्नैव वसुधाधिप।ताननादृत्य गन्धर्वांस्तद् वनं विवशुर्महत् ॥ गन्धर्वराजस्तान् सर्वानब्रवीत् कौरवान् प्रति। अनार्याञ्छासतेत्येतांश्चित्रसेनोऽत्यमर्षणः। अनुज्ञाताश्च गन्धर्वाश्चित्रसेनेन भारत। प्रगृहीतायुधाः सर्वे धार्तराष्ट्रानभिद्रवन्। तान् दृष्ट्वा पततः शीघ्रान् गन्धर्वानुद्यतायुधान्॥ प्राद्रवंस्ते दिशः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः। तान् दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान् धार्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान्॥॥ राधेयस्तु तदा वीरो नासीत् तत्र पराङ्मुखः। आपतन्तीं तु सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम्। महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत् ॥ (महाभा.वन. २४१.३. ..१३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य–प्रकरण

आगे करके वे फिर युद्ध करने लगे। तब रौएँ खड़े करने वाला घनघोर युद्ध हुआ। तब बाणों से पीड़ित गन्धर्व धीमे पड़ गये। उनको धीमा देखकर कौरव दहाड़ने लगे। गन्धर्वों को सताया जाता देखकर क्रुद्ध चित्रसेन अपने स्थान से उठा और उसने कौरवों का वध करने का मन बनाया और अनेक भांति के विचित्र पैंतरों का ज्ञाता चित्रसेन मायायुक्त अस्त्र को लेकर युद्ध करने लगा। चित्रसेन की उस माया (=गुप्त युद्धशैली) से कौरव योद्धा किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये और चित्रसेन की भारी सेना से मार खाये हुए वे कौरव जो जीत की आस लिये हुए थे, अब डरकर युद्ध से भाग खड़े हुए। किन्तु पर्वत के समान अडिग कर्ण तथा दुर्योधन और शकुनि बहुत चुटिल होने पर भी गन्धर्वों से लड़ते रहे। तभी सैंकड़ों हजारों गन्धर्व मारने की इच्छा से कर्ण की ओर दौड़े। उन हजारों गन्धर्वों ने कर्ण के रथ को खण्डित करके टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब कर्ण उस खण्डित रथ से कूदा और विकर्ण के रथ पर चढ़कर अपने बचाव के लिये उसने घोड़ों को हांका[238]।

---

238 'अथ दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः। दुःशासनो विकर्णश्च ये चान्ये धृतराष्ट्रजाः॥ न्यहनंस्तत् तदा सैन्यं रथैर्गरुडनिःस्वनैः॥ भूयश्च योधयामासुः कृत्वा कर्णमथाग्रतः॥ तदा सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम्॥ ततस्ते मृदवोऽभूवन् गन्धर्वाः शरपीडिताः॥ उच्चुक्रुशुश्च कौरव्या गन्धर्वान् प्रेक्ष्य पीडितान्। गन्धर्वांस्त्रासितान् दृष्ट्वा चित्रसेनो ह्यमर्षणः॥ उत्पपातासनात् क्रुद्धो वधे तेषां समाहितः। ततो मायास्त्रमास्थाय युयुधे चित्रमार्गवित्। तयामुह्यन्त कौरव्याश्चित्रसेनस्य मायया॥ ततः सम्पीड्यमानास्ते बलेन महता तदा। प्राद्रवन्त रणे भीता ये च राजन् जिगीषवः॥ कर्णो वैकर्तनो राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः। दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः। गन्धर्वान् योधयामासुः समरे भृशविक्षताः॥ सर्व एव तु गन्धर्वाः शतशोऽथ सहस्रशः। जिघांसमानाः सहिताः कर्णमभ्यद्रवन् रणे॥ गन्धर्वा बहुसाहस्रास्तिलशो व्यधमन् रथम्। ततो रथादवप्लुत्य सूतपुत्रोऽसिचर्मभृत्। विकर्णरथमास्थाय मोक्षायाश्वानचोदयत्' (महाभा.वन. २४१. १७...३२)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

कृपाचार्य-प्रकरण

गन्धर्वों के द्वारा कर्ण के रथ को खण्डित देखकर और कर्ण को भी भागा देखकर सारी कौरव-सेना दुर्योधन के देखते-देखते भाग खड़ी हुई। उन अपने भाइयों को और योद्धाओं को भागते देखकर भी दुर्योधन ने मैदान नहीं छोड़ा। उसने गन्धर्वों की बड़ी सेना को आती हुई देखकर उसे बाणों की वर्षा से ढक दिया। उस बाण-वर्षा की चिन्ता न करके गन्धर्वों ने दुर्योधन को मारने की इच्छा से उसके रथ को चारों ओर से घेर लिया और उन्होंने बाणों से उसके रथ के जुए, बम्ब, छत, त्रिवेणु और बैठक को तथा ध्वज को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। फिर घोड़ों और सारथि को भी मार डाला। तब दुर्योधन को रथ से भूमि पर गिरते हुए देखकर महाबाहु चित्रसेन ने झपटकर उसे जीते जी पकड़ लिया। तभी गन्धर्वों ने दुःशासन के रथ को भी चारों ओर से घेरकर उसे भी बन्दी बना लिया। दूसरे गन्धर्व दुर्योधन के भाई विविंशति को और कर्णपुत्र चित्रसेन को पकड़कर ले चले। इसी प्रकार अन्य गन्धर्व दुर्योधनसहोदर विन्द और अनुविन्द को तथा सब राज-स्त्रियों को बन्दी बनाकर चलने लगे। गन्धर्वों द्वारा कौरव-सेना तितर-बितर कर दी गई[239]।

---

[239] गन्धर्वैस्तु महाराज भग्ने कर्णे महारथे। सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः॥ तान् दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान् धार्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान्। दुर्योधनो महाराजो नासीत्तत्र पराङ्मुखः॥ तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम्। महता शरवर्षेण सोऽभ्यवर्षदरिन्दमः॥ अचिन्त्य शरवर्षं तु गन्धर्वास्तस्य तं रथम्। दुर्योधनं जिघांसन्तः समन्तात् पर्यवारयन्॥ युगमीषां वरूथं च तथैव ध्वजसारथी। अश्वांस्त्रिवेणुं तल्पं च तिलशो व्यधमन् शरैः॥ दुर्योधनं चित्रसेनो विरथं पतितं भुवि। अभिद्रुत्य महाबाहुर्जीवग्राहमथाग्रहीत्॥ तस्मिन् गृहीते राजेन्द्र स्थितं दुःशासनं रथे। पर्यगृह्णन्त गन्धर्वाः परिवार्य समन्ततः॥ विविंशतिं चित्रसेनमादायान्ये विदुद्रुवुः। विन्दानुविन्दावपरे राजदारांश्च सर्वशः॥ सैन्यं तद् धार्तराष्ट्रस्य गन्धर्वैः समभिद्रुतम्॥ (महाभा.वन. २४२.१-९)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

उस युद्धभूमि से पहले से भागे हुए कौरव सैनिक मिलकर पाण्डवों की ओर गये। दुर्योधन के बन्दी बना लिये जाने पर छकड़ों वाले, साथ आये दुकानदार और अनेकों वाहनों वाले भी सबके सब पाण्डवों की शरण में जाने लगे। सैनिक बोले – प्रियदर्शी महाराज दुर्योधन को गन्धर्व लोग पकड़कर ले जा रहे हैं। हे पाण्डवो ! उनके पीछे दौड़ो। दुर्योधन के अमात्य भी यह गुहार मचाते हुए कि 'अरे गन्धर्व लोग दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख तथा दुर्जय को बांधकर तथा सब राज-महिलाओं को हकाल कर ले जा रहे हैं' पीड़ित और दीन होकर युधिष्ठिर के पास पहुँचे। दुर्योधन के उन बूढ़े अमात्यों को दुःखी, दीन और युधिष्ठिर से याचना करते हुए देखकर भीमसेन बोला– 'हाथी-घोड़ों से लैस होकर बड़े जतन से हमें जो कुछ करना था, वह कार्य गन्धर्वों ने कर दिया है। सौभाग्य से संसार में कोई पुरुष हमारा भी प्रियकारी है, जिसने हम बैठे हुओं का ही यह भार दूर कर दिया है। ठंडी वायु के झोंकों को और धूपगर्मी को सहन कर रहे और तपस्या से दुर्बल हुए हम लोगों को वह दुर्बुद्धि निहारने आया है। अधर्माचारी उस दुर्योधन का जो अनुसरण करते हैं, वे भी पराजय को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अपशब्द बोलने वाले भीमसेन को युधिष्ठिर ने कहा – भाई ! यह समय कठोर वचन बोलने का नहीं है[240]।

---

240 'पूर्वं प्रभग्नाः सहिताः पाण्डवानभ्ययुस्तदा॥ शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः। शरणं पाण्डवान् जग्मुर्ह्रियमाणे महीपतौ। सैनिका ऊचुः– प्रियदर्शी महाबाहुर्धार्तराष्ट्रो महाबलः। गन्धर्वैर्ह्रियते राजा पार्थास्तमनुधावत॥ दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुर्जयस्तथा। बद्ध्वा ह्रियन्ते गन्धर्वै राजदाराश्च सर्वशः॥ इति दुर्योधनामात्याः क्रोशन्तो राजगृद्धिनः। आर्ता दीनास्ततः सर्वे युधिष्ठिरमुपागमन्॥ तांस्तथा व्यथितान् दीनान् भिक्षमाणान् युधिष्ठिरम्। वृद्धान् दुर्योधनामात्यान् भीमसेनोऽभ्यभाषत॥ महता हि प्रयत्नेन संनह्य गजवाजिभिः। अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम्॥ दिष्ट्या लोके पुमानस्ति कश्चिदस्मत्प्रिये स्थितः। येनास्माकं हृतो भार आसीनानां सुखावहः॥ शीतवातातपसहांस्तपसा चैव कर्शितान्। समस्थो विषमस्थान् हि द्रष्टुमिच्छति दुर्मतिः।

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

कृपाचार्य-प्रकरण

युधिष्ठिर आगे बोले – भय से पीड़ित और हमारी शरण चाहने वाले इन कौरवों को तुम ऐसे शब्द क्यों कह रहे हो । जाति बन्धुओं में फूट पड़ती है, कलह भी होते हैं और शत्रुता भी होती रहती है, पर कुलधर्म थोड़े ही नष्ट हो जाता है। जब बन्धुओं के कुल को कोई बाहर का मनुष्य परेशान करता है – मारता है, तो सज्जन पुरुष अपने कुल के लोगों पर बाहर के आक्रमण को सहन नहीं करते हैं । सो दूसरों के द्वारा आक्रमण होने पर हम एक सौ पांच हैं । हाँ, परस्पर के विरोध के समय हम पांच और वे सौ हैं । वह दुर्बुद्धि दुर्योधन जानता है, कि हम यहाँ बहुत समय से रह रहे हैं, सो उसने हमारा तिरस्कार करके यह अप्रिय कार्य किया है । अब गन्धर्व चित्रसेन के द्वारा दुर्योधन के बन्दी बना लिये जाने से और स्त्रियों के भी बाहर के लोगों द्वारा घेर लिये जाने से हमारा ही कुल नष्ट हो रहा है । सो शरण में आये हुओं की तथा कुल की रक्षा के लिये तुम उठो और बिना देरी किये तैयार हो जाओ। अर्जुन, नकुल, सहदेव और तुम बन्दी बनाकर लिये जाते हुए दुर्योधन को छुड़ा लो'। वरप्रदान, राज्यप्राप्ति और पुत्रजन्म इन तीनों के बराबर है शत्रु को पीड़ा से बचाना तथा इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है, कि

अधर्माचारिणस्तस्य कौरव्यस्य दुरात्मनः। ये शीलमनुवर्त्तन्ते ते पश्यन्ति पराभवम्॥ एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं भीमसेनमपस्वरम्। न कालः परुषस्यायमिति राजाभ्यभाषत' (महाभा.वन. २४२.९...२२)

241अस्मानभिगतांस्तात भयार्तान् शरणैषिणः। कौरवान् विषमप्राप्तान् कथं ब्रूयास्त्वमीदृशम्॥ भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर। प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति॥ यदा तु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्यः पोथयते कुलम्। न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्येनाभिप्रधर्षणम्॥ परैः परिभवे प्राप्ते वयं पञ्चोत्तरं शतम्। परस्परविरोधे तु वयं पञ्च शतं तु ते॥ जानात्येष हि दुर्बुद्धिरस्मानिह चिरोषितान्। स एवं परिभूयास्मानकार्षीदिदमप्रियम्॥ दुर्योधनस्य ग्रहणाद् गन्धर्वेण बलात् प्रभो। स्त्रीणां बाह्याभिमर्षाच्च हतं भवति नः कुलम्। शरणं च प्रपन्नानां त्राणार्थं च कुलस्य च । उत्तिष्ठत नरव्याघ्राः सज्जीभवत मा चिरम्॥ अर्जुनश्च यमौ चैव त्वं च वीरापराजितः।

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

कृपाचार्य-प्रकरण

विपत्ति में पड़ा दुर्योधन तुम्हारी भुजाओं के बल के सहारे अपने छुटकारे की आस लगाये हुए है[241]।

देखो, धृतराष्ट्र के पुत्रों के सुन्दर सुनहरी ध्वजाओं वाले रथ खड़े हैं। इन पर चढ़कर युद्ध में गन्धर्वों से लड़ने के लिये सावधान हो जाओ और बिना देरी किये दुर्योधन के छुटकारे के लिये प्रयत्न करो। युधिष्ठिर के वचन को सुनकर अर्जुन ने दुर्योधन की मुक्ति रूपी बड़े भाई के आदेश को पूरा करने के लिये प्रतिज्ञा कर ली। अर्जुन बोला— यदि गन्धर्व लोग शान्ति से — सीधी तरह से धृतराष्ट्र के पुत्रों को नहीं छोड़ेंगे, तो आज भूमि गन्धर्वराज का खून पीएगी। सत्यवादी अर्जुन की इस प्रतिज्ञा को सुनकर पुनः कौरवों के जी में जी आया[242]।

तब युधिष्ठिर के वचनानुसार भीमसेन आदि महारथियों ने सुनहरी कारीगरी वाले

मोक्षयध्वं नरव्याघ्रा ह्रियमाणं सुयोधनम्॥ वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च पाण्डवाः। शत्रोश्च मोक्षणं क्लेशात् त्रीणि चैकं च तत् समम्॥ किं चाभ्यधिकमेतस्माद् यदापन्नः सुयोधनः। त्वद्बाहुबलमाश्रित्य जीवितं परिमार्गते' (महाभा.वन. २४३.१-७,१३,१४)

242'धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां विमलाः काञ्चनध्वजाः। एते रथा नरव्याघ्रा सर्वशस्त्रसमन्विताः॥ एतानास्थाय वै यत्ता गन्धर्वान् योद्धुमाहवे। सुयोधनस्य मोक्षाय प्रयतध्वमतन्द्रिताः॥ अजातशत्रोर्वचनं तच्छ्रुत्वा तु धनञ्जयः। प्रतिजज्ञे गुरोर्वाक्यं कौरवाणां विमोक्षणम्॥ अर्जुन उवाच — यदि साम्ना न मोक्ष्यन्ति गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान्। अद्य गन्धर्वराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम्॥ अर्जुनस्य तु तां श्रुत्वा प्रतिज्ञां सत्यवादिनः। कौरवाणां तदा राजन् पुनः प्रत्यागतं मनः' (महाभा.वन. २४३. ८,१०,२०-२२)

243'युधिष्ठिरवचः श्रुत्वा भीमसेनपुरोगमाः। प्रहृष्टवदनाः सर्वे समुत्तस्थुर्नरर्षभाः। अभेद्यानि ततः सर्वे समनह्यन्त भारत। जाम्बूनदविचित्राणि कवचानि महारथाः। आयुधानि च दिव्यानि विविधानि समाददुः॥ तान् रथान् साधुसम्पन्नान् संयुक्तान्

कवचों को धारण किया, दिव्य आयुधों को बांधा और तेज घोड़ों वाले उन रथों पर चढ़कर चल पड़े। तब कौरव सैनिक खुशी से चिल्लाने लगे। तभी पाण्डवों को आते देखकर सारे गन्धर्व भी क्षण भर में वहाँ आ गये। तब अर्जुन ने उन रणबांकुरे गन्धर्वों को शान्तिपूर्वक कहा कि मेरे भाई राजा दुर्योधन को छोड़ दो। गन्धर्वराज का यह निन्दनीय कार्य उचित नहीं है। पराई स्त्रियों पर आक्रमण करना तथा सामान्य मनुष्यों से उलझना भी अनुचित है। इसलिये धर्मराज युधिष्ठिर के आदेश से इन महापराक्रमी धृतराष्ट्रपुत्रों को और महिलाओं को मुक्त कर दो। हे गन्धर्वो! यदि तुम सीधे तरीके से दुर्योधन आदि को नहीं छोड़ोगे, तो मैं पराक्रम से दुर्योधन को छुड़वा लूँगा। ऐसा कहकर अर्जुन ने उन गन्धर्वों की ओर तीखे बाण बरसाये। वैसे ही महाबली गन्धर्वों ने भी पाण्डवों पर बाण मारे। तब शीघ्रकारी गन्धर्वों के और भयङ्कर वेग वाले पाण्डवों के मध्य में घमासान युद्ध होने लगा[243]।

अर्जुन के बाणों से तितर-बितर किये गये गन्धर्व पाण्डवों के समीप फटकने की हिम्मत नहीं कर सके। गुस्साये हुए गन्धर्वों के हजारों सैनिकों को अर्जुन ने मृत्युलोक

जवनैर्हयैः। आस्थाय रथशार्दूलाः शीघ्रमेव ययुस्ततः। ततः कौरवसैन्यानां प्रादुरासीन्महास्वनः। जितकाशिनश्च खचरास्त्वरिताश्च महारथाः। क्षणेनैव वने तस्मिन् समाजग्मुरभीतवत्॥ ततस्तान् युधि दुर्धर्षान् सव्यसाची परन्तपः॥ सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच खचरान् रणे। विसर्जयत राजानं भ्रातरं मे सुयोधनम्॥ न तद् गन्धर्वराजस्य युक्तं कर्म जुगुप्सितम्। परदाराभिमर्शश्च मानुषैश्च समागमः। उत्सृज्यध्वं महावीर्यान् धृतराष्ट्रसुतानिमान्। दारांश्चैषां विमुञ्चध्वं धर्मराजस्य शासनात्॥ यदा साम्ना न मुञ्चध्वं गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान्। मोक्षयिष्यामि विक्रम्य स्वयमेव सुयोधनम्। एवमुक्त्वा ततः पार्थः सव्यसाची धनञ्जयः। ससर्ज निशितान् बाणान् खचरान् खचरान् प्रति॥ तथैव शरवर्षेण गन्धर्वास्ते बलोत्कटाः। पाण्डवानभ्यवर्त्तन्त पाण्डवाश्च दिवौकसः॥ ततः सुतुमलं युद्धं गन्धर्वाणां तरस्विनाम्। बभूव भीमवेगानां पाण्डवानां च भारत॥ (महाभा.वन. २४४.१...७,११,१२,१७-२२)

भेज दिया। महाबली भीमसेन ने भी तीखे बाणों से सैंकड़ों गन्धर्वों को मार गिराया। बलदुर्मद नकुल और सहदेव ने भी सैंकड़ों गन्धर्वों को मौत की नींद सुला दिया[244]।

अर्जुन के द्वारा चलाये गये स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, सौर, आग्नेय, और सौम्य आदि अस्त्रों से झुलसे हुए गन्धर्व अत्यन्त दुःखी हो गये। गन्धर्वों को अर्जुन के द्वारा भयभीत किया गया हुआ देखकर चित्रसेन गदा लेकर अर्जुन पर लपका। गदाधारी गन्धर्व चित्रसेन को झपटते देखकर अर्जुन ने अपने बाणों से उसकी लोहे की गदा के सात टुकड़े कर दिये। बाणों से काटी गई अपनी गदा को देखकर चित्रसेन अपने को छिपा कर अर्जुन से लड़ने लगा। उसे अन्तर्धान रूप से – छिप करके प्रहार करते हुए देखकर पहले तो दिव्य अस्त्रों से उसे मार मारी और फिर छिपे हुए का ही, शब्दवेधी बाण से वध करने का निश्चय किया। अर्जुन के उन शब्दवेधी अस्त्रों से पीड़ित किये जाते हुए गन्धर्वराज चित्रसेन ने अपने आपको प्रकट कर दिया और बोला हे अर्जुन! तुम अपने मित्र चित्रसेन को पहचानो। तब अपने मित्र चित्रसेन को निर्बल हुआ जानकर अर्जुन ने अपने छोड़े हुए अस्त्र को वापिस लौटा लिया। अर्जुन को अपना अस्त्र लौटाते हुए देखकर अन्य

---

[244]ते कीर्यमाणाः खगमाः शरवर्षैः समन्ततः। न शेकुः पाण्डुपुत्राणां समीपे परिवर्त्तितुम्। सहस्राणां सहस्राणि प्राहिणोद् यमसादनम्। आग्नेयेनार्जुनः संख्ये गन्धर्वाणां बलोत्कटः॥ तथा भीमो महेष्वासः संयुगे बलिनां वरः। गन्धर्वान् शतशो राजन् जघान निशितैः शरैः। माद्रीपुत्रावपि तथा युध्यमानौ बलोत्कटौ परिगृह्याग्रतो राजन् जघ्नतुः शतशः परान् (महाभा.वन. २४५.५,७-९)

[245]'स्थूणाकर्णेन्द्रजालं च सौरं चापि तथार्जुनः। आग्नेयं चापि सौम्यं ससर्ज कुरुनन्दनः॥ ते दह्यमाना गन्धर्वाः कुन्तीपुत्रस्य सायकैः। दैतेया इव शक्रेण विषादमगमन् परम्। गन्धर्वांस्त्रासितान् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रेण भारत। चित्रसेनो गदां गृह्य सव्यसाचिनमाद्रवत्॥ तस्याभिपततस्तूर्णं गदाहस्तस्य संयुगे। गदां सर्वायसीं पार्थः शरैश्चिच्छेद सप्तधा॥ स गदां बहुधा दृष्ट्वा कृत्तां बाणैस्तरस्विना। संवृत्य विद्ययात्मानं योधयामास पाण्डवम्॥ अन्तर्हितं तमालक्ष्य प्रहरन्तमथार्जुनः ताडयामास

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

पाण्डवों ने भी अपने बाणों की वर्षा बन्द कर दी, धनुष रख दिये और घोड़ों को भी रोक लिया। तब चित्रसेन और चारों पाण्डवों ने परस्पर कुशलक्षेम पूछा और रथों पर ही बैठे रहे[245]।

तब गन्धर्व-सेनाओं के मध्य में ही अर्जुन ने हंसते हुए, चित्रसेन से कहा – हे वीर! कौरवों को बन्दी बनाने में तुम्हारा क्या अभिप्राय था और स्त्रियों सहित इस दुर्योधन को क्यों पकड़ रखा है ? चित्रसेन बोला – यह पापी दुर्योधन और कर्ण आप लोगों को अनाथ के समान वन में दुःख पाते हुओं को जानकर, स्वयं सुखी बना हुआ, आपत्ति में पड़े हुए आप लोगों की झलक पाना चाहता था। आप लोगों की और द्रौपदी की हंसी उड़ाने के लिये ये यहाँ पहुँचे थे। इसीलिये हमने इन्हें कैद कर लिया। तब अर्जुन बोला – हे चित्रसेन ! धर्मराज युधिष्ठिर के कहने से तुम हमारे भाई दुर्योधन को छोड़ दो और यदि तुम मेरा भी प्रिय कार्य करना चाहते हो, तो इसे छोड़ दो[246]।

खचरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः। अन्तर्धानवधं चास्य चक्रे क्रुद्धोऽर्जुनस्तदा। शब्दवेधं समाश्रित्य बहुरूपो धनञ्जयः। स वध्यमानस्तैरस्त्रैरर्जुनेन महात्मना। ततोऽस्य दर्शयामास तदाऽऽत्मानं प्रियः सखा।। चित्रसेनस्तथोवाच सखायं युधि विद्धि माम्। चित्रसेनमथालक्ष्य सखायं युधि दुर्बलम्।। सं जहारास्त्रमथ तत् प्रसृष्टं पाण्डवर्षभः। दृष्ट्वा तु पाण्डवाः सर्वे संहृतास्त्रं धनञ्जयम्। संजहुः प्रद्रुतानश्वान् शरवेगान् धनूंषि च। चित्रसेनश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि पृष्ट्वा कौशलमन्योन्यं रथेष्वेवातस्थिरे। (महाभा.वन. १४५.१७,१८,२०–३०)

246 'ततोऽर्जुनश्चित्रसेनं प्रहसन्निदमब्रवीत्। मध्ये गन्धर्वसैन्यानां महेष्वासो महाद्युतिः। किं ते व्यवसितं वीर कौरवाणां विनिग्रहे। किमर्थं च सदारोऽयं निगृहीतः सुयोधनः।। चित्रसेन उवाच – दुर्योधनस्य पापस्य कर्णस्य च धनञ्जय। वनस्थान् भवतो ज्ञात्वा क्लिश्यमानाननाथवत्। समस्थो विषमस्थांस्तान् द्रक्ष्यामीत्यनवस्थितान्।। इमेऽवहसितुं प्राप्ता द्रौपदीं च यशस्विनीम्।। अर्जुन उवाच – उत्सृज्यतां चित्रसेन भ्राताऽस्माकं सुयोधनः। धर्मराजस्य संदेशान्मम चेदिच्छसि प्रियम्।। (महाभा.वन. २४६.१...५,९)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य–प्रकरण

चित्रसेन बोला – यह पापी दुर्योधन लोभी है । यह युधिष्ठिर को छलने वाला और द्रौपदी का अपमान करने वाला है, इसलिये यह छोड़ने के योग्य नहीं है। यह जो कुछ करने के लिये यहाँ द्वैतवन में आया था, उसे धर्मराज युधिष्ठिर जानते नहीं है, फिर भी तुम जैसा चाहो वैसा करो । तब वे सब युधिष्ठिर के पास गये । वहाँ गन्धर्वराज चित्रसेन ने दुर्योधन की करतूत के विषय में बताया । युधिष्ठिर ने यह सब सुनकर भी कौरवों को छुड़वा दिया और गन्धर्वों की प्रशंसा की और कहा – सौभाग्य से आप सब समर्थ बलवानों ने अमात्यों और सेना सहित इस दुष्ट दुर्योधन को नहीं मारा, यह अच्छी बात हुई । आप गन्धर्व लोगों ने इसे मुक्त करके मुझ पर भारी उपकार किया है । इससे हमारा कुल पददलित नहीं हुआ ।

उन कौरव बन्धुओं को और सब राजमहिलाओं को छुड़वा कर, यह कठिन काम करके पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और उन स्त्रियों ने, राजकुमारों ने और अन्य कौरवों ने पाण्डवों का मान किया । तब मुक्त हुए दुर्योधन से भाइयों सहित युधिष्ठिर ने प्रेमपूर्वक कहा – हे प्रिय ! फिर कभी ऐसा साहस मत करना । ऐसा व्यर्थ का साहस करने वाले सुख नहीं पाते हैं । अपने भाइयों सहित कल्याण की कामना करते हुए तुम स्वेच्छानुसार अपने घरों को जाओ और शत्रुता मत रखो[247] ।

---

[247]पापोऽयं नित्यसन्तुष्टो न विमोक्षणमर्हति। प्रलब्धा धर्मराजस्य कृष्णायाश्च धनञ्जय॥ नेदं चिकीर्षितं तस्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। जानाति धर्मराजो हि, श्रुत्वा कुरु यथेच्छसि॥ ते सर्व एव राजानमभिजग्मुर्युधिष्ठिरम्। अभिगम्य च तत् सर्वं शशंसुस्तस्य चेष्टितम्॥ अजातशत्रुस्तच्छ्रुत्वा गन्धर्वस्य वचस्तदा। मोक्षयामास तान् सर्वान् गन्धर्वान् प्रशशंस च॥ दिष्ट्या भवद्भिर्बलिभिः शक्तैः सर्वैर्न हिंसितः। दुर्वृत्तो धार्तराष्ट्रोऽयं सामात्यज्ञातिबान्धवः॥ उपकारो महांस्तात कृतोऽयं मम खेचरैः। कुलं न परिभूतं मे मोक्षणेऽस्य दुरात्मनः॥ ज्ञातींस्तानवमुच्याथ राजदारांश्च सर्वशः। कृत्वा च दुष्करं कर्म प्रीतियुक्ताश्च पाण्डवाः॥ सस्त्रीकुमारैः कुरुभिः पूज्यमाना महारथाः॥...। ततो दुर्योधनं मुक्तं भ्रातृभिः सहितस्तदा। युधिष्ठिरस्तु प्रणयादिदं वचनमब्रवीत्॥ मा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य–प्रकरण

देख लिया, कृपाचार्य जी ! दोनों के अन्तर को ! जो सत्य प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे, धर्म पर अडिग रहे। जिन्होंने आपत्ति में पड़े हुए अपने अपकार करने वालों पर दया करके उन्हें कैद से छुड़वाया। अपने आप को रणाग्नि में झोंक करके भी पराये लोगों की बन्दिश से मुक्त करवाया, उनको तो आपने शत्रु मान लिया। तथा जिन्होंने छल-कपट से पराई लक्ष्मी हथिया ली, जो सदा पाण्डवों की जान के ग्राहक बने रहे, जिन्होंने सदाचार को ताक पर रखकर एक सन्नारी का भरी सभा में अतिघोर अपमान किया, जिन्होंने धर्मारूढ़ पाण्डवों को वन में खदेड़ा और तिस पर सन्तुष्ट न होकर उन्हें चिढ़ाने के लिये, उनकी हँसी उड़ाने के लिये वन में गये और तदर्थ झूठे बहाने बनाकर अन्धे वृद्ध धृतराष्ट्र से अनुमति ली, वे आपके मित्र बन गये !! धन्य है आपकी बुद्धि को !!!

और यह बात नहीं है कि आपको इस घटना का पता न लगा हो। जब भीष्म पितामह को सब वृत्तान्त ज्ञात हो गया, तो आपको भी इसका ज्ञान हुआ ही होगा। यद्यपि दुर्योधन ने गन्धर्वों द्वारा स्वयं के बन्दी बनाये जाने को और पाण्डवों के हाथों अपने छुटकारे की घटना को छिपाने के लिये आमरण अनशन करने का नाटक तो बहुत किया और स्वयं ने हस्तिनापुर में किसी को इसे बताया भी नहीं[248]। फिर भी यह सब छिपा नहीं रह सका। तभी तो 'पाण्डवों के चले जाने पर, उनके द्वारा गन्धर्व-बन्धन से छुड़वाये हुए दुर्योधन के हस्तिनापुर आने पर भीष्म ने दुर्योधन से कहा – हे प्रिय ! मैंने

स्म तात पुनः कार्षीरीदृशं साहसं क्वचित्। नहि साहसकर्तारः सुखमेधन्ति भारत।। स्वस्तिमान् सहितः सर्वैर्भ्रातृभिः कुरुनन्दन। गृहान् व्रज यथाकामं वैमनस्यं च मा कृथाः' (महाभा.वन. २४६.१०–१५,१९–२३)

248 'न चाचचक्षे कस्मैचिदेतद्राजा सुयोधनः' (महाभा.वन. २५२.३७)

249 'एवं गतेषु पार्थेषु विसृष्टे च सुयोधने। आगते हास्तिनपुरं मोक्षिते पाण्डुनन्दनैः।। भीष्मोऽब्रवीन्महाराज धार्तराष्ट्रमिदं वचः। उक्तं तात यथा पूर्वं गच्छतस्ते तपोवनम्।। गमनं मे न रुचितं तव तत्र कृतं च ते। ततः प्राप्तं त्वया वीर ग्रहणं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

तुम्हारे उस द्वैतवन में जाने से पहले ही तुम्हें कहा था, कि तुम्हारा वहाँ जाना और कुछ करना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। तब तुमं नहीं माने। तत्पश्चात् तुम शत्रुओं द्वारा जबर्दस्ती बन्दी बना लिये गये और धर्मात्मा पाण्डवों के हाथों तुम्हारा छुटकारा हुआ। तब भी तुम्हें कोई लज्जा नहीं हो रही है? तुम्हारे और सारी सेना के चिल्लाते रहने पर भी तुम्हारे और समस्त सैन्यबल के सामने कर्ण डरकर युद्ध से भाग गया था। देख लिया तुमने पाण्डवों का और कर्ण का पराक्रम! यह कर्ण धनुर्वेद में, पराक्रम में और धर्माचरण में पाण्डवों का चतुर्थांश भी नहीं है। इसलिये मैं यही उचित और कल्याणकारी समझता हूँ, कि तुम इस कुल की वृद्धि के लिये महात्मा पाण्डवों से सन्धि कर लो। भीष्म के ऐसा कहने पर दुर्योधन हंसा और झटके से उठकर शकुनि के साथ वहाँ से चला गया[249]।

आचार्य कृप जी! इतना सब जानने पर भी भीष्म, द्रोण और आप जैसे वेदवित्, धर्मज्ञ और मतिमान् लोग क्यों इस महाविनाश के मूल दुर्योधन से उसकी तिकड़ी से चिपके रहे? निश्चय ही आप लोगों की मति, अमतिं हो गई थी!

कृपाचार्य? [६]

कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में युधिष्ठिर को कृपाचार्य का उत्तर

अन्ततः दोनों ओर के लाखों-लाख भट एक-दूसरे को मारकर अपनी विजय

शत्रुभिर्बलात्॥ मोक्षितश्चासि धर्मज्ञैः पाण्डवैर्न च लज्जसे। प्रत्यक्षं तव गान्धारे ससैन्यस्य विशांपते। सूतपुत्रोऽपयाद् भीतो गन्धर्वाणां तदा रणात्। क्रोशतस्तव राजेन्द्र ससैन्यस्य नृपात्मज। दृष्टस्ते विक्रमश्चैव पाण्डवानां महात्मनाम्। कर्णस्य च महाबाहो सूतपुत्रस्य दुर्मतेः॥ न चापि पादभाक् कर्णः पाण्डवानां नृपोत्तम। धनुर्वेदे च शौर्ये च धर्मे वा धर्मवत्सल॥ तस्मादहं क्षमं मन्ये पाण्डवैस्तैर्महात्मभिः। सन्धिं सन्धिविदां श्रेष्ठ कुलस्यास्य विवृद्धये॥ एवमुक्तस्तु भीष्मेण धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः। प्रहस्य सहसा राजन् विप्रतस्थे ससौबलः (महाभा.वन. २५३.३-११)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

निश्चित करने के लिये कुरुक्षेत्र में आ जमे। दोनों सेनाओं के आमने-सामने खड़े हो जाने पर, युधिष्ठिर ने अचानक अपने कवच और हथियार अपने रथ में रख दिये और किसी से बिना कुछ कहे पैदल ही, कौरव-पक्ष के मान्य वृद्ध जनों की ओर चल पड़े। पहले उन्होंने भीष्म को और फिर द्रोण को प्रणाम किया और आशीर्वाद लिया तथा उनकी लाचारी की बात सुनी। हे कृपाचार्य जी! तब युधिष्ठिर ने आपके चरणों में प्रणाम करके प्रदक्षिणा की और आपसे आशीर्वाद मांगा। उस समय आपने भी भीष्म और द्रोण के समान कहा – 'हे महाराज! मनुष्य अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है। यह बात सत्य है। मैं अर्थ (=धन, सुविधा) के कारण कौरवों के साथ बंधा हुआ हूँ। इसलिये मैं कौरवों के लिये ही युद्ध करूँ, ऐसी मेरी समझ है। इसलिये मैं नपुंसक के समान यह कह रहा हूँ। सो युद्ध की बात को छोड़कर अन्य तुम मुझसे क्या चाहते हो ? मैं युद्ध में अजेय हूँ। तुम युद्ध करो और विजय प्राप्त करो। मैं प्रतिदिन प्रातः उठकर तुम्हारे विजय की कामना करूँगा। यह मैं सत्य कह रहा हूँ[250]।

श्री कृपाचार्य जी ! आप धनुर्वेद के ज्ञाता, धनुर्वेद के शिक्षक और अवध्य-अजेय ब्राह्मण थे। आप क्लीब=नपुंसक से कैसे हो गये ? कौनसी मजबूरी ने आपको नपुंसक सा आचरण करने को बाधित कर दिया ? सच्चा तपस्वी ब्राह्मण तो कभी अर्थ का—धन सम्पत्ति का दास नहीं बनता। ब्राह्मण के प्रसिद्ध कर्मों में अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन और दान के साथ प्रतिग्रह (=लेना) भी बताया गया है[251]। पर उसके

---

[250] अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥ तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः। अतस्त्वां क्लीबवद् ब्रूयां युद्धादन्यत् किमिच्छसि॥ अवध्योऽहं महीपाल युद्ध्यस्व जयमाप्नुहि॥ प्रीतस्तेऽभिगमेनाहं जयं तव नराधिप॥ आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ (महाभा. भी. ७१...७५)

[251] अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्। (मनु. १.८८) प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' (मनु. १०.११९)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

साथ 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' कहकर दान लेने को अतिनीच कर्म बताया गया है। अर्थात् दान लेना=मुफ्त में किसी वस्तु या धन को लेना तभी उचित है, जबकि भारी आपत्ति आई हुई हो और पुरुषार्थ करने से भी कहीं कुछ न मिल रहा हो। अर्थात् प्रतिग्रह = दान लेना आपत्काल के लिये है। यथाशक्ति स्वपुरुषार्थ से प्राप्त वस्तु का ही उपभोग करना चाहिये। इसीलिये शास्त्र में कहा गया है – जहाँ तक हो आपत्काल का सहारा न ले[252]।

फिर आपकी अर्थ=धन-सुविधा-भोजनादि के कारण कौरवों से बंधे होने की बात निर्मूल है। आप धन-भोजनाच्छादन आदि कौरवों से प्राप्त करते थे, तो मुफ्त में नहीं करते थे। आपने परिश्रमपूर्वक कौरवों को धनुर्वेद की शिक्षा दी थी। आपने बैठे ठाले उनकी रोटियाँ नहीं तोड़ी थीं। सो आप अपना निर्णय लेने में स्वतन्त्र थे।

वैसे तो आपको और द्रोणाचार्य जैसे तेजस्वी ब्राह्मण को; दुर्योधन का भीम को विष देकर मारने का दो बार प्रयास, वारणावत के लाक्षागृह में पाण्डवों को जला मारने का षड्यन्त्र, कपटद्यूत द्वारा युधिष्ठिर को हराकर उनकी राज्यलक्ष्मी को हथियाना, द्रौपदी का अपमान, पाण्डवों को वन में खदेड़ना, वनवास-काल में भी उन्हें शान्ति से न रहने देना का प्रयास, शर्त्त के अनुसार तेरह वर्षों की अवधि समाप्त होने पर पाण्डवों का भाग न लौटाना और शान्तिदूत कृष्ण को बन्दी बनाने का षड्यन्त्र तथा किसी बुजुर्ग की सलाह न मानना आदि करतूतों पर विचार करके तुरन्त उसके आश्रय से हट जाना चाहिये था। जब ब्राह्मण को जीविका-हेतु अध्यापन और यज्ञ कराने का कार्य न मिले, तो वह क्षत्रिय या वैश्य का कार्य भी जीवननिर्वाहार्थ कर सकता है, ऐसा शास्त्र में विधान है[253]।

---

[252] 'न आपत्कालं स्मरेत्' च.सं.

[253] अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा। जीवेत् क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः॥ उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद् भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

तो इन दुष्कृत करने वाले दुर्योधनादि के आश्रय को त्यागकर कोई अन्य कार्य ही आप लोग कर लेते, तो कौरवों से—आततायी कौरवों से बंधे रहने की मजबूरी न रहती।

ऐसा आप लोग न कर सके। पर अब जब अन्त में कौरव लोग अपने लोभवश हठ-दुराग्रह के कारण और पाण्डव लोग अपना धर्मोचित भाग पाने के कारण युद्ध में लड़-मरने को आ गये, तो आप जैसे आचार्य को इस महायुद्ध को रोकने का पूरा प्रयास करना चाहिये था।

आपको चाहिये था, कि आप दोनों सेनाओं के बीच खड़े होकर, कौरवों और पाण्डवों को आदेश देते, कि मैं तुम्हारा गुरु हूँ, इसलिये मेरी आज्ञा मानो और केवल नाश ही करने वाले इस युद्ध से विमुख हो जाओ और नहीं मानते हो, तो पहले मुझे मारो। मैं जीते जी अपने दोनों ओर के शिष्यों को और उनके कारण अनेकानेक वीरों को मृत्यु का ग्रास नहीं बनने दूँगा। ऐसी घोषणा करके वहीं डट जाते। आपके इस अति समयोचित कथन का भीष्म, द्रोण आदि पर भी अवश्य प्रभाव पड़ता। तब सब मिलकर दोनों पक्षों में सन्धि करवाने का प्रयास करते। हठधर्मी दुर्योधन को पाण्डवों का राज्य लौटाने को मजबूर करते और पहले युधिष्ठिर की न्यूनतम मांग के अनुसार अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा दात्रिच्छित[254] ये पाँच गाँव ही पाण्डवों को दिलवाकर सम्भाव्य महाविनाश के कारणभूत इस युद्ध को रुकवा देते। इतना प्रयत्न करने पर भी यदि दुर्योधन न मानता तो आपको निर्णय लेना था, पाण्डवों की ओर से लड़ने का और ललकार कर कहना था भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, सोमदत्त और बाह्लिक आदि को, सब आओ हम धर्मारूढ पाण्डवों की ओर से लड़ेंगे और इतना भी साहस नहीं था, तो युद्ध से आप विमुख ही रहते।

वैश्यस्य जीविकाम्। (मनु. १०.८१,८२)

[254]अविस्थलं, वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्। अवसानं भवत्वत्र किञ्चिदेकं च पञ्चमम्। भ्रातृणां देहि पञ्चानां पञ्च ग्रामान् सुयोधन॥ (महाभा. उ. ३१.१९-२०)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

किं च आपने युधिष्ठिर को आशीर्वाद देने के समय कहा था – मैं लड़ूँगा तो भोजन देने (भले ही ये अधार्मिक हों) वाले कौरवों की ओर से पर तुम – 'युध्यस्व जयमाप्नुहि' – युद्ध करो और विजय प्राप्त करो, मैं प्रतिदिन प्रातः उठकर तुम्हारी जीत की कामना करूँगा। क्या कहने इस आशीर्वाद की छटा के ! तुम्हारे और तुम्हारी सेना के सिर काटने के लिये लड़ूँगा तो दुर्योधन की तरफ से, पर मेरा आशीर्वाद है कि तुम विजय प्राप्त करो। मैं सुबह तो तुम्हारी जीत के लिये प्रार्थना किया करूँगा और दिन में तुम्हारे ऊपर मरणान्तक आक्रमण किया करूँगा। वाह! कैसा वदतोव्याघात है आपके वचनों में !! आप कहेंगे मेरी कामना और प्रार्थना के अनुसार युधिष्ठिर की विजय तो हुई। पर कृपाचार्य जी ! इस विजय को कौन विजय कहेगा ? द्रौपदी के पाँचों पुत्र (प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक, श्रुतकर्मा) मारे गये, धृष्टद्युम्न और उसके पुत्र मारे गये, विराटराज और उसके पुत्र (शङ्ख, उत्तर) मारे गये अन्य अनेकों सम्बन्धी और धर्म के पक्ष में लड़ने वाले लाखों लोग बिना अपराध के मौत के हवाले कर दिये गये। कौरव-पक्ष के अनेकों वे जन जिनके प्रति पाण्डवों की मान्य भावना अथवा प्रेम था, वे भी मृत्यु के ग्रास बने। यह कैसी विजय हुई ! शोक !! महाशोक !!!

सो कृपाचार्य जी!! आपने समर्थ होते हुए भी भीष्म और द्रोण की तरह युद्ध को रोकने का प्रभावी प्रयत्न नहीं किया। आपको लाखों की विनाश-लीला की परवाह नहीं थी, आपको तो अपने जीजा द्रोणाचार्य और भानजे अश्वत्थामा की ओर दृष्टि थी। 'क्योंकि द्रोण और अश्वत्थामा दुर्योधन की ओर से लड़ेंगे, इसलिये मैं भी इस ओर से लड़ूँगा'। इस बात का विश्वास दुर्योधन को दो तीन दशक पहले ही हो गया था। तभी उसने वारणावत की लाक्षागृह की योजना के समय कहा था – 'जिधर पुत्र अश्वत्थामा होगा उधर ही द्रोण होंगे और जिधर ये दोनों होंगे, उधर ही कृपाचार्य होंगे। द्रोण और

---

255 यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः। कृपः शारद्वतश्चैव यत एतौ ततो भवेत्॥ द्रोणं च भागिनेयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित्' (महाभा.आदि. १४१.२०,२१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य–प्रकरण

अश्वत्थामा को कृपाचार्य कभी भी त्याग नहीं सकते[255]।

धिक्कार है ऐसे सम्बन्धि-मोह को। जो उचित अनुचित का, धर्म अधर्म का बिना विचार किये, केवल सगेपने के कारण मनुष्य को कुपथ का राही बना देता है। अतएव चिन्तकों ने कहा है – मोह सबसे अधिक पाप कराने वाला है[256]।

कृपाचार्य? [७]

अश्वत्थामा द्वारा शिविर में रात्रि में सोती हुई पाण्डव-सेना का वध और कृप

महाविनाशकारी महाभारत युद्ध के अठारहवें दिन चौथे सेनापति के रूप में शल्य ने कमान संभाली और अनेकों को मौत के घाट उतार कर स्वयं ने भी मौत का आलिंगन कर लिया। उसके बाद भी दुर्योधन अपने बचे सैनिकों के साथ रणभूमि में डटा रहा। दोनों ओर के लोग हताहत होते रहे। अन्त में एक दुर्योधन को छोड़कर उसके अन्य सब योद्धा रणचण्डी की भेंट चढ़ गये और अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को भी उस समय समीप न देखकर, असहाय दुर्योधन गदा लेकर पैदल ही युद्धभूमि से भाग खड़ा हुआ और एक तालाब में जाकर छिप गया। अश्वत्थामा, कृप और कृतवर्मा उसे ढूँढते हुए, उस तालाब पर जाकर दुर्योधन से मिले। तभी बहेलिये द्वारा पाण्डवों को दुर्योधन के तालाब में छिपे होने का पता लगा, तो वे भी उस तालाब पर पहुँचे। उन्हें वहाँ आता देखकर अश्वत्थामा-कृप-कृतवर्मा वहाँ से छिटक लिये।

दूर जाकर ये तीनों रथों से उतर कर जंगल में एक बड़े पेड़ के नीचे विश्राम करने लगे। कुछ देर बाद रात हो गई। अश्वत्थामा की आँखों में नींद नहीं थी। उस वृक्ष पर रात्रि में कौओं के अनेक घोंसले थे और उल्लुओं के खोह भी। काकोलूक वैर के

---

256 'तेषां मोहः पापीयान्' (न्या.सू. ४.१.६)

257 द्रष्टव्य – पृ. ३

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

अनुसार रात्रि में उल्लुओं की बारी थी। उल्लुओं की आवाज को सुनकर अश्वत्थामा ने देखा, कि एक भारी भरकम उल्लू रात्रि में सोये हुए कौओं पर प्रहार करके उन्हें तहस-नहस कर रहा है। इस दृश्य को देखकर चंचलमति अश्वत्थामा के मन में बदले की भावना जागृत हुई। दिन में जो कार्य मैं नहीं कर सका, उसे मैं अब रात्रि में करूँगा और शिविर में सोते हुए पाण्डव-योद्धाओं को मारूँगा, यह निश्चय किया[257]।

तब उसने कृपाचार्य और कृतवर्मा को अपना निश्चय बताया। तो कृपाचार्य जी! आपने उसे हितकारी सीख देते हुए कहा था – 'हे अश्वत्थामा ! उस लोभी, अदूरदर्शी दुर्योधन ने बिना विचार किये अपनी मूर्खता के कारण यह अनर्थकारी युद्ध रूपी कर्म किया। हितकारी समझ देने वालों का तिरस्कार करके और दुर्जनों के साथ मन्त्रणा करके, हमारे द्वारा मना करने पर भी उसने अधिक गुण वाले पाण्डवों के साथ वैर बांधा। पहले से ही दुष्टस्वभावी वह अब धैर्य नहीं धार सकता है। अब आपत्ति में सन्ताप करने से क्या ? पहले तो सच्चे मित्रों की बात मानी नहीं। उस पापी दुर्योधन का अनुगमन करने वाले हम लोगों पर भी यह दारुण अनीति हावी हो गई है। इस भारी आपत्ति से परेशान मेरी बुद्धि भी विचार करके भी कोई कल्याण का मार्ग नहीं देख रही है।

---

[258]सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धेनादीर्घदर्शिना।। असमर्थ्य समारब्धो मूढत्वादविचिन्तितः।। हितबुद्धीननादृत्य सम्मन्त्र्याऽसाधुभिः सह।। वार्यमाणोऽकरोद् वैरं पाण्डवैर्गुणवत्तरैः। पूर्वमप्यतिदुःशीलो न धैर्यं कर्त्तुमर्हति।। तपत्यर्थे विपन्ने हि मित्राणां न कृतं वचः। अनुवर्त्तामहे यत्तु तं वयं पापपूरुषम्।। अस्मानप्यनयस्तस्मात् प्राप्तोऽयं दारुणो महान्। अनेन तु ममाद्यापि व्यसनेनोपतापिता।। बुद्धिश्चिन्तयते किंचित् स्वं श्रेयो नावबुद्ध्यते। मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्याः सुहृदो जनाः।... ते वयं धृतराष्ट्रं च गान्धारीं च समेत्य ह।। उपपृच्छामहे गत्वा विदुरं च महामतिम्।। ते पृष्टास्तु वदेयुर्यच्छ्रेयो नः समनन्तरम्।। तदस्माभिः पुनः कार्यमिति मे नैष्ठिकी मतिः।। (महाभा.सौ. २.२५. ..३४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

किंकर्त्तव्यविमूढ़ मनुष्य को अपने सच्चे मित्रों से सलाह लेनी चाहिये। सो हम लोग चलकर धृतराष्ट्र, गान्धारी और महामति विदुर से पूछें और वे लोग जो कल्याण का मार्ग बतावें, वही हम करें, ऐसी मेरी निश्चित बुद्धि है[258]।

हे कृपाचार्य जी! आपकी सलाह न मानने पर और अपने क्रूर कर्म करने पर ही उतारू होने पर फिर आपने उसे कहा – हे अश्वत्थामा! कल प्रातः युद्ध करने के लिये मैं और कृतवर्मा दोनों तेरे साथ रथों पर चढ़कर चलेंगे। इस समय रात्रि में तुम कवच और ध्वज उतारकर विश्राम करो। कल तुम हमारे सहयोग से शत्रुओं को मार सकोगे। तुम्हें जागते हुए बहुत देर हो गई है, तो तुम बाकी रात्रि में सो जाओ। विश्राम लेकर निद्रारहित होकर स्वस्थचित्त हो जाओ। फिर तुम युद्ध में शत्रुओं को मार गिराओगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है[259]।

आपके वचनों को सुनकर अश्वत्थामा बोला—एकाग्र चित्तवाले मुझे कहाँ नींद और कैसा सुख। दिन में तो श्रीकृष्ण और अर्जुन द्वारा परिरक्षित इन असह्य शत्रु-सैनिकों को मैं तो क्या इन्द्र भी नहीं मार सकता। इस समय शिविर में वे दोनों नहीं हैं। इसलिये मैं अभी जाऊँगा। मैं अपने इस क्रोध को नहीं दबा सकता। आज उन सोते हुए शत्रुओं की हत्या करने के बाद ही मैं विश्राम करूँगा और कोपज्वर से मुक्त होकर सोऊँगा[260]।

---

[259]'अनुयास्यावहे त्वां तु प्रभाते सहितावुभौ। अद्य रात्रौ विश्रमस्व विमुक्तकवचध्वजः॥ अहं त्वामनुयास्यामि कृतवर्मा च सात्वतः। परानभिमुखं यान्तं रथमास्थाय दंशितौ॥ आवाभ्यां सहितः शत्रून् श्वो निहन्ता समागमे।... चिरं ते जाग्रतस्तात स्वप तावन्निशामिमाम्॥ विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद। समेत्य समरे शत्रून् वधिष्यति न संशयः' (महाभा.सौ. ४.२-६)

[260]'एकाग्रमनसो मेऽद्य कुतो निद्रा कुतः सुखम्। वासुदेवार्जुनाभ्यां च तानहं परिरक्षितान्। अविषह्यतमान् मन्ये महेन्द्रेणापि सत्तम॥ न चापि शक्तः संयन्तुं कोपमेतं समुत्थितम्' (महाभा.सौ. ४.३०-३२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य–प्रकरण

इस प्रकार उसके न मानने पर फिर आपने समझाते हुए उपदेश दिया था – 'हे प्रिय अश्वत्थामा ! मेरे कहे अनुसार करो जिससे तुम्हें पीछे पछताना न पड़े । जिन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र उतार रखे हों, जो रथों और घोड़ों से उतर चुके हों ऐसे सोये हुए लोगों की हत्या करने को संसार में अच्छा नहीं माना जाता है । जो यह कहें कि मैं तुम्हारा हूँ, जो शरण में आये हों, जिन्होंने अपने केश खोल रखे हों और जिनके वाहन नष्ट हो गये हों, ऐसे लोगों का वध भी अनुचित है । आज पाण्डवपक्षीय पञ्चाल लोग कवच उतार कर विश्वासपूर्वक मुर्दों के समान अचेत होकर सो रहे हैं। ऐसी अवस्था वालों की जो कुटिल पुरुष हिंसा करना चाहे, वह गहरे नरक में गिरेगा। हे अश्वत्थामा ! तुम संसार के शस्त्रास्त्र-ज्ञाताओं में श्रेष्ठ माने जाते हो और अब तक तुमने कोई सूक्ष्म भी पापकर्म नहीं किया है । सो तुम कल सूर्योदय होने पर शत्रुओं को अवश्य जीतना । यह जो तुमने क्रूर निश्चय किया है, वह तो शुभ्र श्वेत वस्त्र पर धब्बा लगाने जैसा है[261] ।

इसके उत्तर में पाण्डव-पक्ष के दोष गिनाने के बाद वह बोला – हे मामा जी! इन मेरे पिता के हत्यारे पञ्चालों को सोती हुई स्थिति में मारने से चाहे मुझे अगले जन्म में कीट-पतंगा ही क्यों न बनना पड़े, मैं अवश्य यह करूँगा[262]।

---

261 'कुरु मे वचनं तात येन पश्चान्न तप्यसे। न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः। तथैवापास्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम्॥ ये च ब्रूयुस्तवास्मीति ये च स्युः शरणागताः। विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहनाः॥ अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्तकवचा विभो। विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचेतसः॥ यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः। व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे ॥ सर्वास्त्रविदुषां लोके श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुतः॥ न च ते जातु लोकेऽस्मिन् सुसूक्ष्ममपि किल्बिषम्॥ त्वं पुनः सूर्यसंकाशः श्वोभूत उदिते रवौ। प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि शात्रवान्॥ असम्भावितरूपं हि त्वयि कर्म विगर्हितम्। शुक्ले रक्तमिव न्यस्तं भवेदिति मतिर्मम' (महाभा.सौ. ५.१-१७)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

ऐसा कहकर अश्वत्थामा अकेले ही रथ में घोड़ों को जोड़कर शत्रुओं की ओर चलने लगा। आपके द्वारा समझाने रोकने पर भी वह नहीं रुका और बोला आप दोनों भी कवच पहनकर, तलवार बांधकर और धनुष लेकर मेरे साथ चलिये। तब आप और कृतवर्मा भी उसके पीछे चल पड़े। आप लोग सीधे पाण्डवों के उस शिविर में पहुँचे जिसमें सब लोग सोये हुए थे[263]।

पाण्डव-शिविर के पास पहुँचने पर कृप और कृतवर्मा शिविर के द्वार पर ठहरे। तब अश्वत्थामा ने कहा, मैं शिविर के अन्दर जाऊँगा, आप दोनों द्वार पर रहिये। आप पूरा प्रयत्न करना कि कोई भी योद्धा जीवित न भागने पाये। ऐसा कहकर वह शिविर में घुस गया। उसने द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न को पीट-पीट कर मार डाला और फिर वह अन्धाधुन्ध मारकाट मचाने लगा। भिन्न-भिन्न तम्बुओं में सोये हुए थके मांदे लोगों को मौत के घाट उतारने लगा। द्रौपदी के पांचों पुत्रों को, शिखण्डी को, द्रुपदपुत्रों-पौत्रों को मारता हुआ, जो मिला उसको खण्ड-बण्ड करने लगा। मारे जाते हुओं की चिल्लाहट और करुणक्रन्दन को सुनकर बहुत से बेसुध सोये हुए योद्धा जग गये और ऊंघ में ही डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। किसी तरह से बच-बचाकर शिविर से निकलने के लिये द्वार पर पहुँचे तो,

---

[262]पितृहन्तॄनहं हत्वा पञ्चालान् निशि सौप्तिके।
कामं कीटः पतङ्गो वा जन्म प्राप्य भवामि वै। (महाभा.सौ. ५.२७)

[263]एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्। एकान्ते योजयित्वाश्वान् प्रायादभिमुखः परान्॥... क्षिप्रं सन्नद्धकवचौ सखड्गावात्तकार्मुकौ। मामास्थाय प्रतीक्षेतां रथवर्यौ परंतपौ॥ इत्युक्त्वा रथमास्थाय प्रायादभिमुखः परान्। तमन्वगात् कृपो राजन् कृतवर्मा च सात्वतः। ययुश्च शिविरं तेषां सम्प्रसुप्तजनं विभो' (महाभा.सौ. ५.३०,३७-४०)

[264]कृपश्च कृतवर्मा च शिविरद्वार्यतिष्ठताम्। अश्वत्थामा उवाच – अहं प्रवेक्ष्ये शिविरं चरिष्यामि च कालवत्। यथा न कश्चिदपि वा जीवन् मुच्येत मानवः। तथा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

वहाँ कृतवर्मा और कृपाचार्य ने उन्हें मार डाला। तथा अश्वत्थामा को प्रसन्न करने के लिये उस शिविर के तीन तरफ आग लगा दी। आग लगने से हुए प्रकाश में बचे खुचे योद्धाओं को भी उन्होंने मार डाला[264]।

क्यों कृपाचार्य जी! थोड़ी देर पहले जिस नीच कार्य से, आप अपने भानजे को उपदेश देकर रोक रहे थे, उसी जघन्य कार्य में आप स्वयं भी सम्मिलित हो गये। जिनके हाथों में कोई हथियार नहीं था, जो वाहनों से रहित थे, जिनके केश अस्त-व्यस्त थे और जो रात्रि में थकावट के मारे ऊंघ में थे और जो हाथ जोड़कर शरण में आकर कांप रहे थे, उनको आपने भी मारा और एक घोर नीच कार्य किया कि शिविर के तीन ओर आपने आग लगा दी। आपके उपदेश के अनुसार आपने भी घोर नरक में पड़ने का कार्य किया। अश्वत्थामा के हत्याकाण्ड मचाने पर कुछ तो भागकर अपने प्राण बचा लेते। पर आप अपने भानजे के मोह में इतने जकड़े हुए थे, कि क्रूर बनकर आपने उनके भी प्राण पखेरू उड़ा दिये। दुर्योधन द्वारा आपके विषय में यह आंकना कितना सही था, कि कृपाचार्य अपने भानजे और बहनोई के साथ ही रहेंगे हर हाल में[265]।

भवद्भ्यां कार्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः॥ इत्युक्त्वा प्राविशद् द्रौणिः पार्थानां शिविरं महत्॥ अन्यानन्यांश्च पुरुषानभि सृत्याभिसृत्य च। न्यकृन्तदसिना द्रौणिरसिमार्गविशारदः। ततस्तच्छब्दवित्रस्ता उत्पतन्तो भयातुराः। निद्रान्धा नष्टसंज्ञाश्च... कश्मलाभिहतौजसः। विनदन्तो भृशं त्रस्ताः समासीदन् परस्परम्॥ उत्पेतुस्तेन शब्देन योधा राजन् विचेतसः। निद्रार्तांश्च भयार्तांश्च व्यधावन्त ततस्ततः॥ शिविरान् निष्पतन्ति स्म क्षत्रिया भयपीडिताः। तांस्तु निष्पतितांस्त्रस्तान् शिविराज्जीवितैषिणः। कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः। विस्रस्तयन्त्रकवचान् मुक्तकेशान् कृताञ्जलीन्। वेपमानान् क्षितौ भीतान् नैव कांश्चिदमुञ्चताम्। कृपश्चैव महाराज हार्दिक्यश्चैव दुर्मतिः। भूयश्चैव चिकीर्षन्तौ द्रोणपुत्रस्य तौ प्रियम्॥ त्रिषु देशेषु ददतुः शिविरस्य हुताशनम्' (महाभा.सौ. ८.५,८,९,८१,८२,८८,१०६-१०९)

[265]द्रष्टव्य - पृ. १६९ तथा टि. २५५

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

आचार्य जी ! आप यहाँ कहेंगे, कि मेरे समझाने के बाद अश्वत्थामा ने स्वयं के द्वारा अधर्म पर उतारू होने के हेतु दिये थे, कि अधर्म से धृष्टद्युम्न ने मेरे पिता को मारा, अर्जुन ने अधर्म से कर्ण को मारा, शिखण्डी के द्वारा बाणों से भीष्म को नीचे गिराया अर्जुन ने अधर्म से और अधर्म से भीम ने गदा से दुर्योधन को मारा इत्यादि। उसके कथन से मुझे उसका अधर्म से सौते हुओं की हत्या करना उचित लगा, सो मैं भी उसमें सम्मिलित हो गया।

सो आपका यह मानना भी उचित नहीं है। आप उसे कह सकते थे, कि तेरे पिता का सिर अवश्य धृष्टद्युम्न ने काटा। पर द्रोणाचार्य के जीव-रहित शरीर का सिर। द्रोणाचार्य ने तो तुम्हारे मारे जाने का अप्रिय समाचार सुनकर शस्त्र रख दिये थे और योगविधि के द्वारा अपने आत्मा को शरीर से अलग कर लियां था, जिसका मैं भी साक्षी हूँ। तब धृष्टद्युम्न ने शिरश्छेद का कार्य किया[266]।

द्रोणाचार्य के शस्त्र-त्याग कर योगविधि से अपने प्राणों के त्यागने का कारण तो था तुम्हारी मृत्यु का झूठा समाचार। यह झूठा समाचार देने वाला था भीमसेन। भीम ने इन्द्रवर्मा के अश्वत्थामा नाम वाले हाथी को मारकर, शोर मचाया था, कि अश्वत्थामा

---

[266] एवमुक्तस्तु द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः। सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत।...। इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च। उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च॥ स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम्। दिवमाक्रमदाचार्यः साक्षात् सद्भिर्दुराक्रमाम्॥ वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः। योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम्। अहं धनञ्जयः पार्थः कृपः शारद्वतस्तथा॥ वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः॥ तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः। किंचिदब्रुवतः कायाद् विचकर्तासिना शिरः॥ (महाभा.द्रो. १९२.४२,४३,४५,५२,५३,५६-५८,६२)

[267] ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथम्। शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत्। एकस्यार्थे बहून् हत्वा पुत्रस्याधर्मविद्यया। स्वकर्मस्थान् विकर्मस्थो न

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

मारा गया और यह चालाकी वाली युक्ति बताने वाले थे श्रीकृष्ण। सो तुम भीम की बात को सच्चा बताने वाले युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण से बदला लो। तुम्हारा उन पर तो वश चल नहीं पाया इसलिये तुम इन सोते हुओं को मारने चले हो[267]।

फिर यह भी कहते कि, धृष्टद्युम्न ही ने शिरश्छेद का कार्य जो किया। उसका भी कारण द्रुपद+द्रोण+द्रुपद का कुलक्रमागत वैर था[268]। दरिद्रावस्था को प्राप्त हुए तुम्हारे पिता, अग्निवेश के आश्रम में अध्ययन-समय के बालसखा द्रुपद के पास गये क्योंकि द्रुपद अब राजा बन गये थे और उसको कहा कि मैं तुम्हारा बाल्यकाल का मित्र हूँ। तब द्रुपद ने कहा कि समय बीतने पर पुरानी संगति समाप्त हो जाती है और समान स्थिति वालों की ही परस्पर मित्रता होती है और मुझे यह भी ज्ञान नहीं है, कि मैंने तुम्हें आधा राज्य देने का वचन दिया था। सो हे ब्रह्मन्। मैं आपको एक रात्रि का भोजन तो दे दूँगा[269]।

व्यपत्रपसे कथम्॥ यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि। स चाद्य पतितः शेते पृष्ठे नावेदितस्तव (महाभा.द्रो. १९२.३६,४०,४१)

अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम्। भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः। तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः। अव्यक्तमब्रवीद्राजा हतः कुञ्जर इत्युत' (महाभा.द्रो. १९३.५५...५९)

तान् दृष्ट्वा पीडितान् बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः। जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत्'... ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः' (महाभा.द्रो. १९३.४८,५०)

[268] कुलक्रमागतं वैरं ममाचार्येण विश्रुतम्।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः' (महाभा.द्रो. १९७.४३)

[269] ततो द्रुपदमागम्य सखिपूर्वमहं प्रभो। अब्रुवं पुरुषव्याघ्र सखायं विद्धि मामिति॥ स मां निराकारमिव प्रहसन्निदमब्रवीत्। संगतानीह जीर्यन्ति कालेन परिजीर्यतः। न सख्यमजरं लोके विद्यते जातु कस्यचित्॥ अहं त्वया न जानामि राज्यार्थे

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कृपाचार्य-प्रकरण

तब तुम्हारे पिता द्रुपद द्वारा अपने को अपमानित किया मानकर उसका बदला लेने के लिये, शिष्यों की खोज में भीष्म पितामह के पास आये। फिर कौरवों और पाण्डवों को विविध शस्त्रास्त्र सिखाये और गुरुदक्षिणा में द्रुपद को जीवित बन्दी बनाकर लाने की बात कही।।तब अर्जुन ने अपने चारों भाइयों के सहयोग से द्रुपद के नगर को तहस-नहस करके अनेकानेक हाथी, घोड़े, रथ धराशायी कर दिये और पैदल पञ्चाल-योद्धाओं को मार गिराया। अन्त में अर्जुन ने द्रुपद को बन्दी बना कर तुम्हारे पिता के सामने पेश किया। तुम्हारे पिता ने द्रुपद से आधा राज्य ले लिया और उसे छोड़ दिया[270]। सो भानजे! अपने पिता के आधे राज्य का अपने शिष्यों के माध्यम से हथियाए जाने के कारण, अपने चाचा सत्यजित् को मर्मान्तक पीड़ा पहुँचवाने के कारण और अपने योद्धाओं को मरवाने के कारण धृष्टद्युम्न ने यह कार्य किया।

कर्ण को अधर्म से अर्थात् जब उसके रथ के भूमि में धंसे पहिये को निकालते समय अर्जुन ने मारा, तो कर्ण ने भी तो पांच अन्य महारथियों के साथ मिलकर निहत्थे और भूमि पर गिरे हुए अभिमन्यु को मारा था[271]। और उससे पहले भी कर्ण, पाण्डवों के अहित करने में ही दुर्योधन के साथ लगा रहता था।

भीमसेन द्वारा दुर्योधन की जांघ तोड़ना अधर्म था, तो दो-दो बार भीमसेन को

संविदां कृताम्। एकरात्रं ते ब्रह्मन् कामं दास्यामि भोजनम्॥ साम्याद्धि सख्यं भवति वैषम्यान्नोपपद्यते' (महाभा.आदि. १३०.६२...७३)

[270]द्रष्टव्य – पृ. १४०

[271]दौ:शासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः। उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत्। गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः। विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा।। एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे॥ द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः। एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः॥ (महाभा. द्रो. ४९.१२-१४,२२)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

मारने के लिये कालकूट विष देना और बेहोशी की अवस्था में लताओं से बांधकर नदी में फेंकना अधर्म नहीं था क्या? माता-सहित पाण्डवों को जला मारने के लिये वारणावत में लाक्षागृह का षड्यन्त्र रचना अधर्म नहीं था क्या ?. कपटद्यूत से पाण्डवों का राज्य-धन-सम्पत्ति हथियाना और तेरह वर्ष के लिये उन्हें वन में खदेड़ना अधर्म नहीं था क्या? भरी सभा में ऋतुमती एकवस्त्रा द्रौपदी का घोर अपमान और कामुक बनकर उसे अपनी बांई नंगी जांघ दिखाना अधर्म नहीं था क्या ? तो भानजे ! दुर्योधन के इतने अधर्मों के सामने गदायुद्ध में भीम द्वारा उसकी जंघा का तोड़ा जाना रूपी अधर्म नगण्य सा है ।

रही भीष्म की बात । सो निरन्तर अधर्म पर उतारू दुर्योधनों के हित के लिये – अधर्मात्माओं की विजय के लिये – अधर्म की विजय के लिये दुर्योधन की ओर से लड़ने वाले और एक लाख योद्धाओं को मार चुके अधर्म-सहायक भीष्म को उन्होंने भी शिखण्डी के माध्यम से भूमि पर गिराया ।

सो कृपाचार्य जी ! आपने इन सब घटनाओं को जानते हुए भी अश्वत्थामा को इनसे अवगत नहीं कराया और स्वयं भी भानजे के महामोह में पड़कर इन सब अधर्मों को भुलाकर उसके कुकृत्य में सहभागी बन गये और आपने भी हजारों निहत्थे लोगों को मार दिया ।

इस प्रकार पाण्डवशिविर में रात्रि में वर्त्तमान २० हजार ४ सौ मनुष्यों में से २० हजार तीन सौ निन्यानवे योद्धाओं की आप लोगों ने हत्या कर दी । केवल एक धृष्टद्युम्न का सारथि किसी तरह वहाँ से बच निकला था ।

आप निरन्तर अधर्मियों के साथ रहे । उनको छोड़कर पाण्डवपक्ष में नहीं आये। आप विनाशकारी युद्ध से विमुख भी नहीं रहे । इस तरह आप महाविनाशक युद्ध को नहीं

---

[272] समेत्य च महाबाहुः सोमदत्तेन चैव ह।
दुर्योधनेन शल्येन सौबलेन च वीर्यवान्। (महाभा.स. ५८.२४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शल्य-प्रकरण

रोक सके समर्थ होते हुए भी । प्रतीत होता है आपकी मति भी प्रमाद का शिकार हो गई। सही निर्णय नहीं लेने पाई ।

काल के द्वारा कही गई इन सच्ची पर चुभती बातों को सुनकर कृपाचार्य मौन हो गये । तब काल एक और बुजुर्ग शल्य के विषय में जिज्ञासाभाव से सोचने लगा। यद्यपि मद्रराज शल्य युद्ध के अठारहवें दिन कौरव सेना के सेनापति के रूप में युद्ध करते हुए युधिष्ठिर के हाथों मारे गये थे। तो भी काल मानो उसकी आत्मा से बात करता हुआ पूछने लगा –

शल्य? [१]

कपटद्यूत और शल्य

क्यों मद्रराज शल्य जी ! आप महाराज ऋतायन के पुत्र थे । ऋत अर्थात् सत्य के अयन अर्थात् मार्ग पर चलने वाले के वंशधर थे । तो फिर आपने द्यूत-क्रीडा के समय शकुनि के द्वारा अपनाई जाती हुई निकृति (=कपट) का विरोध क्यों नहीं किया ? इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर पहुँचने पर युधिष्ठिर जिन-जिन से मिले उनमें आप भी थे[272]। निकृतिपरक द्यूत का परिणाम स्पष्ट था – युधिष्ठिर का – पाण्डवों का हारना । उस पराजय के परिणामस्वरूप जो दुःख सम्भाव्य थे, उनसे आपके सगे भानजों नकुल-सहदेव को भी होने वाले दुःख से क्या आप अपरिचित थे ?

आपने उनकी माता माद्री का पाण्डु के साथ सम्बन्ध तभी किया, जब आपने भीष्म पितामह से उत्तम कोटि का बहुत सारा सोना, नाना प्रकार के रत्न, हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, मणि, मोती, प्रवाल आदि प्राप्त कर लिये[273]। आपने अपनी सगी बहिन के

---

[273]द्रष्टव्य – पृ. २९

[274]प्रस्थापयाम मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयन्तु नः। शल्यस्य धृष्टकेतोश्च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

साथ कुछ भेजा तो नहीं, अपितु उल्टा उसके बदले में बहुत सा लिया। कन्याविक्रय किया। इस अवस्था में तो नकुल-सहदेव तथा पाण्डव आपकी ओर से अधिक सहयोग, सहायता और सहानुभूति के पात्र थे।

फिर उस कपटद्यूत-सभा में आपकी बहिन माद्री की पुत्रवधू द्रौपदी का घोर अपमान हुआ और आप कुछ नहीं बोले। प्रतीत होता है आपके लिये धन ही सर्वोपरि था, सम्बन्ध का महत्त्व कुछ नहीं था।

फिर द्यूत की शर्त के अनुसार पाण्डव तेरह वर्ष वन में नाना प्रकार के कष्ट पाते रहे, पर आपको उनकी सुध लेने की कभी फुर्सत नहीं मिली। आपको तो माद्री का सम्बन्ध-प्रसंग मालामाल कर गया था। फिर क्या चिन्ता थी माद्री की या माद्री के सन्तानों की !!!

शल्य? [२]

पाण्डवों की ओर से शल्य को रण-निमन्त्रण और शल्य का व्यवहार

पाण्डवों ने यातनाएँ सहते हुए तेरह वर्ष का लम्बा समय काट लिया। तब भी दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को बिना युद्ध के पांच ग्राम तो दूर; सुई की नोक के बराबर भी भूमि न दिये जाने के फलस्वरूप युद्ध अवश्यम्भावी हो गया।

फलस्वरूप कौरव और पाण्डव अपने-अपने पक्ष में लड़ने के लिये राजाओं को रणनिमन्त्रण भेजने लगे। पाण्डवों ने अपने मामा आप शल्य को भी रण-निमन्त्रण भेजा[274]।

जयत्सेनस्य वा विभो।... शल्यस्य प्रेष्यतां शीघ्रं ये च तस्यानुगा नृपाः। (महाभा.उ. ४.७,८,११)

[275]शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः। अभ्ययात् पाण्डवान् राजन् सह

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शल्य-प्रकरण

आप अपने पुत्रों सहित एक अक्षौहिणी सेना जिसका पड़ाव डेढ़ योजन भूमि पर होता था, उसको लेकर पाण्डवों की ओर जाने लगे। चालाक दुर्योधन ने आपके मार्ग में पहले से ही शिल्पियों द्वारा उत्तम वस्त्रों तथा खाने-पीने की वस्तुओं से युक्त और खेल-तमाशों आदि मनोरंजन के साधनों से सुसज्जित अनेक सभागृह (=शिविर=तम्बू) आप शल्य के सैन्य के लिये लगवा दिये थे[275]।

अपने और अपनी सेना के इस स्वागतसत्कार से आप फूले नहीं समाये और यह विचार कर कि यह युधिष्ठिर ने अपने पुरुषों के द्वारा करवाया है। आपने अपने भृत्यों से पूछा कि 'युधिष्ठिर के किन पुरुषों ने ये सभागृह बनवाये हैं। उन सभा-निर्माताओं को लाओ, वे कुछ देने योग्य हैं। मैं उन्हें पारितोषक दूंगा, जिससे युधिष्ठिर भी प्रसन्न होंगे। आपकी इस बात का पता जब वहीं गुप्त रूप से वर्त्तमान दुर्योधन को लगा, कि स्वागत सत्कार से प्रसन्न शल्य तो, इस मान-सम्मान के बदले अपना जीवन भी देने को उत्सुक हैं, तो दुर्योधन शल्य के सामने प्रकट हो गया। उससे जब आप शल्य को पता लगा, कि इस सब साजो-सामान की व्यवस्था दुर्योधन ने की है, तो आपने दुर्योधन को गले लगा लिया और उसकी इच्छित वस्तु मांगने को – वर मांगने को कहा। दुर्योधन बोला – जैसे आपके लिये पाण्डव हैं वैसे ही मैं भी हूँ। मैं भी आपके द्वारा अनुमान्य, पालनीय हूँ और

पुत्रैर्महारथैः। तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्धमिव योजनम्। तथा हि विपुलां सेनां बिभर्ति स नरर्षभः। अक्षौहिणीपती राजन् महावीर्यपराक्रमः॥...। कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः॥ शिल्पिभिर्विविधैश्चैव क्रीडास्तत्र प्रयोजिताः। तत्र वस्त्राणि माल्यानि भक्ष्यं पेयं च सत्कृतम्' (महाभा.स. ८.१-३,८,९)

[276]पप्रच्छ स ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः। युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः। आनीयन्तां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः॥ प्रसादमेषां दास्यामि कुन्तीपुत्रोऽनुमन्यताम्। दुर्योधनाय तत्सर्वं कथयन्ति स्म विस्मिताः। सम्प्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम्। गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम्। तं दृष्ट्वा मद्रराजश्च ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम्। परिष्वज्याब्रवीत् प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति॥ दुर्योधन उवाच

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शल्य-प्रकरण

मैं भी आपका भक्त हूँ सो आप मेरी सेनाओं के नायक बनें – मेरी ओर से युद्ध करें।' बस झट आपने कह दिया ठीक है ऐसा ही करूँगा'[276]।

वाह शल्य जी ! जैसी आपकी धन की प्रबल लालसा रही, वैसी ही सुख-सुविधा सम्मान की अदम्य चाह ! इस बनावटी स्वागत-सम्मान से आप इतने आत्मविभोर हो गये, कि सब कुछ देने को तैयार हो गये। थोड़ा भी विचार न किया कि मैं पाण्डवों के रणनिमन्त्रण पर एक अक्षौहिणी सेना लेकर जा रहा हूँ, इस अवसर पर दुर्योधन के द्वारा किया गया यह मान-सम्मान दिखावा है। मुझे फुसलाने के लिये है। थोड़ा चिन्तन करते, कि जिसके पास अपने भरे पूरे राज्य के अतिरिक्त कपटद्यूत से हथियाया हुआ पाण्डवों का राज्य और अकूत धन है, उसके द्वारा यह सत्कार-व्यवस्था करना सामान्य सी बात है। जो राज्य से वंचित हैं, धन छिन जाने से जिनका हाथ खाली है, उन पाण्डवों के द्वारा सम्भव है, ऐसा मेरा स्वागत समारोह न हो सके। वे तो इस समय स्वयं सहायता के पात्र हैं।

फिर आपने दुर्योधन की इस बात पर, कि 'जैसे पाण्डव आपके हैं, वैसे मैं भी आपका हूँ' विचार क्यों नहीं किया। नकुल-सहदेव आपकी बहिन माद्री के पुत्र थे, वे तो आपके साक्षात् भानजे थे ही, शेष तीन पाण्डुपुत्र भी आपको मामा ही मानते थे। सो वे तो आपके=आपके द्वारा पालनीय एवं स्नेह्य थे। दुर्योधन को यह अधिकार मिलना आपने कैसे मान लिया ? जिसने पाण्डव को दो-दो बार विष देकर मारना चाहा, नकुल-

---

–सत्यवाग् भव कल्याण वरो वै मम दीयताम्। सर्वसेना प्रणेता वै भवान् भवितुमर्हति। यथैव पाण्डवास्तुभ्यं तथैव भवते ह्यहम्। अनुमान्यं च पाल्यं च भक्तं च भज मां विभो। कृतमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत् क्रियतामिति॥ (महाभा.उ. ८.१३...१९)

[277]कुशलं राजशार्दूल कच्चित्ते कुरुनन्दन। अरण्यवासाद् दिष्ट्यासि विमुक्तो जयतां वर॥ सुदुष्करं कृतं राजन् निर्जने वसता त्वया॥ भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह॥ अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम्। दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

शल्य-प्रकरण

सहदेव और माता समेत सब पाण्डवों को मारने के लिये लाक्षागृह की रचना की, जिसने कपटद्यूत के द्वारा पाण्डवों का राज्य व धन हड़प लिया और तेरह वर्ष तक जंगल के चप्पे-चप्पे पर भटकने को वन में धकेल दिया और लौटने के बाद भी शर्त्त के अनुसार राज्य देना तो दूर,सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने को राजी नहीं हुआ, वह दुर्योधन आपका भक्त या स्नेह-पात्र या सहायता-पात्र कैसे हो गया ?

यह बात नहीं कि दुर्योधन द्वारा पाण्डवों के प्रति किये गये अपकारों का आपको पता न हो अथवा इस समय वे स्मरण न रहे हों । क्योंकि आप दुर्योधन को मुँहमांगा वरदान देकर पाण्डवों से मिलने गये तब आपने युधिष्ठिर से कहा – हे युधिष्ठिर आप कुशल से तो हैं ? सौभाग्य से आप वनवास के कष्ट से मुक्त हो गये हैं । निर्जन जङ्गल में रहने रूप अति कठिन कार्य आप लोगों ने और द्रौपदी ने पूरा कर लिया है । अज्ञातवास रूपी महाकठिन कार्य भी आपने निभा दिया । जिसका राज्य छिन गया हो, उसे तो दुःख ही दुःख देखना होता है, उसे सुख कहाँ से मिलेगा ? दुर्योधन के द्वारा प्रदत्त इस महादुःख का भी अन्त आयेगा । और तुम शत्रुओं को मारकर फिर सुख प्राप्त करोगे ॥... मार्ग में दुर्योधन के मिलने पर मैंने उसे वरदान रूप में 'अक्षौहिणी सेना सहित मैं तुम्हारी सेना का अङ्ग बनूँगा' यह कह दिया है[277] ।

बड़ी विचित्र बात है, आप भानजों को भरोसा दिला रहे हैं, कि तुम शत्रुओं को मारकर सुख प्राप्त करोगे। और शत्रु कौन ? जैसा आपने अभी अपने बयान में कहा – महादुःख देने वाला दुर्योधन । तो जिस दुःखदाता दुर्योधन को मारने की सलाह आप दे

भारत॥ दुःखस्यैतस्य महतो धार्तराष्ट्रकृतस्य वै। अवाप्स्यसि सुखं राजन् हत्वा शत्रून् परन्तप' (महाभा.उ. ८.२९-३२)

[278]भवानिह सारथ्ये वासुदेवसमो युधि ॥ कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नात्र संशयः। तेजोवधश्च ते कार्यः सौतेरस्मजयावहः॥ शल्य उवाच – अहं तस्य भविष्यामि संग्रामे सारथिर्ध्रुवम्। वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि मन्यते। तस्याहं कुरुशार्दूल

रहे थे, उसी दुर्योधन को आप युद्ध में एक अक्षौहिणी सेना की सहायता देने का वचन देकर आये हैं। 'चोर से कहना कि चोरी करता रह और साहूकार से कहना कि जगता रह'। शल्य जी ! आपके इस व्यवहार का तो यह अर्थ हुआ कि युधिष्ठिर ! मैं और मेरी भारी सेना तुम्हारे और तुम्हारी सेना के गले रेतने के लिये दुर्योधन का साथ देंगे और तुम अपने शत्रुओं का सफाया करना। है न बे सिर पैर की बात। प्रतीत होता है आपकी बुद्धि प्रमाद से ग्रस्त रहती थी, जो आगे-पीछे का भूत और भविष्य का बिना विचार किये, कुछ भी कहलवा देती थी। नहीं तो आप दुर्योधन को कह सकते थे, कि प्रिय ! मेरे पास पाण्डवों की ओर से रणनिमन्त्रण आ चुका है, वे राज्यच्युत कष्टग्रस्त और प्रताड़ित हैं, इसलिये मैं लडूँगा तो उन्हीं की ओर से। हाँ ! तुमने मेरे स्वागत-सम्मान में जो व्यवस्था की है, तदर्थ मैं तुम्हारा भी कुछ प्रिय करूँगा; युद्ध की बात को छोड़कर और कुछ मांग लो'। पर धनैश्वर्य और सुविधासेविता से लिप्त आपकी मति ऐसा कहने-करने में असफल रही।

फिर 'भागते चोर का चीर ही सही' की तर्ज पर युधिष्ठिर ने कहा – हे मामाजी! आप सारथि-कर्म में श्रीकृष्ण के तुल्य हैं। सो आप युद्ध में कर्ण के सारथि बनाये जायेंगे। तो उस समय आप कर्ण का तेजोवध करना – कर्ण को हतोत्साहित करना। ऐसा करने से अर्जुन की रक्षा होगी और हमारी जीत में सुविधा होगी। तब आपने कहा – हे युधिष्ठिर ! तुम्हारा कल्याण हो। कर्ण मुझे कृष्ण के बराबर का मानता है, सो वह मुझे ही अपना सारथि बनायेगा। तब मैं उसे कटुवंचन कह-कहकर उसका तेजोवध करूँगा। जिससे उसका दर्प नष्ट हो जायेगा और सुख से मारा जा सकेगा[278]।

प्रतीपमहितं वचः। ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे। तथा स हतदर्पश्च हततेजाश्च पाण्डव। भविष्यति सुखं हन्तुं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते' (महाभा.उ. ९.४३.. .४८)

[279]'नाहं जीवति गाङ्गेये राजन् योत्स्ये कथंचन।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शल्य-प्रकरण

भोले भण्डारी युधिष्ठिर ने कर्ण के तेजोवध की बात कही और बुद्धि के ब्रह्मचारी आपने उसे मान लिया। पर दोनों ने यह विचार नहीं किया, कि कर्ण की तो जग जाहिर प्रतिज्ञा है 'मैं भीष्म के जीवित रहते कतई युद्ध नहीं करूँगा। भीष्म की मृत्यु के बाद ही मैं अर्जुन से युद्ध करूँगा[279]। सो कर्ण तो लड़ेगा जब लड़ेगा। उससे पहले अजेय भीष्म पितामह स्वयं और उनकी सेना लाखों योद्धाओं का सफाया कर चुके होंगे। हुआ भी यही प्रतिदिन के दस हजार की गणना से दस दिनों में अकेले भीष्म पितामह ने ही पाण्डव-सेना के एक लाख योद्धाओं को मौत की नींद सुला दिया[280]। शेष कौरव-योद्धाओं ने इस अन्तराल में जो लाखों मारे वे अलग हैं।

शल्य? [३]

कुरुक्षेत्र के रणाङ्गन में युधिष्ठिर को शल्य का उत्तर

कुरुक्षेत्र में जब दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। तब युधिष्ठिर अपने कवच एवं शस्त्रास्त्र अपने रथ में ही रखकर हाथ जोड़े पैदल ही कौरव-सेना की ओर चल पड़े। वे प्रणाम करने और आशीर्वाद पाने के लिये पहले भीष्म पितामह, फिर द्रोणाचार्य, फिर गुरु कृप और अन्त में आप शल्य के पास गये। उसके प्रणाम करने के बाद आशीर्वाद में आपने वैसे ही वचन कहे जैसे तीनों ने कहे थे –

हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना॥ (महाभा.उ. १५६.२५)

280 'हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम्। दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्रागाह्निकं मम। योधानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते' (महाभा.उ. ११,१२)

281 '<u>अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः</u>॥ करिष्यामि हि ते कामं भागिनेय यथेप्सितम्। ब्रवीम्यतः क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत् किमिच्छसि॥ अनुजानामि चैव त्वां <u>युध्यस्व जयमाप्नुहि</u>' (महाभा.उ. ४३.८२,८३,८०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शल्य-प्रकरण

'हे युधिष्ठिर ! पुरुष अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है, यही सत्य है। मैं अर्थ-धन सम्पत्ति के कारण कौरवों के साथ बंधा हुआ हूँ, इसलिये युद्ध तो मैं कौरवों की ओर से करूँगा। मैं क्लीब=नपुंसक सा होकर यह कह रहा हूँ। पर तुम्हारी भी मनःकामना पूरी करना चाहता हूँ, सो युद्ध की बात को छोड़कर, अन्य मुझसे क्या चाहते हो ? मैं तुम्हें युद्ध करने की अनुज्ञा देता हूँ। जाओ युद्ध करो और विजय प्राप्त करो[281]।

शल्य जी ! यह तो आपके जीवन-व्यवहार से ज्ञात हो गया, कि आप अर्थ (धन=सम्पत्ति) के वशीभूत थे। इसी कारण विपुल धन-सम्पदा लेकर ही अपनी बहिन माद्री का पाण्डु के साथ विवाह-संबंध किया था और आपके कहे अनुसार हो सकता है, आपके पूर्व वंशजों में यह कन्या के बदले धनाप्तिवृत्ति रही हो[282]। वैसे माद्री के संबंध के समय से पूर्व ही आपके पिता महाराज ऋतायन तो दिवंगत हो चुके थे। सो यह कुलधर्म था या धनप्राप्ति की आपकी ही लालसा थी, यह पता नहीं।

किन्तु शल्य जी ! अर्थ के कारण आपका कौरवों के साथ बंधा होना कैसे हो गया? आप अपने विशाल राज्य के राजा थे और एक अक्षौहिणी सेना का भरण-पोषण करते थे[283]।

सो दुर्योधन के धनादि से आपके पालनपोषण का प्रश्न ही नहीं है। अब रही बात आपकी बहिन माद्री के संबंध के समय भीष्म पितामह से आपको जो धन मिला उसकी।

282'पूर्वैः प्रवर्तितं किंचित् कुलेऽस्मिन् नृपसत्तमैः। साधु वा यदि वाऽसाधु तन्नातिक्रान्तुमुत्सहे॥ व्यक्तं तद् भावतश्चापि विदितं नात्र संशयः। न च युक्तं तथा वक्तुं भवान् देहीति सत्तम॥ कुलधर्मः स नो वीर प्रमाणं परमं च तत्' (महाभा.आदि. ११२. ९-११)

283'तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्धमिव योजनम्। तथा हि विपुलां सेनां बिभर्ति स नरर्षभः॥ अक्षौहिणीपती राजन् महावीर्य-पराक्रमः' (महाभा.उ. ८.२,३)

284'ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा कुरुनन्दनः। स्थापयामास तां भार्यां शुभे वेश्मनि

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शल्य-प्रकरण

सो शल्य जी! भीष्म पितामह से जितना धन आपने पाया, उससे कई गुना तो महाराज पाण्डु ने माद्री से विवाह के बाद दिग्विजय के द्वारा जीतकर तथा भेंट में प्राप्त करके कौरवों के कोश को भर दिया और धृतराष्ट्र समेत भीष्म, सत्यवती, विदुर, कौसल्या और अन्य सुहृदों को उस धन की भेंटे देकर परितुष्ट कर दिया था –

'माद्री के विवाह करने के बाद पाण्डु ने अपनी नई रानी माद्री के लिये एक शुभ भवन व्यवस्थित कर दिया। फिर पाण्डु कुन्ती और माद्री दोनों पत्नियों के साथ आनन्दपूर्वक एक मास तक रहे और फिर दिग्विजय के उद्देश्य से हाथी, घोड़ों, रथों वाली भारी सेना के साथ नगर से निकल पड़े।' दशार्ण, मगध, मिथिला, काशी, सुह्म, पुण्ड्र आदि राज्यों के राजाओं को पाण्डु ने अपने पराक्रम से जीतकर उन्हें वश में कर लिया।

उन वशीभूत राजा लोगों ने महाराज पाण्डु को बहुत सारा धन, नाना प्रकार के रत्न, मणि, मोती, प्रवाल, बहुत सारा सोना, चाँदी, उत्तमोत्तम बैल, गौएँ, घोड़े, रथ, हाथी, गधे, ऊँट, भैंसें, बकरियाँ, भेड़ें, अत्युत्तम कम्बल, मृगचर्म आदि भेंट किये। उन्हें स्वीकार करके महाराज पाण्डु अपने देशवासियों को प्रसन्न करते हुए हस्तिनापुर की ओर चल दिये। पाण्डु के इस दिग्विजय को देखकर राजा लोग और उनके मन्त्रीगण कहने लगे कि – 'राजसिंह शान्तनु और भरत का जो यश नष्ट सा हो गया था, उसे पाण्डु

भाविनीम्॥ स ताभ्यां व्यचरत् सार्धं भार्याभ्यां राजसत्तमः। कुन्त्या माद्र्या च राजेन्द्रो यथाकामं यथासुखम्॥ ततः कौरवो राजा विहृत्य त्रिदशा निशाः। जिगीषया महीं पाण्डुर्निरक्रामत् पुरात् प्रभो॥ गजवाजिरथौघेन बलेन महतागमत्॥...। तेन ते निर्जिताः सर्वे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः। तं कृताञ्जलयः सर्वे प्रणता वसुधाधिपाः। उपाजग्मुर्धनं गृह्य रत्नानि विविधानि च॥ मणिमुक्ताप्रवालं च सुवर्णं रजतं बहु। गोरत्नान्यश्वरत्नानि रथरत्नानि कुञ्जरान्॥ खरोष्ट्रमहिषीश्चैव यच्च किंचिदजाविकम्॥ कम्बलाजिनरत्नानि राङ्कवास्तरणानि च॥ तत् सर्वं प्रतिजग्राह राजा नागपुराऽधिपः॥ तदादाय ययौ पाण्डुः पुनर्मुदितवाहनः। हर्षयिष्यन् स्वराष्ट्राणि पुरं च गजसाह्वयम्॥ शन्तनो राजसिंहस्य भरतस्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

ने फिर स्थापित कर दिया। जिन राजाओं ने पहले कौरवों के राज्य के हिस्से दबा लिये थे, तथा उनका धन हर लिया था, उन सब नृपतियों को पाण्डु ने जीत कर – आधीन करके करदाता बना दिया।'

उसके बाद पाण्डु की अगवानी के लिये भीष्म के साथ कौरव जन नागरिकों के सहित नगर से चल पड़े[284]।

वे नगर से कुछ दूर ही गये थे, कि उन्होंने पाण्डु की सेना के लोगों को बहुत सारे धनों और अनेक प्रकार के उत्तम मध्यम रत्नों से लदाफदा देखा। उस धन खजाने को और रत्नों को वे लोग बहुत सारे वाहनों में भरकर ला रहे थे। साथ ही उनके साथ जीते हुए हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, गौएँ और भेड़ें थीं। कौरवों की जहाँ तक दृष्टि पड़ी, वहाँ तक ये सब ही दिखाई दे रहे थे। तब पाण्डु ने अपने पिता (=ताऊ) भीष्म के चरणों में प्रणाम किया और नागरिकों को भी यथायोग्य सम्मान दिया। अन्य राज्यों को जीतकर और सफल होकर सकुशल लौटे पुत्र पाण्डु का भीष्म ने आलिंगन किया। उस समय उनकी आँखों से हर्ष के कारण आंसू बह निकले। तब गाजों-बाजों की ध्वनि के साथ पाण्डु ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया[285]।

च धीमतः। प्रणष्टः कीर्तिजः शब्दः पाण्डुना पुनराहृतः॥ ये पुरा कुरुराष्ट्राणि जहुः कुरुधनानि च। ते नागपुरसिंहेन पाण्डुना करदीकृताः। इत्यभाषन्त राजानो राजामात्याश्च संगताः। प्रतीतमनसो हृष्टाः पौरजानपदैः सह। प्रत्युद्ययुश्च तं प्राप्तं सर्वे भीष्मपुरोगमाः' (महाभा.आदि. ११२.१९...४०)

285 'ते नदूरमिवाध्वानं गत्वा नागपुरालयात्॥ आवृतं ददृशुर्हृष्टा लोकं बहुविधैर्धनैः। नानायानसमानीतै रत्नैरुच्चावचैस्तथा। हस्त्यश्वरथरत्नैश्च गोभिरुष्ट्रै-स्तथाविभिः॥ नान्तं ददृशुरासाद्य भीष्मेन सह कौरवाः॥ सोऽभिवाद्य पितुःपादौ कौसल्यानन्दवर्धनः। यथार्हं मानयामास पौरजानपदानपि॥ प्रमृद्य परराष्ट्राणि कृतार्थं पुनरागतम्। पुत्रमाश्लिष्य भीष्मस्तु हर्षादश्रूण्यवर्तयत्॥ स तूर्यशतशङ्खानां भेरीणां च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शल्य-प्रकरण

नगर में पहुँचने पर पाण्डु ने अपने बाहुबल से जीते हुए धन को धृतराष्ट्र के अनुमोदन से देवव्रत भीष्म को, दादी सत्यवती को तथा माता अम्बालिका को भेंट कर दिया । विदुर के लिये भी बहुत सा धन भेज दिया । अन्य सुहृदों को भी पाण्डु ने धन से सन्तृप्त किया । तब दादी सत्यवती ने भी अपने पौते पाण्डु के द्वारा उपार्जित उत्तम धनों से भीष्म को और पाण्डु की नानी कौसल्या को सन्तुष्ट किया। पाण्डु के द्वारा उपार्जित धनों से धृतराष्ट्र ने अश्वमेध आदि बड़े-बड़े यज्ञ किये[286] । इतना ही नहीं वन में विचरण करते हुए पाण्डु ने नववल्कली और फलमूलभोजी होने का निश्चय किया तो अपनी चूडामणि, निष्क, अङ्गद, कुण्डल और अपनी दोनों पत्नियों के आभूषण भी उतार कर ब्राह्मणों के द्वारा धृतराष्ट्र के पास भिजवा दिये[287] ।

तो इस प्रकार माद्री के बदले पाये धन के कारण, कौरव दुर्योधन के साथ आपके बंधने की दूर-दूर तक सम्भावना नहीं थी । हाँ ! पाण्डवों के रणनिमन्त्रण पर उनके पास जाते समय मार्ग में आपके स्वागत सत्कार में जो कुछ धन दुर्योधन ने खर्च किया उसके

महास्वनैः। हर्षयन् सर्वशः पौरान् विवेश गजसाह्वयम्॥ (महाभा.आदि. ११२.४०-४५)

286 'धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्वबाहुविजितं धनम्। भीष्माय सत्यवत्यै च मात्रे चोपजहार सः॥ विदुराय च वै पाण्डुः प्रेषयामास तद् धनम्। सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन समतर्पयत्। ततः सत्यवती भीष्मं कौसल्यां च यशस्विनीम्। शुभैः पाण्डुजितैरर्थैस्तोषयामास भारत॥ तस्य वीरस्य विक्रान्तैः सहस्रशतदक्षिणैः। अश्वमेधशतैरीजे धृतराष्ट्रो महामखैः॥ (महाभा.आदि. ११३.१-५)

287 'ततश्चूडामणिं निष्कमङ्गदे कुण्डलानि च । वासांसि च महार्हाणि स्त्रीणामाभरणानि च ॥ प्रदाय सर्वं विप्रेभ्यः पाण्डुः पुनरभाषत। गत्वा नागपुरं वाच्यं पाण्डुः प्रव्रजितो वनम्॥ ते गत्वा नगरं राज्ञो यथावृत्तं महात्मनः॥ कथयांचक्रिरे राज्ञस्तद् धनं विविधं ददुः (आदि. ११८.३८...४४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कारण आप उससे बंधा मानते हैं, तो क्या आपकी बुद्धि का दिवाला पिट गया था? थोड़ी सी स्वार्थ भरी सुविधा को देखकर उधर ही फंस जाने से और बड़ा लीचड़पना क्या होगा, जिसके कारण आप अपने भानजों और उसकी सेना के गले तराशने के लिये दुर्योधन की सेना के अंग बन गये और अपनी महती सेना को युद्धाग्नि में झोंक दिया।

वैसे तो दुर्योधन द्वारा लगाया गया धन भी तो पाण्डु द्वारा परिपूरित कोश का और कपटद्यूत द्वारा पाण्डवों के हथियाये हुए धन का ही भाग होगा।

फिर आपने आशीर्वाद के रूप में युधिष्ठिर से कहा – युद्ध करो और विजय प्राप्त करो' यह कौनसा ढंग हुआ आशीर्वाद का? मैं और मेरी विशाल सेना तो दुर्योधन की सेना के साथ मिलकर तुम्हारे और तुम्हारी सेना के धुर्रे उड़ायेंगे और तुम विजय प्राप्त करो। पूर्व के तीन आशीर्वाददाताओं के समान आपकी बुद्धि भी विवेक को धत्ता बताकर विचार करने लगी थी, प्रतीत होता है।

"अरे शल्य जी! यह अवसर था, कि आप भी इस महाविनाशकारी युद्ध को रोकने का प्रयास करते। जब वास्तव में ही दोनों सेनाओं के लाखों-लाखों वीर युद्ध के लिये कुरुक्षेत्र में आ जमे। उस समय आपको नहीं लगा कि इन सबके सिर पर मौत मंडरा रही है। उस मौत के ताण्डव को रोकने के लिये आप दोनों सेनाओं के बीच खड़े होकर गर्जना करते कि यह युद्ध सबका विनाशकारी है, यह नहीं होगा। हे भीष्म जी! हे आचार्य द्रोण जी! हे गुरु कृपजी और अन्य बुद्धिमान् लोगो! आप लोग क्यों इस युद्ध के भागीदार बन रहे हो। आओ सब मिलकर इस युद्ध को रोकें। ऐसा कहने पर उन मतिमान् लोगों पर असर पड़ता और पाण्डवों का छीना राज्य दिलवाने के लिये अथवा न्यूनतम पांच ग्राम (=अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा एक अन्य)[288] पाण्डवों को दिलवाने के लिये दुर्योधन-चौकड़ी पर दबाव डालते। और तब भी यदि

[288] द्रष्टव्य – पृ. १६९

दुर्योधन दल नहीं मानता, तो आप अपनी सेना सहित पाण्डव-पक्ष में आ जाते। यदि दुर्योधन आपको याद दिलाता कि आपने मेरी सेना के साथ रहने का वचन दिया था, तो आपको कहना था, कि 'तुम लोगों ने दुबारा जुआ खेलते समय कहा था कि जो हार जायेगा वह बारह वर्ष वन में रहेगा और तेरहवें वर्ष में उसका अज्ञातवास होगा। इस प्रकार तेरह वर्ष पूर्ण होने पर हारने वाले को अपना राज्य वापिस मिल जायेगा,[289] सो पाण्डवों के द्वारा तेरह वर्ष ही नहीं उससे भी पाँच महीने और बारह दिन का समय,[290] पूरा करने पर भी तुमने उनका राज्य न लौटा कर वचन भङ्ग किया, इसलिये मैं भी ऐसे लोगों को दिया गया वचन वापिस लेता हूँ। फिर दुर्योधन के उन अपकारों को याद दिलाते जो उसने पाण्डवों के प्रति किये थे तथा जिनमें से कुछ को आपने युधिष्ठिर को गिनाया था[291]।

किं च शल्य जी ! आप तुलना करो शकुनि से अपनी। शकुनि दुर्योधन का मामा था, आप पाण्डवों के मामा थे। शकुनि ने दुर्योधन की हठ पर कपटद्यूत से पाण्डवों की राज्य-लक्ष्मी जीतकर दुर्योधन के सुपुर्द कर दी तथा उचित-अनुचित कर्म में उसका सहयोग किया। एक आप मामा थे पाण्डवों के, जिसने उचित रूप से भी उनका हित कभी नहीं किया, अपितु उनका विनाश करने के लिये कमर कस कर युद्ध में कूद पड़े। क्या विचित्र स्थिति थी ! एक अधर्मी मामा अधर्मी भानजों के साथ युद्ध में सहयोगी था

---

289 'त्रयोदशे च निवृत्ते पुनरेव यथोचितम्। स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यमितरैरथवेतरैः॥ अनेन व्यवसायेन सहास्माभिर्युधिष्ठिर। अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमेहि दीव्यस्व भारत' (महाभा.सभा. ७६.१४-१५)

290 द्रष्टव्य - पृ. १२७

291 'यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह। परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि वै॥ जटासुरात् परिक्लेशः कीचकाच्च महाद्युते। द्रौपद्याधिगतं सर्वं दमयन्त्या यथाशुभम्' (महाभा.उ. ८.५०.५१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

और एक आप जैसा मामा अपने धर्मात्मा भानजों के विरुद्ध अपनी सेना सहित अधर्मियों के पक्ष में युद्ध कर रहा था!!! हाय! हाय!!

काल की सच्ची परन्तु चुभती कटूक्तियाँ सुनकर शल्य की आत्मा तो मानो आत्मग्लानि अनुभव करके काल के सामने से सरक गई।

तब काल युधिष्ठिर की ओर अभिमुख हुआ। उस समय अपनों और परायों के हुए महाविनाश का स्मरण करके महापश्चात्ताप करता हुआ युधिष्ठिर वैराग्यवान् होकर वन की ओर जाकर वानप्रस्थ-जीवन बिताने पर उतारू था। उसे इस वैराग्य से उबारने के लिये कभी अर्जुन समझा रहे थे, कभी भीमसेन, कभी नकुल तो कभी सहदेव। कभी देवस्थान नाम के ऋषि उद्बोधन दे रहे थे, तो कभी द्वैपायन व्यास। युधिष्ठिर के किसी की बात गले नहीं उतरी और वह प्राणत्याग करने पर उतारू हो गया, जिससे व्यास जी ने रोका और व्यास, श्रीकृष्ण और नारद के बार-बार समझाने-बुझाने से युधिष्ठिर अपने हठ को त्यागने को उद्यत हुए। तभी काल ने युधिष्ठिर को पुकार कर कहा, हे युधिष्ठिर! 'अब पछताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत' इस महात्रासदी वाले महायुद्ध के कारणों में आपका व्यवहार भी कम सहायक नहीं है। सुनो –

युधिष्ठिर ? [१]

द्यूतक्रीडा और युधिष्ठिर

क्यों युधिष्ठिर! तुम धर्मराज कहलाते हो। तुम्हारे सब संस्कार ऋषि मुनियों ने किये और वैदिक वाङ्मय में भी तुम पाण्डवों को पारङ्गत बनाया[292]। तो वेदादिशास्त्रों के पढ़ते समय अक्षक्रीडा को व्यसन बताने वाले और उससे होने वाली हानियों के

---

[292] 'काश्यपः कृतवान् सर्वमुपाकर्म च भारत। चौलोपनयनादूर्ध्वमृषभाक्षा यशस्विनः॥ वैदिकाध्ययने सर्वे समपद्यन्त पारगाः (महाभा.आदि. १२३)

विषय में भी तुमने पढ़ा होगा। वेद में स्पष्ट रूप से द्यूतक्रीडा न करने का आदेश है (ऋ. १०.३४) वह भी तुम्हारे ध्यान में रहा होगा। फिर भी तुम द्यूतक्रीडा करने को क्यों सहमत हो गये ?

धृतराष्ट्र के आदेश से जब विदुर तुम्हारे पास द्यूतक्रीडा का निमन्त्रण लेकर पहुँचे, तब तुमने द्यूतक्रीडा के विषय में विदुर से कहा था –

हे विदुर जी ! द्यूतक्रीडा में तो हमें कलह ही दिखाई देता है, किस बुद्धिमान् को जुआ खेलना अच्छा लगेगा। आपका इस विषय में क्या विचार है ? दुर्योधन के पास महान् भय के उत्पादक और कपट-माया से खेलने वाले जुआरी विद्यमान हैं। फिर भी मुझे बुलाया है, तो मैं जाऊँगा। क्योंकि ललकारने पर पीछे नहीं हटने का मेरा व्रत है[293]।

फिर हस्तिनापुर पहुँच कर द्यूतसभा में भी तुमने शकुनि से कहा था –

हे शकुनि ! यह जुआ खेलना–कपटपूर्ण जुआ खेलना पाप ही है। इसमें कोई क्षत्रियोचित पराक्रम की बात नहीं है। जुआ खेलना कोई शाश्वत नीति-परम्परा नहीं है। कपटद्यूत वाले जुआरी का कोई मान या प्रशंसा नहीं करता है। तुम कपटमाया के द्वारा क्रूर के समान हमें जीतने का प्रयत्न मत करो। निश्चय ही यह जुआ खेलना पाप ही

---

293 'द्यूते क्षत्तः कलहो विद्यते नः को वै द्यूतं रोचयेद् बुध्यमानः। किं वा भवान् मन्यते युक्तरूपम्,...। महाभयाः कितवाः सन्निविष्टा मायोपधा देवितारोऽत्र सन्ति। आहूतोऽहं न निवर्ते कदाचित् तदाहितं शाश्वतं वै व्रतं मे। (महाभा.सभा. ५८. १०,१४,१६)

294 'निकृतिर्देवनं पापं न क्षात्रोऽत्र पराक्रमः। न च नीतिर्ध्रुवा राजन् किं त्वं द्यूतं प्रशंससि। नहि मानं प्रशंसन्ति निकृतौ कितवस्य हि। शकुने मैव नो जैषीरमार्गेण नृशंसवत्॥ इदं वै देवनं पापं निकृत्या कितवैः सह। धर्मेण तु जयो युद्धे तत्परमं, न तु देवनम्॥ (महाभा.सभा. ५९.५,६,१०)

है। क्षत्रिय के लिये तो युद्ध में धर्मपूर्वक विजय प्राप्त करना ही श्रेष्ठ है, जुआ खेलना नहीं[294]।

युधिष्ठिर ! कितनी विषमता है तुम्हारी बात में। तुम बार-बार द्यूत को कलह-कारक और पाप बता रहे थे, फिर भी उस द्यूत रूपी पाप को करने के लिये उद्यत हो रहे थे और तुम्हारा तर्क यह था, कि मैं ललकारने पर पीछे नहीं हटता हूँ। अरे ! तो ललकारने पर पीछे नहीं हटने की बात तो उस विषय में उचित है, जिसे तुम क्षत्रिय का श्रेष्ठ कर्त्तव्य बता रहे थे=अर्थात् युद्ध। युद्ध के लिये ललकारने पर क्षत्रिय का पीछे नहीं हटना यह तो समझ में आने वाली बात है। पर पाप करने के लिये बुलाने पर पाप कर्म करने से पीछे नहीं हटना, यह कौनसा व्रत है ? पाप तो न स्वयं करना चाहिये और न ही किसी के द्वारा उकसाये जाने पर। क्या तुमसे कोई कहता कि आओ शर्त्त लगाते हैं कौन अधिक से अधिक मद्यपान करता है, तो क्या तुम मद्य के घड़े पीने से पीछे नहीं हटते और मद्य पीकर उन्मत्त हो जाते ? या कोई ललकारता कि कौन अपनी माता आदि का अपमान करने में तेज है, तो क्या तुम माता का अपमान करते ? अथवा कोई उकसाता कि आओ परस्त्रीगमन करने की होड़ लगाते हैं, तो क्या तुम परस्त्रीगमन रूपी पाप करते? अथवा कोई पापी यह कहता कि आओ गोवध करने की स्पर्धा करते हैं, तो क्या तुम गोवध रूपी पाप करते ? निश्चय ही नहीं करते।

तो प्रिय युधिष्ठिर ! जैसे मद्यपान, मातृ-तिरस्कार, परस्त्रीगमन, गोवध आदि पापों के करने में तुम कभी प्रवृत्त नहीं होते, वैसे ही तुम्हें कितना ही उकसाने पर भी जुआ नहीं खेलना चाहिये था। महासंहारक महाभारत-युद्ध का मुख्य कारण यह जुआ खेलना

[295] 'धिग् धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निःसृता गिरः। चुक्षुभे सा सभा राजन् राज्ञां संजज्ञिरे शुचः॥ भीष्म-द्रोण-कृपादीनां स्वेदश्च समजायत। शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्त्व इवाभवत्। आस्ते ध्यायन्नधोवक्त्रो निःश्वसन्निव पन्नगः' (महाभा.सभा. ६५. ४०-४२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

ही था। न तुम व्यर्थ के झूठे व्रत का आसरा लेकर जुआ खेलते, न तुम्हारा राज्य-वैभव छिनता, न ही उसकी प्राप्ति के लिये यह युद्ध करना पड़ता। और न यह महासंहार होता!!!

फिर तुम्हें जुआ खेलने की सनक तो थी, पर जुआ खेलना आता नहीं था। पहले १७ सत्रह बार पाशे फेंके गये और तुमने पहले दाव में जैत्र नाम का छः घोड़ों वाला सर्वोत्तम रथ दांव पर लगाया और उसे हार गये फिर क्रमशः सुवर्णालङ्कार-धारिणी अपनी सैंकड़ों दासियों को, फिर अपने हजारों दासों को, फिर अपने उत्तम एक हजार हाथियों को, फिर अपने एक हजार उत्तम रथों और सारथियों को, फिर चित्ररथ द्वारा भेंट किये गये अपने उत्तम घोड़ों को, फिर अपने शकट आदि वाहनों को उनके चालकों को, फिर तांबे और लोहे के बड़े-बड़े चार सौ सन्दूकों में भरे दो हजार द्रोण वजन के सोने को, फिर अपने असंख्य धन को, फिर अपने सम्पूर्ण गो- धन, अश्वधन, राजकुमारों के समस्त आभूषणों को, फिर नकुल को, फिर सहदेव को, फिर अर्जुन को, फिर भीमसेन को तथा अन्त में अपने आपको। इन सबके हार जाने के बाद तुमने शकुनि के उकसाने पर द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया और उसे भी हार गये !!

यद्यपि आठवें दाँव के बाद ही अर्थात् दो हजार द्रोण (=बत्तीस हजार सेर) सोने के हारने के बाद ही महात्मा विदुर ने बीच में आकर धृतराष्ट्र को डाँटा फटकारा, जुए का फिर विरोध किया, दुर्योधन को ऊँचा-नीचा समझाया, पर वह नहीं माना और जुआ चालू रहा। किन्तु द्रौपदी के दाँव पर लगाने से तो बुजुर्ग सभासद् तुम्हें धिक्कारने लगे। सभा में हलचल मच गई, भीष्म, द्रोण, कृप को पसीना छूट गया और विदुर माथा पकड़ कर बैठ गये[295]।

युधिष्ठिर के द्वारा द्रौपदी के भी दांव पर लगा देने से भीष्म, द्रोण आदि बुजुर्गों के पसीने छूटने की और विदुर के माथा पकड़कर बैठ जाने की घटना का स्मरण करके काल भी मन्युमान् होकर बोला – हे युधिष्ठिर ! तुमने यह महानिन्दनीय कार्य किया था। उस

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

समय तुम्हारे भाई भीमसेन ने सही कहा था – 'जुआरियों के घरों में भी दासियाँ होती हैं, पर उनको वे लोग भी दांव पर नहीं लगाते, क्योंकि उन पेशेवर जुआरियों में भी उन अपनी दासियों के प्रति दया भाव होता है[296]।

हे धर्मराज ! तुम उन पेशेवर जुआरियों से भी निकृष्ट बन गये। वे अपनी पत्नी को या किसी बहिन-बेटी को तो क्या अपनी दासी को भी दांव पर नहीं लगाते, जबकि तुमने तो पत्नी द्रौपदी को – इन्द्रप्रस्थ-साम्राज्य की महारानी द्रौपदी को – पतिव्रता सन्नारी द्रौपदी को दांव पर लगा दिया ! धिक्कार है तुम्हें !!

तुम शत्रुओं पर दया दिखाते रहे, पर एक अबला महारानी द्रौपदी को दांव पर लगाते समय तुम्हारी दया कहाँ भाग गई थी ? निश्चय ही तुम्हारी बुद्धि उस समय भ्रष्ट हो गई थी।

वैसे तो जब तुम जुआ खेलने द्यूतसभा में उपस्थित हुए और तुमने शकुनि को कपट द्यूत को बुरा बताते हुए कहा था – 'जुआरियों के साथ मिलकर कपटद्यूत की क्रीड़ा करना पाप है। आर्य लोग म्लेच्छ भाषा का प्रयोग करना और छल छद्म करना उचित नहीं समझते। युद्ध के विषय में भी कुटिलता-रहित और धूर्त्ततारहित युद्ध करने का ही उनका व्रत होता है। इसलिये हे शकुनि ! तुम इस कपट द्यूत के द्वारा पराये धन का हरण मत करो। मैं छल कपट के द्वारा सुख की और धन की इच्छा नहीं कर सकता। जुआरी के आचरण को लोक में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है[297]।

---

[296] 'भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर। न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि' (महाभा.स. ६८.१)

[297] 'इदं वै देवनं पापं निकृत्या कितवैः सह।... नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिर्मायया न चरन्त्युत॥ अजिह्ममशठं युद्धमेतत् सत्पुरुषव्रतम्॥... तद् वै वित्तं मातिदेवीर्मा जैषीः शकुने परान्॥ निकृत्या कामये नाहं सुखान्युत धनानि वा। कितवस्येह कृतिनो वृत्तमेतन्न पूज्यते" (महाभा.स. ५९.१०-१३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

आपके ऐसा कहने पर शकुनि ने कहा था – 'इस प्रकार के सभी कार्यों में निकृति (=कपट) तो चलता ही हैं'। सो तुम यहाँ मेरे पास पहुँचकर द्यूत को निकृति-परक=कपटयुक्त द्यूत समझते हो और तुम्हें पराजित होने का भय है, तो द्यूतक्रीडा से अलग हो जाओ – द्यूत मत खेलो[298] तब तुमने अपनी वही बात दुहराई, जो निमन्त्रण देने गये विदुर के सामने कही थी 'मैं ललकारने पर कभी पीछे नहीं हटता हूँ, यह मेरा शाश्वत व्रत है' यहाँ कुछ और जोड़ दिया कि 'बुलावा आने पर मैं भागता नहीं हूँ और भाग्य बड़ा बलवान् होता है, सो मैं काल के वशीभूत होकर खेलूँगा[299]। हे धर्मराज ! यह कैसी विचित्र समझ है तुम्हारी ? एक ही समय में दो प्रकार की बात कहते रहे । कपटद्यूत को पाप भी कहते रहे और उस पाप को करने में संलग्न भी हो गये ! जब शकुनि ने कहा, कि 'तुम्हें भय है, तो मत खेलो'। तब तुरन्त द्यूतक्रीडा से अपने आपको अलग कर लेते और कहते, कि क्षत्रियों की असली क्रीड़ा तो युद्धक्रीड़ा है । सो उसमें मुकाबले के लिये आ जाओ।

पर तुमसे यह नहीं कहा गया । इसका कारण यही प्रतीत होता है, कि तुमको द्यूत का चस्का लगा हुआ था । तभी तुम विराटराज के यहाँ भी सभास्तार (=द्यूतक्रीड़ा में सहायक) बने । पर आपको उस द्यूतक्रीडा मैं नैपुण्य प्राप्त नहीं था। यदि चस्का था, तो उस विषय में प्रयत्नपूर्वक चातुर्य प्राप्त कर लेना चाहिये था, अन्यथा उससे दूर ही रहना

---

[298] एवं कर्मसु सर्वेषु निकृत्यैव युधिष्ठिर। विद्वानविदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः।। एवं त्वं मामिहाभ्येत्य निकृतिं यदि मन्यसे। देवनाद् विनिवर्त्तस्व यदि ते विद्यते भयम्।। (महाभा.स. ५९.१६,१७)

[299] 'आहूतो न निवर्त्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
विधिश्च बलवान् राजन् दिष्टस्यास्मि वशे स्थितः' (महाभा.स. ५९.१८)

[300] आहूय राजा कुशलैरनार्यैर्दुष्टात्मभिर्नैकृतिकैः सभायाम्।
द्यूतप्रियैर्नातिकृतप्रयत्नः कस्मादयं नाम निसृष्टकामः (महाभा.स. ६७.५०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

चाहिये था। द्रौपदी को भी इस बात का ज्ञान था, कि युधिष्ठिर को द्यूत से लगाव तो है, पर उस विषय में इनका प्रयत्न अल्प ही है[300]।

तो युधिष्ठिर महोदय ! जब तुमको पता लग गया था, कि शकुनि द्यूत में कपट करेगा तो तुमको भी उसके कपट को काटने के लिये, चतुराई से काम लेना चाहिये था। तुमने १७-१८ चालों में अपनी चल-अचल सारी सम्पत्ति चंद पलों में दाँव पर लगा दी। यह जल्दबाजी, शेखी और मूर्खता की पराकाष्ठा थी। तुम यहाँ युक्ति से काम लेते। तुमने आठवीं चाल में तांबे और लोहे के बड़े-बड़े सन्दूकों में रखे हुए अपने सोने को दांव पर लगाया था। प्रत्येक सन्दूक में पांच-पांच द्रोण सोना था[301]। कुल दो हजार द्रोण अर्थात् बत्तीस हजार सेर सोना था। एक सेर में ८० निष्क होते हैं, तो २५,६०,००० पच्चीस लाख साठ हजार निष्क (=तोले) हुए। सो आप शेखी को किनारे रख के पहली चाल में एक निष्क सोना दांव पर लगाते। हारने पर दूसरा निष्क लगाते। इसी प्रकार एक-एक निष्क लगाते रहने से चार मास तक तो यह सोना ही समाप्त नहीं होता। फिर भी यदि जुआ चलता रहता, तो नौंवी चाल में जो करोड़ों असंख्यों मुद्राएँ दांव पर झोंक दी थी[302]। उनमें से हरेक चाल पर एक-एक सिक्का दांव पर लगाते जाते। ऐसा करने से कई वर्ष तक जुआ चलता तो भी वह राशि समाप्त न होती। फिर दसवीं चाल के बैलों, गौओं, घोड़ों, बकरियों और भेड़ों की[303] बारी आती। उनमें से एक-एक भेड़,

---

301 'ताम्रलोहैः परिवृता निधयो ये चतुःशताः। पञ्चद्रौणिक एकैकः सुवर्णस्याहतस्य वै॥ जातरूपस्य मुख्यस्य अनर्घेयस्य भारत... तेन दीव्याम्यहं त्वया' (महाभा.स. ६१.२९,३०)

302 'अयुतं प्रयुतं चैव शङ्कुं पद्मं तथार्बुदम्। खर्वं शङ्खं निखर्वं च महापद्मं च कोटयः॥ मध्यं चैव परार्धं च... तेन दीव्याम्यहं त्वया' (महाभा.स. ६५.३,४)

303 'गवाश्वं बहुधेनुकमसंख्येयमजाविकम्।... तेन दीव्याम्यहं त्वया' (महाभा.स. ६५.६)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

एक-एक बकरी आदि लगाते जाते...। आपने ११वीं चाल तक अपनी जितनी सम्पदा दांव पर लगाई थी, उसे इस युक्ति से लगाते, तो बीसियों वर्षों तक भी आपकी सम्पदा नहीं खुटती।

वस्तुत: तो तुम्हारी इस युक्ति को देखकर कपटी शकुनि कुछ समय में ही जुआ खेलने से मना कर देता। न जुआ खेला जाता या युक्ति के आगे जुआ बीच में रुक जाता, तो न तुम्हारी राज्यलक्ष्मी छिनती और न उसे पाने को महाविनाशक युद्ध करना पड़ता।

युधिष्ठिर ? [२]

पुन: द्यूतक्रीडा और युधिष्ठिर

द्यूतसभा में कपटियों के हाथों जब युधिष्ठिर ने सब कुछ गंवा दिया। तब उसके छलकपट से हुए पाण्डवों के राज्यहरण के और द्रौपदी के महा घोर अपमान के भयानक परिणाम आदि पर विचार करके राजा धृतराष्ट्र ने उस द्यूत-प्रक्रिया को खारिज करके, पाण्डवों की सारी चल-अचल सम्पत्ति उन्हें वापिस कर दी और पाण्डव अपने रथों से अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ को रवाना भी हो गये[304]।

धृतराष्ट्र की अनुमति – अनुज्ञा से धन-सहित पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ जाता देखकर

[304]धृतराष्ट्र उवाच – 'अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत। अनुज्ञाताः सहधनाः स्वराज्यमनुशासत॥...। इत्युक्तो भरतश्रेष्ठ धर्मराजो युधिष्ठिरः। कृत्वाऽऽर्यसमयं सर्वं प्रतस्थे भ्रातृभिः सह॥ ते रथान् मेघसंकाशानास्थाय सह कृष्णया। प्रययुर्हृष्टमनस इन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम्' (महाभा.स. ७३.१७,१८)

[305]अनुज्ञातांस्तान् विदित्वा धृतराष्ट्रेण धीमता। राजन् दुःशासनः क्षिप्रं जगाम भ्रातरं प्रति॥ दुर्योधनं समासाद्य सामात्यं भरतर्षभ। दुःखार्तो भरतश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत्॥ दुःखेनैतत्समानीतं स्थविरो नाशयत्यसौ। शत्रुसाद् गमयद् द्रव्यं तद्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

दुःखी दुःशासन जल्दी से दुर्योधन के पास गया और बोला कि बड़े कष्ट से पाई हुई लक्ष्मी को, यह बूढ़ा पिता वापिस शत्रुओं को देकर गंवा रहा है। यह सुनकर दुर्योधन अपनी तिकड़ी के साथ झट से धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और बोला – हे पिताजी! वे शस्त्रधारी विषैले सर्पों के समान क्रुद्ध पाण्डव आपको और आपके लोगों को नष्ट कर देंगे। ये जब यहाँ से जा रहे थे, तो अर्जुन फुंफकारता हुआ बार-बार गांडीव को हाथ में ले रहा था। भीमसेन भारी गदा को ऊपर उठा रहा था। नकुल, सहदेव और युधिष्ठिर अपनी तलवारों और म्यानों को अर्धचन्द्राकार घुमा रहे थे और इशारों से आपस में कुछ कह रहे थे। हमारे द्वारा अपमानित पाण्डव हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे। विशेषकर द्रौपदी को जो हमने कष्ट पहुँचाया है, उसको तो वे किसी भी हालत में क्षमा नहीं करेंगे। सो हे पिताजी! आपका कल्याण होगा, यदि आप हमें फिर से जुआ खेलने की अनुमति दे दें। इस बार के द्यूत में वनवास-अज्ञातवास की शर्त होगी। जो हारेगा उसे बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास भोगना पड़ेगा। मामा शकुनि द्यूत के विशेषज्ञ हैं, वे फिर युधिष्ठिर को हरा देंगे। उनके तेरह वर्ष वन में रहने के काल में हमारी राज्य पर

बुध्यध्वं महारथाः॥ अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः। मिथः संगम्य सहिताः.... धृतराष्ट्रं मनीषिणम्। अभिगम्य त्वरायुक्ताः श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन्।... आत्तशस्त्रा रथगताः कुपितास्तात पाण्डवाः। निःशेषं वः करिष्यन्ति क्रुद्धा ह्याशीविषा इव॥ सन्नद्धो ह्यर्जुनो याति विधृत्य परमेषुधी। गाण्डीवं मुहुरादत्ते निःश्वसंश्च निरीक्षते॥ गदां गुर्वीं समुद्यम्य त्वरितश्च वृकोदरः। स्वरथं योजयित्वाऽऽशु निर्यात इति नः श्रुतम्। नकुलः खड्गमादाय चर्म चाप्यर्धचन्द्रवत्। सहदेवश्च राजा च चक्रुराकारमिङ्गितैः।...। न क्षंस्यन्ते तथास्माभिर्जातु विप्रकृता हि ते। द्रौपद्याश्च परिक्लेशं कस्तेषां क्षन्तुमर्हति॥ पुनर्दीव्याम भद्रं ते वनवासाय पाण्डवैः। एवमेतान् वशे कर्तुं शक्ष्यामः पुरुषर्षभ॥ ते वा द्वादश वर्षाणि वयं वा द्यूतनिर्जिताः। प्रविशेम महारण्यमजिनैः प्रतिवासिताः॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम्।...। अयं हि शकुनिर्वेद सविद्यामक्षसम्पदम्। दृढमूला वयं राज्ये मित्राणि परिगृह्य च। ते च त्रयोदशं वर्षं पारयिष्यन्ति चेद् व्रतम्। जेष्यामस्तान्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

पक्की पकड़ हो जायेगी और उसके बाद उन्हें हम युद्ध में जीत लेंगे[305]।

दुर्योधन की बात सुनते ही धृतराष्ट्र बोले – चाहे पाण्डव यहाँ से चल दिये हों, पर अभी वे मार्ग में ही होंगे, अतः उन्हें लौटा लो। वे आवें और फिर जुआ खेलें। धृतराष्ट्र की आज्ञा को सुनकर द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, युयुत्सु, भूरिश्रवा, भीष्म पितामह और विकर्ण ने एक स्वर से 'फिर द्यूतक्रीडा नहीं होनी चाहिये' ऐसा कहा। इस प्रकार सभी निरीह दूरदर्शी मित्रों के वचन की परवाह न करके बेटे के लाड में फंसे धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुलावा भेज ही दिया[306]।

तब दुर्योधन की दुःखी माता गान्धारी ने भी पुनर्द्यूत को रोकने के उद्देश्य से अपने पति धृतराष्ट्र को कहा – हे राजन्! आप अपनी करतूत से महासागर में डूबने का प्रयास मत करो। अपने उद्दण्ड पुत्रों की बुद्धि के अनुसार मत चलो। इस कुल के महानाश के आप कारण कहलाओगे। कौन मूर्ख बांधे हुए बांध या पुल को तोड़ना चाहेगा या शान्त हुई अग्नि को फिर प्रज्वलित करना चाहेगा। शान्त हुए पाण्डवों को कौन और अधिक कुपित करना चाहेगा। मेरी बात मान लो, नहीं तो पीछे जाकर मेरी इस सलाह को तुम्हें

वयं राजन्, रोचतां ते परंतप' (महाभा.स. ७४.२...६,११...२३)

[306]तूर्णं प्रत्यानयस्वैतान् कामं व्यध्वगतानपि। आगच्छन्तु पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः॥ ततो द्रोणः सोमदत्तो बाह्लीकश्चैव गौतमः। विदुरो द्रोणपुत्रश्च वैश्यापुत्रश्च वीर्यवान्॥ भूरिश्रवाः शान्तनवो विकर्णश्च महारथः। मा द्यूतमित्यभाषन्त शमोऽस्त्विति च सर्वशः॥ अकामानां च सर्वेषां सुहृदामर्थदर्शिनाम्। अकरोत् पाण्डवाह्वानं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः' (महाभा.स. ७४.२४–२७)

[307]अथाब्रवीन्महाराज धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्। पुत्रहार्दाद् धर्मयुक्ता गान्धारी शोककर्षिता॥... मा निमज्जीः स्वदोषेण महाप्सु त्वं हि भारत। मा बालानामशिष्टानामभिमंस्था मतिं प्रभो। मा कुलस्य क्षये घोरे कारणं त्वं भविष्यसि॥ बद्धं सेतुं को नु भिन्द्याद् धमेच्छान्तं च पावकम्॥ शमे स्थितान् को नु पार्थान् कोपयेद्

स्मरण कराना पड़ेगा, तब तक पूरा बिगाड़ हो जायेगा। मैंने पहले भी कहा था, कि मेरी सलाह के अनुसार इस कुलकलङ्क दुर्योधन को त्याग दो । पर आपने बेटे के लाड के कारण वैसा नहीं किया। अब उसी का परिणाम कौरवकुल का नाश होगा । आपकी बुद्धि; शान्ति, धैर्य और न्यायनीति को अपनावे और वह प्रमाद (=अनवधानता) से न घिरे ॥ गान्धारी की सलाह को किनारे करते हुए धृतराष्ट्र ने कहा – 'भले ही कुल का नाश हो जावे, मैं इस द्यूतक्रीडा को रोक नहीं सकता । मेरे पुत्र जैसा चाहते हैं, वैसा ही होवे । पाण्डव आवें और मेरे पुत्र उनके साथ जुआ खेलें[307]।

इसी बीच धृतराष्ट्र का भेजा हुआ प्रातिकामी इन्द्रप्रस्थ की ओर जाते हुए युधिष्ठिर से बोला – हे युधिष्ठिर ! पिता धृतराष्ट्र ने तुम्हें यह सन्देश भेजा है, कि द्यूत-सभा सजा दी गई है, तुम आओ और पासे फेंककर जुआ खेलो । तब युधिष्ठिर बोले – विधाता के लेखानुसार सभी प्राणी सुख या दुःख पाते हैं। सो यदि पुनः जुआ खेलना पड़ रहा है, तो उस सुख या दुःख से छुटकारा नहीं पाया जा सकता । बूढ़े धृतराष्ट्र के आदेश से द्यूत का

भरतर्षभ। स्मरन्तं त्वामाजमीढ स्मारयिष्याम्यहं पुनः ॥...तस्मादयं मद्वचनात् त्यज्यतां कुलपांसनः ॥ तथा ते न कृतं राजन् पुत्रस्नेहान्नराधिप। तस्य प्राप्तं फलं विद्धि कुलान्तकरणाय यत् ॥ शमेन धर्मेण नयेन युक्ता या ते बुद्धिः सास्तु ते मा प्रमादीः ॥...। अथाब्रवीन्महाराजो गान्धारीं धर्मदर्शिनीम्। अन्तः कामं कुलस्यास्तु न शक्नोमि निवारितुम् ॥ यथेच्छन्ति तथैवास्तु प्रत्यागच्छन्तु पाण्डवाः। पुनर्द्यूतं च कुर्वन्तु मामकाः पाण्डवैः सह' (महाभा.स. ७५.१,४-६,८...१२)

308 'ततो व्यध्वगतं पार्थं प्रातिकामी युधिष्ठिरम् । उवाच वचनाद् राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ उपास्तीर्णा सभा राजन्नक्षानुप्त्वा युधिष्ठिर। एहि पाण्डव दीव्येति पिता त्वाऽऽहेति भारत ॥ युधिष्ठिर उवाच – धातुर्नियोगाद् भूतानि प्राप्नुवन्ति शुभाशुभम्। न निवृत्तिस्तयोरस्ति देवितव्यं पुनर्यदि ॥ अक्षद्यूते समाह्वानं नियोगात् स्थविरस्य च । जानन्नपि क्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे ॥ असम्भवे हेममयस्य जन्तोस्तथापि रामो लुलुभे मृगाय। प्रायः समासन्नपराभवाणां धियो विपर्यस्ततरा भवन्ति। इति ब्रुवन् निववृते

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

जो फिर बुलावा आया है, वह यद्यपि विनाशकारी है, यह जानते हुए भी मैं उस बुलावे पर द्यूत खेलने से इनकार नहीं कर सकता। सुनहरी मृग के असम्भव होने पर भी जैसे रामचन्द्र उस मृग के लालच में आ गये। जब पतन समीप होता है, तो मनुष्य की बुद्धियाँ उलट-पुलट हो जाती हैं। इस प्रकार कहता हुआ युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित लौट पड़ा और शकुनि की कपट-माया को जानता हुआ भी, फिर से द्यूत के लिये तैयार हो गया। जब भाग्य के मारे हुए कौरव और पाण्डव मानो सबके भविष्यत् विनाश के लिये उस द्यूत-सभा में प्रविष्ट हो रहे थे, उस समय सभी हितैषी सज्जनों के मन बहुत दुःखी हो रहे थे।

वहाँ शकुनि बोला – युधिष्ठिर ! बूढ़े धृतराष्ट्र ने तुम्हारा जो धन तुम्हें वापिस कर दिया सो हमने मान लिया। पर अब जो द्यूत हो रहा है, उसमें मात्र एक ही शर्त है, और वह यह है, कि हम या तुम जो भी हारेंगे वे मृगचर्म धारण करके वन में बारह वर्ष तक रहेंगे और तेरहवें वर्ष में उन्हें अज्ञात रूप में रहना पड़ेगा। तेरह वर्ष की मर्यादा पूरी करने पर वे अपने राज्य को पा सकेंगे। और तेरहवें वर्ष में यदि वे पहचान लिये गये, तो फिर से उन्हें बारह वर्ष वन में रहना पड़ेगा। सो हे युधिष्ठिर! इस व्यवस्था के साथ मेरे साथ

भ्रातृभिः सह पाण्डवः॥ जानंश्च शकुनेर्मायां पार्थो द्यूतमियात् पुनः॥ विविशुस्ते सभां तां तु पुनरेव महारथाः। व्यथयन्ति स्म चेतांसि सुहृदां भरतर्षभाः। यथोपजोषमासीनाः पुनर्द्यूतप्रवृत्तये। सर्वलोकविनाशाय दैवेनोपनिपीडिताः॥ शकुनिरुवाच–अमुञ्चत् स्थविरो यद् वो धनं पूजितमेव तत्। महाधनं, ग्लहं त्वेकं शृणु भो भरतर्षभ॥ वयं वा द्वादशाब्दानि युष्माभिर्द्यूतनिर्जिताः। प्रविशेम महारण्यं रौरवाजिनवाससः॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम्। ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश॥ अस्माभिर्निर्जिता यूयं वने द्वादश वत्सरान्। वसध्वं कृष्णया सार्धमजिनैः प्रतिवासिताः॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम्। ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश॥ त्रयोदशे च निर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम्। स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यमितरैरथवेतरैः॥ अनेन व्यवसायेन सहास्माभिर्युधिष्ठिर। अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमेहि दीव्यस्व भारत॥ अथ सभ्याः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

तुम पासों से जुआ खेलो । तभी सभा में बैठे सभी सज्जन सभासद् हाथ उठाकर दुःखी मन से सब्र एक साथ बोले – अरे धिक्कार है, कि बान्धव इसे महान् भय के प्रति चेता नहीं रहे हैं[308] ।

इस प्रकार सुहृज्जनों के तथा अन्य लोगों के द्वारा भी कहे जाते हुए ऊँचे-नीचे वचनों को सुनता हुआ भी और इस कर्म के कारण शीघ्र विनाश होगा यह जानता हुआ भी राजा युधिष्ठिर लज्जित सा होता हुआ और तथाकथित धर्म से बंधा हुआ सा जुआ खेलने को तत्पर हो गया और बोला – मेरा जैसा राजा अपने धर्म पर दृढ़ रहता हुआ, बुलाये जाने पर पीछे नहीं हट सकता है, इसलिये हे शकुनि! मैं तुम्हारे साथ जुआ खेलता हूँ ।

तब वनवास वाली एक मात्र शर्त पर जुआ आरम्भ हुआ। पासे फैंके गये और शकुनि जीत गया । बस हारे हुए पाण्डव वनवास के लिये तैयार हो गये और उन्होंने मृगचर्म धारण कर लिये[309]।

सभामध्ये समुच्छ्रितकरास्तदा। ऊचुरुद्विग्नमनसः संवेगात् सर्व एव हि ॥ अहो धिग् बान्धवा नैनं बोधयन्ति महद् भयम् (महाभा.स. ७६.१–१७)

309'जनप्रवादान् सुबहून् शृण्वन्नपि नराधिपः । ह्रिया च धर्मसंयोगात् पार्थो द्यूतमियात् पुनः ॥ जानन्नपि महाबुद्धिः पुनर्द्यूतमवर्त्तयत् । अप्यासन्नो विनाशः स्यात् कुरूणामिति चिन्तयन् ॥ युधिष्ठिर उवाच – कथं वै मद्विधो राजा स्वधर्ममनुपालयन्। आहूतो विनिवर्त्तेत दीव्यामि शकुने त्वया ॥ शकुनिरुवाच – एष नो ग्लह एवैको वनवासाय पाण्डवाः। यूयं वयं वा विजिता वसेम वनमाश्रिताः। त्रयोदशं च वै वर्षमज्ञाताः सजने तथा । अनेन व्यवसायेन दीव्याम पुरुषर्षभाः॥ समुत्क्षेपेण चैकेन वनवासाय भारत॥ प्रतिजग्राह तं पार्थो ग्लहं जग्राह सौबलः। जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत'। ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः। अजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च यथाक्रमम्' (महाभा.स. ७६.१८...२४,७७.१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

क्या से क्या हो गया ! थोड़े से समय में फिर राजपाट से विहीन होकर पाण्डव वनवासी होने को चल दिये !! युधिष्ठिर ! तुम्हारी महामूर्खता के कारण ! तुम्हारी बुद्धि में कोई बड़ा छिद्र था या उसका पैंदा ही निकल गया था, कि थोड़े समय पूर्व की महा आपत्ति वाली घटना भी आपको विस्मृत हो गई ! बिल्कुल कहीं टिकी ही नहीं !! कुछ क्षणों में ही अपने और अपने भाइयों के अपमान को और आप लोगों के सिर की पगड़ी इन्द्रप्रस्थ-साम्राज्य की महारानी द्रौपदी की भरी सभा में हुई घोर अवमानना, प्रताड़ना को और उसके मर्मभेदी क्लेश को आपने ऐसें भुला दिया, जैसे मानो कुछ हुआ ही न हो।

युधिष्ठिर ! जब तुमको धृतराष्ट्र का भेजा हुआ प्रातिकामी मार्ग में आकर पुनः जुआ खेलने का न्यौता देने लगा, तभी आप कह देते — "जुआ खेलना पाप है। अभी-अभी आज ही कुछ समय पूर्व ही इस कपटद्यूत रूपी पाप के दुष्परिणामस्वरूप हमारा जो महा अपमान हुआ है, उसकी कड़वी घूंट अभी हमारे गले के नीचे भी नहीं उतरी है । इसलिये हम फिर जुआ खेलकर उसको दुहराने नहीं आयेंगे । बुलावा लाये हो, तो कह दो कौरवों से, कि जुए में नहीं रणाङ्गन में दो-दो हाथ हो जायें। क्षत्रिय के लिये युद्धार्थ ललकारे जाने पर ही पीछे नहीं हटना, यह धर्म है, पाप-कर्म करने को ललकारने पर पाप में प्रवृत्त होने का धर्म नहीं है"। रही बात बूढ़े धृतराष्ट्र के आदेश के मान रखने की बात। सो धृतराष्ट्र कब आप लोगों का हितैषी रहा ?

आप लोगों को धृतराष्ट्र ने फुसला के वारणावत भेजा था, तभी आपको उसकी नीयत का पता लग गया था। क्यों धृतराष्ट्र, बढ़िया मेले-महोत्सव में आनन्द मनाने को

310'दुर्योधन ममाप्येतद् हृदि सम्परिवर्त्तते। अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम्'। 'धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुध्य युधिष्ठिरः। आत्मनश्चाऽसहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम्॥ रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते । सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात्' (महाभा.आदि. १४१.१६;१४२.११,१५)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

हमें ही वारणावत भेंज रहे हैं, अपने दुर्योधन आदि पुत्रों को क्यों नहीं ? इस बात से खटका तो लग ही गया था, धृतराष्ट्र की छिपी दुष्कामना का भांन होने पर और अपने आपको असहाय मानकर आप लोगों को वारणावत जाना पड़ा था। अतएव आपने बड़े बूढ़ों से विदा लेते समय कहा था, हम धृतराष्ट्र की आज्ञा से वारणावत जा रहे हैं[310]।

अपने पुत्रों के मोह के दलदल में धृतराष्ट्र इतना फंसा हुआ था, कि हितैषियों के समझाने पर और कभी अपने आप भी कुछ सन्मार्ग की ओर उसकी मति प्रवृत्त होती भी थी, तो दुर्योधन के कहने पर फिर कुमार्गगामिनी हो जाती थी। यही हुआ प्रथम द्यूत के आह्वान के समय । और द्यूत के अन्तराल में प्रत्येक चाल पर आपकी सम्पदाओं के शकुनि द्वारा जीते जाने पर वह अन्दर-अन्दर खुश होता था। फिर अन्ततः १८वीं बाजी में शकुनि द्वारा उकसाने पर युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी के दांव पर लगाने से जहाँ सभी वृद्ध सभासदों के मुख से 'धिक्कार है, धिक्कार है' के वचन निकले और भीष्म-द्रोण-कृप के पसीने छूट गये तथा विदुर माथा पकड़कर निश्चेष्ट सा हो गया, वहीं धृतराष्ट्र का बाहर से जो बनावटी आकार था, उसे वह रोक नहीं सका और प्रसन्न होकर पूछ बैठा 'किं जितम् ? किं जितम् ? = किसे जीत लिया ? किसे जीत लिया ?[311]

सो युधिष्ठिर ! जो तुम्हारा सदा अहित करने पर आमादा हो जाता था, उसका कहा मानने की क्या आवश्यकता थी ? ऐसा धृतराष्ट्र तो आप लोगों का शत्रु था, न कि पिता, चाचा या ताऊ रहा था वह । मनु की बात भूल गये कि – गुरु (=बुजुर्ग), बालक,

---

[311] शकुनिरुवाच – पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तथाऽऽत्मानं पुनर्जय ॥...। युधि.उवाच – ग्लहं दीव्यामि चार्वङ्ग्या द्रौपद्या हन्त सौबल ॥... एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता। धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निसृता गिरः।...। भीष्मद्रोणकृपादीनां स्वेदश्च समजायत ॥ शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्त्व इवाऽभवत् ॥ धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः। किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत' (महाभा.स. ६५. ३२,३९...४३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

वृद्ध या बहुत ज्ञानी ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि वह आततायी=अहितकारी है, तो वह वध का पात्र है, न कि मान का[312]।

खैर, आपने बूढ़े धृतराष्ट्र की बात का मान रखने के और अपने 'आहूतो न निवर्त्तेयम्' इस थोथे व्रत के कारण वापिस द्यूतसभा में आना उचित समझा। किन्तु जब शकुनि ने द्यूत आरम्भ होने से पहिले पुनर्द्यूत की व्यवस्था बताई, कि 'एक ही ग्लह (बाजी) होगी और जो हार जायेगा उसे बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास होगा, इस शर्त पर तुम मुझसे जुआ खेलो' तो मतिमन्द युधिष्ठिर ! तुमने तुरन्त उसे मान लिया । क्या वन में ठोकरें खाने को तुम्हारा मन व्याकुल हो रहा था ? क्या वन में भटकने की उचंग चढ़ी हुई थी ? और क्या तुम्हारे चारों अतिशय नम्र भाई और महारानी द्रौपदी, ये सब तुम्हारे पूर्व जन्म में वैरी थे, कि उसका बदला लेने के लिये, इनको भी अपने साथ घसीट रहे थे, जङ्गल की राख छानने को !! कहाँ गया था तुम्हारा क्षात्र तेज ? क्या तुम्हारा मन्युजात ओज गङ्गा में जा डूबा था ? जो तुमसे शकुनि के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया गया । आपको कड़कती आवाज में शकुनि को कहना चाहिये था, कि हमें मूर्ख न बनाओ। यह आवश्यक नहीं है, कि तुम्हारी शर्त पर ही जुआ खेला जाय। हम इस शर्त्त को नहीं मानते। मैं जरूर तुम्हारे साथ जुआ खेलूँगा, पर जुए की व्यवस्था इस प्रकार होगी – प्रतिदिन एक ही चाल चली जायेगी और मैं प्रतिदिन उस चाल पर एक निष्क (=तोला) दांव पर लगाऊँगा। दूसरे दिन दूसरा निष्क इत्यादि। जब मेरा बत्तीस हजार सेर का सुवर्ण भण्डार समाप्त हो जायेगा, तब मेरे पास अरब-खरब सिक्के हैं, उनमें से एक-एक सिक्का प्रतिदिन दांव पर लगाऊँगा। वर्षों में यदि वे खुट जायेंगे, तो एक-एक के क्रम से भेड़ें, बकरियाँ आदि दांव पर लगाता जाऊँगा। इस मेरी शर्त्त पर द्यूत-क्रीडा करनी है, तो करो। नहीं तो अपने पासे समेट कर अपना रास्ता नापो।

---

312 'गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाऽविचारयन्' (मनु. ८.३५०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

आपकी इस बुद्धिमत्तापूर्ण योजना को सुनकर शकुनि और कौरव कभी जुए खेलने को राजी नहीं होते। युधिष्ठिर! तुमने एक और अवसर, दुःखों से उबरने का महाविनाश से बचने का खो दिया। न तुम वनवास वाली शर्त्त मानते, न आगे जुआ होता, न आप लोग दरबदर होते, न महाविनाशी युद्ध होता। स्पष्ट है कि आपकी मति प्रमाद-ग्रस्त=भ्रष्ट हो गई थी।

युधिष्ठिर ? [३]

गन्धर्वों द्वारा दुर्योधन का निग्रह और युधिष्ठिर की दया

बारह वर्ष के वनवासकाल में जब पाण्डव द्वैतवन में निवास कर रहे थे। उस समय दुर्योधन-कर्ण आदि की कुकामना हुई, कि हम, दीन अवस्था में वर्त्तमान पाण्डवों को देखने के लिये परिवारों सहित चलें। इससे हमें अनिर्वचनीय सुख मिलेगा। द्रौपदी को भिक्षुणी के वेष में देखकर हमें बड़ा आनन्द होगा। जब द्रौपदी हमारी रानियों को सुन्दरवस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित देखेगी, तो उसे बड़ा सन्ताप होगा (द्रष्टव्य पृ.१५०,१५१)। ऐसा विचार करके धृतराष्ट्र से घोषयात्रा (=गौओं बछड़ों आदि की देखभाल) का बहाना लगा कर द्वैतवन जाने की अनुमति ले ली। तब चण्डाल चौकड़ी अपने परिवारों समेत एक बड़ी सेना लेकर द्वैतवन चली। वहाँ द्वैतवन के एक सुन्दर सरोवर के पास गन्धर्वराज चित्रसेन ठहरा हुआ था। उस सरोवर क्षेत्र में घुसने के विषय में दुर्योधन के सैनिक गन्धर्वराज के सैनिकों से झगड़ पड़े। परिणामतः युद्ध हुआ और गन्धर्वों ने दुर्योधन को परिवार सहित बन्दी बना लिया। दुर्योधन के अमात्यों और सैनिकों ने पाण्डवों के आश्रम पर जाकर दुर्योधन की मुक्ति के लिये गुहार मचाई (द्रष्टव्य पृ.१५८)।

---

313 'भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर। प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति॥ यदा तु कश्चिज् ज्ञातीनां बाह्यः पोथयते कुलम्। न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्येनाभिप्रधर्षणम्॥... दुर्योधनस्य ग्रहणाद् गन्धर्वेण बलात् प्रभो। स्त्रीणां

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

हे युधिष्ठिर ! आपने यह कहते हुए भीम और अर्जुन को गन्धर्वों के चंगुल से दुर्योधन को मुक्त करवाने की आज्ञा दी, कि ज्ञातियों में फूट तो पड़ती ही रहती है और झगड़े भी होते ही रहते हैं तथा शत्रुता भी परस्पर हो जाती है, तो भी कुलधर्म थोड़े ही नष्ट हो जाता है । जब सगे-सम्बन्धियों को कोई बाहर वाला परेशान करता है, तो सज्जन लोग बाहर वाले के आक्रमण को सहन नहीं करते हैं । गन्धर्वों के द्वारा दुर्योधन के और उसकी स्त्रियों के बन्दी बना लिये जाने से हमारा कुल नष्ट हो रहा है । इसलिये तुम जाओ और उनको गन्धर्वों की कैद से छुड़ाओ[313] ।

तब भीम तीनों भाइयों सहित गन्धर्वों की ओर गया । भारी युद्ध हुआ और अन्त में चित्रसेन गन्धर्व ने अर्जुन और युधिष्ठिर के कहने से दुर्योधन और उसके परिवार एवं स्त्रियों को छोड़ दिया ।

क्यों विस्मृति के अवतार युधिष्ठिर ! तुमने एक महान् आततायी को छुड़वाकर महा जघन्य कार्य किया । उसके परिवार की स्त्रियों को छुड़वाना तो उचित था। पर जिसने आप लोगों की दुर्गति बनाई थी, जिसने द्रौपदी का असह्य अपमान किया था और आप लोगों की इस वनवासी-दुरवस्था का जो मूल कारण था, उस पर आपको दया आ गई ! क्या वह दया का पात्र था ? वह तो आप लोगों को वन में धकेल कर भी सन्तुष्ट नहीं था। वन में आप लोगों की दुरवस्था को देखकर अपने दिल को ठंडा करने, आप लोगों की और महारानी द्रौपदी की हंसी उड़ाने के लिये द्वैतवन में आया था। चित्रसेन गन्धर्व ने बन्दी बनाये दुर्योधन को आपके सामने पेश करने से पहले अर्जुन से कहा भी था –

बाह्याभिमर्शाच्च हतं भवति नः कुलम्। अर्जुनश्च यमौ चैव त्वं च वीरापराजितः। मोक्षयध्वं नरव्याघ्रा ह्रियमाणं सुयोधनम्' (महाभा.वन. १४३.२,३,५,७)

314 'विदितोऽयमभिप्रायस्तत्रस्थेन दुरात्मनः। दुर्योधनस्य पापस्य कर्णस्य च धनंजय।। वनस्थान् भवतो ज्ञात्वा क्लिश्यमानाननाथवत्। समस्थो विषमस्थांस्तान्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

'हे धनञ्जय ! हमारे महाराज ने दुरात्मा दुर्योधन और पापी कर्ण की यह मंशा जान ली थी, कि ये लोग, आप लोगों को जङ्गल में अनाथों के समान कष्ट पाते हुओं को देखना चाहते हैं और द्रौपदी की मजाक उड़ाना चाहते हैं। इनकी इस दुर्भावना को ताड़कर हमारे महाराज ने मुझे कहा, कि जाओ दुर्योधन को अमात्यों सहित पकड़कर यहाँ ले आओ। अतः यह पापी छोड़े जाने का पात्र नहीं है। यह युधिष्ठिर और द्रौपदी का भारी अपराधी है[314]।

तो हे युधिष्ठिर ! पापी को, दया करके छोड़ देना पाप को बढ़ाना है। आततायी को दण्ड न देकर उस पर दया करना, आततायी को और अत्याचार करने की खुली छूट देना है। दुर्योधन ने आततायिता करने में आप लोगों पर अत्याचार के कहर ढाने में कोई कसर बाकी रखी थी क्या ? दो-दो बार हलाहल विष देकर मारने का पूरा प्रयत्न किया। फिर माता-सहित आप लोगों को लाक्षागृह में जला मारने का पूरा षड्यन्त्र रचा था। यह तो ईश्वर की कृपा थी, आप लोगों का देहसत्त्व था और महात्मा विदुर जैसों की सूझबूझ और सहायता थी, कि आप लोग मौत के निवाले नहीं बने।

रही कौरव-कुल की लाज रखने की, कौरवकुल के नष्ट न होने देने की बात। सो क्या दुर्योधन को मुक्त करवाने से कौरव-कुल की लाज बची ? कौरव- कुल का नाश न हुआ ? एक दुर्योधन के छुड़वाने से दुर्योधन और अधिक दम्भी, दर्पी, अभिमानी हो गया। अतः महाविनाशक युद्ध हुआ। और न केवल कौरवकुल नष्ट हुआ अपितु उसके

द्रक्ष्यामीत्यनवस्थितान्॥ इमेऽवहसितुं प्राप्ता द्रौपदीं च यशस्विनीम्। ज्ञात्वा चिकीर्षितं चैषां मामुवाच सुरेश्वरः। गच्छ दुर्योधनं बद्ध्वा सहामात्यमिहानय॥... पापोऽयं नित्यसन्तुष्टो न विमोक्षणमर्हति। प्रलब्धा धर्मराजस्य कृष्णायाश्च धनञ्जय॥ (महाभा.वन. १४६.३-६,१०)

[315]वृद्धान् दुर्योधनामात्यान् भीमसेनोऽभ्यभाषत। महता हि प्रयत्नेन संनद्धा गजवाजिभिः॥ अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम्।... दिष्ट्या लोके पुमानस्ति

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कारण अठारह अक्षौहिणी सेना में जो कुल-प्रधान आये उनके रणचंडी के भेंट चढ़ जाने से सैकड़ों-हजारों कुल नष्ट हो गये। एक दुर्योधन को न छुड़वाते अपितु उसके किये कुकृत्यों का दण्ड (जो किसी प्रकार से प्राणहरण से कम नहीं बैठता) उसे दिया जाता, तो हजारों कुलों के लाखों वीरों की मौत नहीं होती।

एक अवसर था, जो सहज भाव से हाथ लगा था, पापी को उसके पाप का दण्ड देने का । ऐसा आप कर लेते तो, फिर भारी सेनाओं को एकत्र करके युद्ध करने की आवश्यकता न पड़ती। गन्धर्वों द्वारा दुर्योधनदल के निग्रह के समाचार को सुनकर भीमसेन ने ठीक ही कहा था – हाथियों और घोड़ों की भारी सेना के महा अभियान के द्वारा हमें जो बाद में करना पड़ता, उसे आज गन्धर्वों ने कर दिया है । सौभाग्य से संसार में कोई हमारा भी प्रिय कार्य करने वाला है, जिसने हमारे बैठे रहते, हमारा कार्यभार उतार दिया है, जिससे हम सुखी हो जायेंगे[315]।

हे युधिष्ठिर ! क्या आपके छुड़वाने पर दुर्योधन ने आपका उपकार माना ? वह तो अपने शत्रुओं (=आप लोगों) द्वारा मुक्त करवाने को अपना भारी अपमान मानने लगा। गन्धर्वों से छुटकारा पाकर जब वह रणभग्न कर्ण से मिला तो बोला – 'मैं कैद किया हुआ, अपनी स्त्रियों के सामने ही जब युधिष्ठिर के सामने पेश किया गया, तो मुझे अनन्त दुःख हुआ। जिनका मैंने सदा अपमान किया और जिनका मैं सदा का वैरी रहा, उनके द्वारा ही मैं छुड़वाया गया और उन्होंने ही मुझे जीवनदान दिया। अरे ! ऐसी

कश्चिदस्मत्प्रिये स्थितः। येनास्माकं हृतो भार आसीनानां सुखावहः॥ (महाभा.वन. २४२.१४,१५,१८)

316 स्त्रीसमक्षमहं दीनो बद्धः शत्रुवशं गतः॥ युधिष्ठिरस्योपहृतः किं नु दुःखमतः परम्। ये मे निराकृता नित्यं रिपुर्येषामहं सदा॥ तैर्मोक्षितोऽहं दुर्बुद्धिर्दत्तं तैरेव जीवितम्। प्राप्तः स्यां यद्यहं वीर वधं तस्मिन् महारणे॥ श्रेयस्तद् भविता मह्यं नैवंभूतस्य जीवितम् (महाभा.वन. २४९.६...९)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

अवस्था में मेरा जीवित रहना व्यर्थ है। इससे तो मैं गन्धर्वों के हाथों रण में मारा जाता तो बहुत अच्छा होता[316]।

दुर्योधन को पाण्डवों के हाथों अपनी मुक्ति का इतना दुःख हुआ, कि वह मरणान्त अनशन के लिये तत्पर हो गया[317]। दुःशासन और कर्ण के द्वारा समझाये जाने पर भी वह अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। कुटिलता के अवतार बने शकुनि ने तो दुर्योधन को कहा – 'हे दुर्योधन ! पाण्डवों ने जो तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार किया, उस विषय में तुम शोक कर रहे हो, यह तुम्हारा कार्य उलटा कार्य है । तुम प्रसन्न हो जाओ, मरणान्त अनशन के द्वारा प्राणत्याग मत करो। सन्तुष्ट होकर, उपकार का स्मरण करो। पाण्डवों का राज्य उन्हें दे दो और धर्म तथा कीर्त्ति का सङ्ग्रह करो। पाण्डवों के साथ उत्तम भाईचारा निभा कर उन्हें संस्थापित करो। ऐसा करके तुम 'कृतज्ञ' कहलाओगे।' तुम पाण्डवों को उनका वंशानुगत राज्य दे दो। ऐसा करने से तुम सुख पाओगे[318]।

शकुनि ने, राजसूय यज्ञ में पाण्डवों की उपलब्धियों को देखकर द्वेषाग्नि से धधक रहे दुर्योधन को, तब भी पहले ऐसी ही सलाह दी थी (द्रष्टव्य पृ. ४५)। इससे प्रतीत होता है, कि द्वेष, घृणा, अभिमान, स्वार्थ और ईर्ष्या का मूल दुष्ट दुर्योधन ही था। हाँ कर्ण भी दुर्योधन-समान ही था और वह आग में घी झोंकने वाला था।

---

317 'यत् त्वद्य मे व्यवसितं तच्छृणुध्वं नरर्षभाः।
इह प्रायमुपासिष्ये यूयं व्रजत वै गृहान्॥ (महाभा.वन. २४९.१०,११)

318 (शकुनिरुवाच) 'सत्कृतस्य हि ते शोको विपरीते कथं भवेत्। मा कृतं शोभनं पार्थैः शोकमालम्ब्य नाशय॥ यत्र हर्षस्त्वया कार्यः सत्कर्तव्याश्च पाण्डवाः। तत्र शोचसि राजेन्द्र विपरीतमिदं तव॥ प्रसीद मा त्यजात्मानं तुष्टश्च सुकृतं स्मर। प्रयच्छ राज्यं पार्थानां यशो धर्ममवाप्नुहि ॥ क्रियामेतां समाज्ञाय कृतज्ञस्त्वं भविष्यसि। सौभ्रात्रं पाण्डवैः कृत्वा समवस्थाप्य चैव तान्॥ पित्र्यं राज्यं प्रयच्छैषां ततः सुखमवाप्स्यसि॥ (महाभा.वन. २५१.६-१०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

शकुनि के द्वारा समझाने के उपरान्त भी दुर्योधन आमरण अनशन के लिये बैठ गया। तभी उसे और अधिक आसुरी भावों ने आ घेरा और फिर बलवती जिजीविषा के कारण अनशन के स्थान से उठ बैठा। उसको यह आशा हो उठी, कि मैं युद्ध में कर्ण और संशप्तकों की सहायता से पाण्डवों को जीत लूंगा[319]।

वास्तव में तो आमरण अनशन का दुर्योधन का नाटक ही था। पाण्डवों से इतना ही अनन्त द्वेष था, तो उस समय कैद से छूटा ही क्यों ? चित्रसेन गन्धर्व से कह देता — मैं पाण्डवों के द्वारा मुक्त कराये जाने को अपना अपमान समझता हूँ। तुम मुझे कैद में ही रखो और जहाँ चाहो वहाँ ले जाओ। अथवा उस समय पाण्डवों को सौ पचास गालियाँ बकने लगता अथवा उन पर टूट पड़ता, तो तुम्हारी मरने की इच्छा पूरी कर देते गन्धर्व या पाण्डव। और वहाँ मरना भी मंजूर न था तो घर आकर चुपचाप उसी कालकूट हलाहल विष का सेवन कर लेता, जिसे भीमसेन को दो बार दिया था। इससे जीवनलीला समाप्त करने की लालसा पूरी हो जाती। इतना शोर मचाने की क्या आवश्यकता थी ? पर नाटक जो करना था !

सार यह है कि हे युधिष्ठिर ! ऐसे द्वेष की महादावाग्नि में फुंक रहे दुर्योधन को कैद से छुड़वाकर आपने महाभारत युद्ध की आयोजना में परोक्ष रूप से सहयोग ही किया !!

युधिष्ठिर ? [४]

दुर्योधन को दत्तवचन शल्य का पाण्डवों के पास आना और युधिष्ठिर

युद्ध की अवश्यम्भाविता को विचार कर पाण्डवों ने भी अपने मित्रों, सम्बन्धियों और हितैषियों को रणनिमन्त्रण भेजना आरम्भ कर दिया। पाण्डवों ने अपने मामा शल्य

---

319 'विजेष्यामि रणे पाण्डूनिति चास्याभवन्मतिः। कर्णं संशप्तकांश्चैव पार्थस्यामित्रघातिनः। अमन्यत वधे युक्तान् समर्थांश्च सुयोधनः। एवमाशा दृढा तस्य धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः॥ (महाभा.वन. २५२.३२,३३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

को रणनिमन्त्रण भेजा। शल्य एक बड़ी सेना – अक्षौहिणी सेना लेकर उपप्लव्य नगर स्थित पाण्डवों के पास जाने लगे। दुर्योधन ने चालाकी से उसके मार्ग में सारी सेना के लिये भोज्य सामग्री और मनोरञ्जन-साधनों की व्यवस्था कर दी। यह सब दुर्योधन ने किया है, यह जानकर शल्य ने प्रसन्न होकर दुर्योधन को उसका मुँहमांगा यह वर दे दिया, कि मैं और मेरी सेना युद्ध में तुम्हारी ओर से युद्ध करेंगे (द्रष्टव्य पृ. १८३)।

उसके बाद शल्य पाण्डवों से मिलने गया। वहाँ जाकर युधिष्ठिर से कुशलक्षेम पूछने के बाद उसने दुर्योधन से मिलने की, उसके द्वारा की गई सेवाशुश्रूषा की और अपने द्वारा उसको दिये वरदान की बात भी कह दी। तब युधिष्ठिर ने कहा – हे मामा! आपने अपनी प्रसन्न आत्मा से जो किया, सो अच्छा ही किया। दुर्योधन को जो आपने वचन दिया सो ठीक है[320]।

हे युधिष्ठिर! फिर आपकी बुद्धि विवेक-मार्ग से दूर जा पड़ी। एक ओर तो आप युद्ध के लिये प्रयत्नपूर्वक लोगों को अपनी ओर जुटाने में लग रहे थे और दूसरी ओर अपने जनों के चापलूसीवश शत्रुपक्ष में जाने पर उनकी भी सराहना कर रहे थे। उस समय आपने शल्य मामा से यह क्यों नहीं कहा कि 'मामांजी आपने यह बहुत ही अनुचित कार्य किया है। आप चालाकी से किये गये थोड़े से स्वागत-समारोह से दुर्योधन के ही बन गये। अन्तर देखिये आपमें और दुर्योधन के मामा शकुनि में। शकुनि मामा यह जानते हुए भी, कि दुर्योधन ईर्ष्यालु, द्वेषी, हिंसक, उचक्का और कृतघ्न है;

---

[320] 'ततोऽस्याकथयद्राजा दुर्योधनसमागमम्। तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानं च भारत। युधिष्ठिर उवाच – सुकृतं ते कृतं राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना। दुर्योधनस्य यद् वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम्' (महाभा.उ. ८.३९,४०)

[321] 'क्षमा दमश्च सत्यं च अहिंसा च युधिष्ठिर। अद्भुतश्च पुनर्लोकस्त्वयि राजन् प्रतिष्ठितः। मृदुर्वदान्यो ब्रह्मण्यो दाता धर्मपरायणः। धर्मास्ते विदिता राजन् बहवो लोकसाक्षिकाः' (महाभा.उ. ८.३५-३६)

प्रत्येक कार्य में वह दुर्योधन का सहायक रहा। और आप यह जानते हुए भी, कि पाण्डवों में (=मुझमें) क्षमा, दम, सत्य और अहिंसा प्रतिष्ठित हैं और मैं मृदु, वदान्य (=उदार), वेदवित्, दाता और धर्मपरायण हूँ,[321] फिर भी आप हमारे और हमारी सेना के गले काटने के लिये दुर्योधन की ओर से लड़ने का उसे वचन दे आये। आप माता माद्री के भाई थे, सो माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव के मामा हुए, कि दुर्योधन के मामा !! आप थोड़ी सी खुशामदभरी सेवा से ही अपना सब संबंध भूल गये !! हम आपके इस कृत्य से बहुत दुःखी हैं। जाइये, आप दुर्योधन को कहकर आइये, कि मैं तुम्हारी ओर से नहीं, अपितु पाण्डवों की ओर से लड़ूँगा। यदि दुर्योधन कहे, कि अभी तो आप वचन दे के गये थे, तब उसको आप कहिये, कि वचन उनके साथ निभाया जाता है, जो स्वयं अपने वचन को निभाते हैं। तुमने जुए में बारह वर्ष के वनवास और तेरहवें वर्ष के अज्ञातवास की शर्त रखी थी और जो इस शर्त को पूरा कर लेगा उसे पुनः उसका राज्य मिल जायेगा। ऐसा वचन दिया था[322]। सो जब पाण्डवों ने महा दुःख उठा कर भी उस शर्त को पूरा कर लिया, तब भी तुम उन्हें उनका राज्य देने को तैयार नहीं हो, अपने वचन को निभाने को तैयार नहीं हो, तो दूसरों से वचन निभाने की आशा क्यों करते हो। मेरा वचन से हटना, तुम्हारे द्वारा अपने वचन से हटने का उत्तर है। मैं पाण्डवों की ओर से लड़ूँगा।'

हे युधिष्ठिर ! यदि तुम यह बात जोर देकर मामा शल्य से कहते और सभी भाई मिलकर उनके पीछे पड़ जाते, तो शल्य को सद्बुद्धि आती और वे अपने पूर्व के गलत निर्णय को बदल लेते। पर आपने इस विषय में कुछ भी प्रयास नहीं किया और शल्य की

---

322 'त्रयोदशे च निर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम्। स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यमितरैरथवेतरैः॥ अनेन व्यवसायेन सहास्माभिर्युधिष्ठिर।... एहि दीव्यस्व भारत' (महाभा.स. ७६. १४,१५)

323 'प्राप्य राज्यानि शतशो महीं जित्वाऽथ भारत। कोटिशः पुरुषान् हत्वा परितप्ये पितामह॥ का नु तासां वरस्त्रीणां समवस्था भविष्यति। या हीनाः पतिभिः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

डेढ़ योजन भूमि पर पड़ाव वाली महती अक्षौहिणी सेना को शत्रु के खेमें में जाने दिया। अपनी बुद्धि के प्रमाद के कारण !!

युधिष्ठिर ? [५]

श्रीकृष्ण द्वारा रणभूमि में अर्जुन को उपदेश और युधिष्ठिर

हे युधिष्ठिर ! महाविनाश-ताण्डव युद्ध की समाप्ति पर शरशय्यासीन् भीष्म पितामह से आपने अपना महासन्ताप प्रकट करते हुए कहा था – हे पितामह ! यद्यपि हमने विजय प्राप्त कर ली और राज्य भी पा लिया, किन्तु इसके लिये लाखों-करोड़ों लोग मारे गये, उनका विचार करके मुझे भारी सन्ताप हो रहा है। उन निरपराध महिलाओं की क्या दशा होगी जो अपने पतियों, पुत्रों, मामाओं और भाइयों से रहित हो गई हैं। हम उन कौरवों को, अपने सगों को और मित्र हितैषियों को मार करके निस्सन्देह नरक में औंधेसिर गिरेंगे। इसलिये मैं तो अब अपने आपको उग्र तपस्या में लगाना चाहता हूँ[323]।

हे युधिष्ठिर ! जिस परिणाम को देखकर तुम, सब कुछ समाप्त होने के बाद रो रहे हो; उसे अर्जुन ने युद्धारम्भ से पूर्व ही जान लिया था और अपने सन्मार्गदर्शक श्रीकृष्ण के सामने विह्वल होकर कहा था –

हे कृष्ण ! युद्ध में अपने जनों को मारने से मैं किसी कल्याण की स्थिति नहीं देख रहा हूँ। मैं न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य और न ही सुख। जिनके लिये हमने राज्य,

---

पुत्रैर्मातुलैर्भ्रातृभिस्तथा॥ वयं हि तान् कुरून् हत्वा ज्ञातींश्च सुहृदोऽपि वा। अवाक्शीर्षाः पतिष्यामो नरके नात्र संशयः॥ शरीरं योक्तुमिच्छामि तपसोग्रेण भारत' (महाभा.अनु. ५७.२-५)

324 'न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे। न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च। येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। त इमेऽवस्थिता युद्धे

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

भोग और सुखों की कामना की थी, वे तो अपने धनों को और प्राण-रक्षा की इच्छा को त्याग कर युद्ध में आ डटे हैं। आचार्यगण, बुजुर्ग पितर, पुत्र, पितामह, मामा, ससुर, पौत्र, साले और सम्बन्धी यहाँ युद्धार्थ उपस्थित हैं। मैं स्वयं मारा जाता हुआ भी इनको मारना नहीं चाहता हूँ। भले ही ये आततायी हैं, तो भी इनको मारकर हमें तो पाप ही लगेगा। स्वजनों को मारकर हम कैसे सुखी रह सकते हैं। लोभाक्रान्त ये लोग यद्यपि कुलविनाश से उत्पन्न दोषों को नहीं विचार रहे हैं, किन्तु कुलक्षयकृत दोष को समझ रहे हम लोगों को तो इस पाप से क्यों नहीं हट जाना चाहिये। कुलों के नष्ट होने पर शाश्वत कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं और अधर्म बढ़ कर शेष कुलों को बिगाड़ देता है। अधर्म की बढ़ती से कुल-स्त्रियों में दोष उत्पन्न हो जाते हैं[324]।

तो हे युधिष्ठिर! यद्यपि महायुद्ध के परिणाम आपको बाद में दृष्टिगोचर हुए, पर अर्जुन को तो उनका पूरा आभास हो गया था। और जब अर्जुन गाण्डीव को परे रखकर दुःखी हो कर श्रीकृष्ण से अपनी व्यथा प्रकट कर रहा था, तब आप भी तो वहीं पास ही थे। उस समय आपको स्वयं न सूझा था, तो कोई बात नहीं, अर्जुन द्वारा युद्ध-परिणाम का चित्र खींचे जाने पर, तो आपकी भी आँखें खुल जानी चाहिये थीं। आपको भी अर्जुन की बात का सशक्त अनुमोदन करके इस युद्ध को न होने देने के लिये श्रीकृष्ण भगवान् के सामने धरना देना चाहिये था। उनसे निवेदन करते, कि आप फरमा रहे हैं –

प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः। मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा। एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।...। पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः।... स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव। यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः। कुलक्षयकृतं दोषं...। कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम्। कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत। अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः' (महाभा.भी. २५.३१...४१)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' = सज्जनों की रक्षा के लिये और पापियों के विनाश के लिये ही मेरा जन्म हुआ हे, तो भगवन्! ये जो मेरे धर्म-पक्ष में आये सात अक्षौहिणी सेनाओं के लाखों वीर हैं और कौरव-सेना में आपके द्वारा प्रदत्त नारायणी सेना के सैनिक हैं, वे सज्जन हैं, कि नहीं ? और कौरव-सेना में भी विकर्ण आदि हजारों सैनिक जिन्हें किन्हीं कारणों से उनका पक्ष लेना पड़ रहा है, वे भी सज्जन हैं। तो युद्ध होने पर ये सब मारे जायेंगे कि नहीं ? युद्ध में केवल तलवारें और बाण आदि ही नहीं टूटते, अपितु मनुष्य भी अवश्य मारे जाते हैं। तो आपके रहते यह सज्जनों का परित्राण होगा या उनकी अकाल हत्या होगी!

फिर चरण पकड़ कर निवेदन करते – भगवान् जी ! इस महाविनाश को रोकने के लिये सबसे पहिले आप अपनी नारायणी सेना का आवाहन करिये कि 'सब नारायण योद्धा पाण्डव-पक्ष में आ जायें।' इस पर दुर्योधन कहे कि आप दिये दान को वापिस ले रहे हैं, तो आप कहिये कि दान देना उसी को उचित है, जो लोभी न हो, पवित्र मन वाला हो, उपकारी हो, लज्जाशील हो, सत्यवादी हो और अपने कर्त्तव्य कर्म में संलग्न हो[325]। तुम लोभी हो, कुटिलमना, पर-अपकारी, निर्लज्ज और असत्यवादी हो, इसलिये तुम्हें दिया गया दान तुम्हारे और मेरे लिये कुफलदायी होगा, अतः मेरा यह कार्य उचित है। अपनी सेना बुलाने के बाद घोषणा करिये कि 'मैं भी शस्त्र ग्रहण करके युद्ध में उतरूँगा और पाण्डव-पक्ष की ओर से लड़ूँगा'। इस पर दुर्योधन कहे कि आपने तो वचन दिया था, कि 'मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा और न युद्ध करूँगा' अब आप अपना वचन तोड़ रहे हैं। तब आप भी उसे कहिये, कि वचन निभाना उन्हीं के साथ सम्भव है, जो स्वयं अपना वचन निभाते हों। द्यूत में तय था कि तेरहवें वर्ष की शर्त्त पूरी करने वाले को

---

325 'अलुब्धाः शुचयो वैद्या ह्रीमन्तः सत्यवादिनः।
स्वकर्मनिरता ये च तेभ्यो दत्तं महाफलम्' (महाभा.अनु. २२.३५)

326 'तमिमं गुणसम्पन्नमार्यं च पितरं गुरुम्। अर्घ्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे संक्षन्तुमर्हथ॥

उसके राज्य की प्राप्ति हो जायेगी । सो जब पाण्डवें ने शर्त अनुसार तेरह वर्ष अज्ञातवास सहित वन में बिता दिये, तो तुम वचनानुसार उन्हें उनका राज्य क्यों नहीं सौंप रहे हो। राज्य तो दूर पांच गाँव भी देने को राजी नहीं हो, अपितु सूई की नोक के बराबर भी भूमि न सौंपने पर आमादा हो, तो तुम दूसरों से वचन निभाने की बात कहने के कथमपि अधिकारी नहीं हो। और उसके उन दुष्कृत्यों को दोहरा दीजिये, जिन्हें आपने सन्धिसभा में बताया था ।

इसके बाद ज्ञानी भगवान् जी ! आप भीष्म पितामह को पुकारिये कि हे दृढ़व्रती भीष्म जी ! आपने राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के लिये मेरा नाम प्रस्तावित करते समय कहा था, कि श्रीकृष्ण गुणसम्पन्न, पिता और गुरु हैं । ये कृष्ण ऋत्विक् भी हैं, गुरु भी हैं, आचार्य भी हैं, स्नातक भी हैं और राजा भी हैं । ये सब कुछ हैं[326] ।

तो भीष्म जी ! आप मुझे गुरु-स्थानीय समझते हैं, तो मेरा कहना मानिये और अधर्म-पक्ष की सहायता त्यागकर धर्मपक्ष की सहायतार्थ पाण्डवपक्ष में आ जाइये। आप स्वयं दुर्योधन और इसकी तिकड़ी को कई बार पापी, अधर्मात्मा कह चुके हैं (द्रष्टव्य, पृ. ५३) । और पाण्डवों को आप धर्मात्मा मानते रहे हैं। आपके पुकारने पर भीष्म पितामह अवश्य आपकी बात का मान रखकर हमारे पक्ष में आयेंगे अथवा युद्ध से हट जायेंगे। यही बात आप द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से भी कहिये । फलतः वे भी भीष्म का अनुसरण करेंगे ।

इतना होने के बाद आप आवाहन करिये कौरवपक्ष की ओर के वीरों को और कहिये – जो धर्म का पक्ष होता है, उसी की जीत होती है – 'यतो धर्मस्ततो जयः' ।

ऋत्विग् गुरुस्तथाऽऽचार्यः स्नातको नृपतिः प्रियः। सर्वमेतद् हृषीकेशस् तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः' (महाभा.स. ३८.२१,२२)

327 'भीष्मः शान्तनवो विद्वान् द्रोणश्च भगवानृषिः। हितं च परमं वाक्यं त्वं च सत्यं ब्रवीषि माम्।। यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः। तथैव धर्मतः सर्वे मम

> ***"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.***

इसलिये मैं समस्त बुद्धिमान् और धर्मभावना वाले वीरों से अपील करता हूँ, कि जो पुण्यार्जन करके वास्तविक जीत चाहते हैं, वे पाण्डवपक्ष में आ जायँ'। आपके इस प्रकार के आवाहन पर युयुत्सु के समान विकर्ण आदि अनेकानेक सज्जन वीर हमारे पक्ष में होंगे।

सर्वसमर्थ भगवान् जी! आपकी इस प्रकार चतुर्विध घोषणा से ही सम्भवत: यह युद्ध रुक जायेगा और होगा तो भी अत्यल्प जनहानि होगी।

और अन्त में हे मधुसूदन! हे कंसनिकन्दन! हे शिशुपालशातन चक्रधारी भगवान् जी! आप अपना जो विश्व रूप = महासामर्थ्य अर्जुन को दिखा रहे हैं, वह विश्वरूप कौरव-सेना की ओर मुख करके दुर्योधनादि को दिखाइये और घोषणा करिये, कि जिस एक दम्भी-दर्पी-अभिमानी ईर्ष्यालु द्वेषी पापी दुर्योधन के कारण ये लाखों वीर यहाँ रणभूमि में मरने-मारने, कटने-काटने को उपस्थित हुए हैं। सो इन वीरों के नाश को रोकने के लिये, एक बार फिर दुर्योधन से कहता हूँ कि यह महासंहारक महायुद्ध होने जा रहा है, उसके मूल कारण तुम हो। तुमने कपटद्यूत के माध्यम से उनकी राज्यलक्ष्मी हड़पने के लिये उन्हें तेरह वर्ष के लम्बे काल के लिये बेघर करके वनों में भटकने को मजबूर किया। उन्होंने असम्भव से लगने वाली शर्त्त को अपने धैर्य, सत्यधर्म और तपस्या के द्वारा सम्भव कर दिखाया। उन्होंने जो-जो वचन अपनी धर्मारूढ़ता के कारण दिये थे, उन्हें पूरा कर दिखाया। जिसे तुम्हारे पक्षवाले भीष्मपितामह भी मानते हैं (द्रष्टव्य पृ.२२९)। फिर भी तुम शर्त्त के अनुसार उनका राज्य उन्हें लौटाना नहीं चाहते हो। उनका जो राज्यवैभव था, वह उन्हें खैरात में नहीं मिला था। उनका जो थोड़ा सा पैतृक राज्यांश उन्हें मिला सो भीष्म, द्रोण और विदुर की नेक और आग्रहपूर्वक सलाह के बाद धृतराष्ट ने द्रुपदराज के नगर से बुलाकर उन्हें सौंपा था[327]। वह भी पुराने खाण्डवप्रस्थ नगर के

पुत्रा न संशय:॥ यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते। तथैव पाण्डुपुत्राणामिदं राज्यं न संशय:॥ क्षत्तरानय गच्छैतान् सह मात्रा सुसत्कृतान्। (महाभा.आदि. २०५.१-४)

"इस विग्रह के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

रूप में[328]। पाण्डवों ने उसका पुनरुद्धार करके उसे इन्द्रप्रस्थ नाम दिया। फिर खाण्डववन को जला साफकर असुरजातीय विश्वकर्मा मय के द्वारा अद्वितीय सभा-भवन बनवाया। अनेक राजाओं को बन्दी बनाकर कैद में रखने वाले जरासन्ध के तथा मिथ्याभिमानी कुमति शिशुपाल आदि के वध को लक्ष्य में रखकर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को राजसूय-यज्ञ करने की सम्मति दी।

उस राजसूय यज्ञ के लिये आवश्यक दिग्विजय के अन्तर्गत अर्जुन ने उत्तर दिशा के आनर्त, कालकूट, कुलिन्द, सुमण्डल, शाकलद्वीप, प्राग्ज्योतिषपुर, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, उपगिरि, उलूक, मोदापुर, वामदेव, सुदामा, उत्तरउलूक, काश्मीर, अभिसारी, सिंहपुर, चोल, बाह्लीक, दरद, काम्बोज, लोह, परम काम्बोज, ऋषिक; किम्पुरुष हाटक और कुरुवर्ष आदि देशों को जीतकर उन्हें करदाता बनाया और उत्तरकुरु से अनेक दिव्य पदार्थ प्राप्त किये तथा अन्य जीते हुए देशों से भी नाना धनरत्न लाकर राजा युधिष्ठिर को समर्पित किये (द्रष्टव्य-महाभा.सभा. २६,२७,२८ अध्याय)। भीमसेन ने पूर्व दिशा में दिग्विजय करते हुए कहीं युद्ध के द्वारा और कहीं शान्ति के द्वारा अनेक राजाओं को तथा राज्यों को करदाता बनाया। जिनमें पञ्चाल, गण्डक, विदेह, दशार्ण, चेदि, कुमार, श्रेणिमान्, अयोध्या, गोपालकक्ष, कोसल, भल्लाट, शक्तिमान्, काशी, मत्स्य, मलद, मदधार, सोमधेय, वत्सभूमि, शर्मक, वर्मक, वैदेहक, शक, बर्बर, किरात, सुह्म, प्रसुह्म, मागध, मोदागिरि, पुण्ड्र, कौशिकीकच्छ तथा म्लेच्छ देश प्रमुख थे (द्रष्टव्य-

---

328 'पुनर्वो विग्रहो मा भूत् खाण्डवप्रस्थमाविश' (महाभा.आदि. २०६.२४)
विश्वकर्मन् महाप्राज्ञ अद्यप्रभृति तत् पुरम्।
इन्द्रप्रस्थमिति ख्यातं दिव्यं रम्यं भविष्यति॥ (महाभा.आदि. २०६.२८...)

329 'आश्रित्य धर्मराजानं सर्वलोकोऽवसत् सुखम्। धर्मराजे ह्यतिप्रीत्या पूर्णचन्द्र इवामले। प्रजानां रेमिरे तुल्यं नेत्राणि हृदयानि च॥ अधिष्ठानवती लक्ष्मीः परायणवती मतिः। वर्धमानोऽखिलो धर्मस्तेनासीत् पृथिवीक्षिताम्॥ न ह्ययुक्तं न चासत्यं नासह्यं न

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

महाभा.सभा. २९,३० अध्याय)। सहदेव ने दक्षिण दिशा में दिग्विजय यात्रा के द्वारा जिन राजाओं को करदाता बनाया और जो-जो देश जीते उनमें शूरसेन, मत्स्य, दन्तवक्र, निषादभूमि, गोशृङ्ग, नरराष्ट्र, कुन्तिभोज, सेक, अपरसेक, विन्द, अनुविन्द, भोजकट, कोसल, कान्तारक, प्राक्कोसल, नाटकेय, हेरम्बक, मारुध, नाचीन, अर्बुक, वाताधिप, पुलिन्द, पाण्ड्य, किष्किन्धा, माहिष्मती, त्रैपुर, पौरवेश्वर, आकृति, सुराष्ट्र, भोजकट, भीष्मक, शूर्पारक, तालाकट, दण्डक, सागरद्वीप, निषाद, कालमुख, कोलगिरि, सुरभिपत्तन, ताम्राह्वय द्वीप, रामकगिरि, तिमिङ्गिल, केरल, संजयन्ती, करहाटक, द्रविड, आन्ध्र, तालवन, कलिङ्ग और उष्ट्रकर्णिक मुख्य थे (द्र.महाभा.स. ३१ अ.)। नकुल ने पश्चिम के रोहीतक, मरुभूमि, शिरीषक, महोत्थ, दशार्ण, शिबि, त्रिगर्त्त, अम्बर, मालव, पञ्चकर्पट, माध्यमिक, वाटधान, पञ्चनद, अमरपर्वत, उत्तरज्योतिष, दिव्यकट, रामठ, हारहूण, शाकल और मद्रदेश आदि को जीता (द्रष्टव्य-महाभा.सभा. ३२)।

इन चारों पाण्डववीरों ने चारों दिशाओं के राजाओं को साम और दण्ड के द्वारा सम्राट् युधिष्ठिर का करदाता बनाया और उनसे प्राप्त अकूत धन लाकर इन्द्रप्रस्थ को अतिधनसम्पन्न बनाया। दिग्विजय के समय राजाओं ने केवल भय के कारण युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार नहीं की, अपितु उनके मन में यह निश्चित मत था, कि धर्मराज युधिष्ठिर के शासन में सब लोग सुखी हैं। उसके प्रजाजनों के नेत्र और हृदय उसके शासन से तृप्त और सन्तुष्ट थे। युधिष्ठिर सब लोगों के हित के बाद अपने हित का विचार करके आनन्दित होते थे। इसीलिये लक्ष्मी, बुद्धि और धर्म ने उसमें अपना निवासस्थान बना लिया था। वह कभी अनुचित, असत्य और चुभने वाले अप्रिय वचन नहीं बोला है[329]।

च वाऽप्रियम्। भाषितं चारुभाषस्य जज्ञे पार्थस्य धीमतः॥ (महाभा.आदि. २२१,२,९,६,११)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

दिग्विजय-यात्राओं के पश्चात् हुए राजसूय यज्ञ के अवसर पर प्रायः सभी देशों के राजाओं ने खुशी-खुशी जो अकूत धन भेंट किया और अमूल्य रत्न समर्पित किये उन्हें; हे दुर्योधन! तुम भी जानते हो (द्रष्टव्य-पृ. ४१,४२)। सो पाण्डवों के द्वारा अपने व्यवहार, बाहुबल और पराक्रम तेज से सङ्गृहीत अतुल राजलक्ष्मी को तुमने कपटद्यूत से हड़प लिया। पर शर्त्त के साथ। उस शर्त्त को पाण्डवों ने पूरा कर दिया। तब भी तुम महालोभी होकर उनका राज्यांश उन्हें नहीं देना चाहते हो और युद्ध करने पर आमादा हो। तुम्हें अभिमान हो गया था, कि मैं, कर्ण और दुःशासन तीनों ही, पाण्डवों को मार गिरायेंगे। पर उन पाण्डवों की रक्षा हेतु ये सात अक्षौहिणी सेनाओं के वीर यहाँ आ डटे हैं और उन सबको मारने के लिये तुमने भी ग्यारह अक्षौहिणी-सेनाओं के योद्धा इकट्ठे किये हैं। निश्चय ही तुम्हारी भ्रष्टमति इन सब वीरों की हत्या के लिये उत्तरदायिनी है। तुम पांचों पाण्डवों को ही मारना चाहते थे, सो तो हरचंद कोशिश करने पर तुम ऐसा नहीं कर सके। न विष देकर, न ही लाक्षागृह में जलाने का प्रबन्ध करके, न विराटराज के गोहरणकाल में और न द्वैतवन में। द्वैतवन में तो तुम कर्ण और दुःशासन तथा अन्य भाई भी थे। कर्ण भाग छूटा था। दुःशासन सहित तुम भी चित्रसेन गन्धर्व द्वारा कैद कर लिये गये थे।

हे दुष्ट दुर्योधन ! इन पांच पाण्डवों के जन्मजात द्वेषी ! क्यों तुम लाखों-लाख वीरों की हत्या के कारण बन रहे हो । बाहर निकलो और उच्च स्वर से घोषणा करो, कि हे वीरो ! मेरी लोभाविष्ट बुद्धि के कारण जो पाण्डवों के प्रति द्वेषभाव था, वह आज दूर हो गया। मेरे उस द्वेषभाव के कारण ही आज इस युद्ध से लाखों वीरों की होने वाली मृत्यु को विचार कर मेरी बुद्धि ठिकाने आ गई है। मैं पाण्डवों से क्षमायाचनापूर्वक उनका राज्य वैभव लौटाने का वचन देता हूँ और बड़े भाई युधिष्ठिर को प्रणाम करके पाण्डवों को गले लगाता हूँ ।

330'युधिष्ठिरं सहोदर्यं सहितं केशवेन हि'। 'सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

युधिष्ठिर-प्रकरण

हे श्रीकृष्ण भगवान्! आपके ऐसा आह्वान करने पर भी यदि दुर्योधन नहीं मानता है, तो सुदर्शन चक्र से उसका गला काट दीजिये जैसे आपने शिशुपाल का गला काटा था। शिशुपाल तो आपका और आपके कुल के लोगों का ही अपराधी था। पर यह दुर्योधन तो आपके आत्मस्वरूप (द्रष्टव्य-पृ. ९७,९८) पाण्डवों का तो अपराधी है ही अपने दुर्हठ के कारण इस युद्ध में मरने वाले लाखों वीरों की हत्या के कारण उनका, उनकी विधवा स्त्रियों का तथा करोड़ों अनाथ बच्चों का अपराधी बनने जा रहा है। और आपने, इस दुर्योधन के युक्त बात को न मानने पर 'मैं इसका वध करूँगा' (द्रष्टव्य-पृ. १०१) यह कहा भी था। तो अब वह समय आ गया है। करिये न अपना वचन पूरा और बचाइये इन लाखों-लाख वीरों को मृत्यु का ग्रास बनने से'। हे धर्मराज! आप लोगों के धरणापूर्वक आग्रह से श्रीकृष्ण कुछ तो प्रयास करते।

सो युधिष्ठिर! तुमसे उस समय अतिसमयोचित आग्रह श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा में नहीं किया गया। तुमने लाखों वीरों के संहारक युद्ध को रोके जाने का एक और अवसर खो दिया।

युधिष्ठिर ? [६]

कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में भीष्म-द्रोण-कृप-शल्य द्वारा कहे गये आशीःवचन और युधिष्ठिर

हे युधिष्ठिर! तुम युद्ध आरम्भ होने से पहले अपने कवच तथा शस्त्रास्त्रों को रथ पर रखकर पैदल ही भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और मामा शल्य के पास उन्हें प्रणाम करने, उनसे युद्ध करने की अनुमति लेने और आशीर्वाद लेने गये। तुम्हारी इस हरकत को देखकर श्रीकृष्ण और तुम्हारे चारों भाई भी तुम्हारे पीछे चल पड़े[330]। तब

शरशक्तिसमाकुलाम्। भीष्ममेवाभ्ययात् तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः' (महाभा.भीष्म. ४३.३१,३५)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य ने प्रायः एक से वचन कहे, 'कि हे युधिष्ठिर! मनुष्य अर्थ का=धन सम्पत्ति का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है। हम अर्थ के कारण-कौरवों के द्वारा भरण-पोषण किये जाने के कारण, कौरवों से बंधे हुए हैं, सो युद्ध तो हम इन्हीं की ओर से करेंगे। हाँ, हमारा आशीर्वाद है, कि तुम्हारी जीत होवे।

हे युधिष्ठिर! तुम पदे-पदे भूल जाते रहे, कि तुम्हें क्या कहना चाहिये। उस समय भीष्म को उत्तर देना चाहिये था, कि दादा जी! आपकी बुद्धि विस्मृति दोष की शिकार हो गई है। आपका कौरवों ने भरण-पोषण नहीं किया, अपितु कौरवों की चार पीढ़ी का आपने पालन-पोषण किया। महाराज शान्तनु, चित्रांगद-विचित्रवीर्य, धृतराष्ट्र-पाण्डु और उनके पुत्रों का (द्रष्टव्य पृ. ५९-६१) सो यह कोई कारण नहीं है, दुर्योधन की ओर से युद्ध करने का। फिर दोनों आचार्यों से कहते – 'हे गुरुजनो! आप लोगों ने मुफ्त में धर्मादे में कौरवों का अन्न नहीं खाया है। परिश्रमपूर्वक कौरव-पुत्रों-पौत्रों को शस्त्रास्त्र आदि की विद्याएँ सिखाई हैं। इसलिये भरण-पोषण की बात सर्वथा झूठी है। और आप लोगों जैसे महाधुरन्धर धनुर्धर और तेजस्वी ब्रह्मचारियों और आचार्यों के मुख से धन की दासता की बात निकलने से तो तेजस्विता, ब्रह्मण्य, तप और संयम जैसे सद्गुणों का घोर अपमान ही हो रहा है। आप लोग कह रहे हैं, कि हम क्लीब (=नपुंसक) से होकर ये वचन उच्चार रहे हैं। सो आप लोगों को क्लीब किसने बना दिया? आप लोगों के अविवेक ने बुद्धि के प्रमाद ने। छोड़ दीजिये इस बुद्धिप्रमाद को और विवेक से काम लीजिये। धर्म के पक्ष का वरण कीजिये।

फिर आप लोग मुझे विजयप्राप्ति का आशीर्वाद दे रहे हैं। पर साथ ही हम युद्ध करेंगे तुम्हारे विरुद्ध यह भी कह रहे हैं। यह कैसा वचनविभ्रम है ? आप लोगों जैसे महाधुरन्धर धनुर्धर शस्त्रास्त्रवेत्ता क्या आकाश में अस्त्र चलायेंगे ? नहीं आप लोग

---

331 'एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर। न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि (महाभा.शल्य. ३२.५२)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

अवश्य हमारे लोगों का महासंहार करेंगे। दादा! आप तो कह चुके हैं, कि मैं प्रतिदिन दस हजार योद्धाओं को मारूँगा। मेरे पक्ष की सात अक्षौहिणी सेनाओं के लाखों वीरों को, आप लोग और आपकी ११ अक्षौहिणी सेनाओं के लोग मार देंगे और लाखों लोग आपकी सेनाओं के भी मरेंगे। उन लाखों-लाख लोगों की हत्या पर – उनकी लाशों पर हमारी विजय की आप कामना कर रहे हैं ! यह कोई ढंग है, विजय कराने का या विजयार्थ आशीर्वाद देने का !!

'पूज्य दादा जी ! आप दुर्योधन की ओर से युद्ध करने को उद्यत क्यों हुए हैं, इस पर थोड़ा विचार करिये । दुर्योधन को हम पाण्डव फूटी आँख नहीं सुहाते और अतएव वह हमारा पित्र्य और पराक्रमोपार्जित राज्य लौटाना नहीं चाहता । हमें उसे पाने के लिये युद्ध करना पड़ रहा है । आप अनेक बार कह चुके हैं कि दुर्योधन दुरात्मा, मिथ्याभिमानी, लोभी, क्रोधी है (द्रष्टव्य-पृ. ६६) और आप मुझे तथा हम पाण्डवों को धर्मात्मा, प्रतिज्ञापालक, सत्यारूढ़ (द्रष्टव्य-पृ.६३) कहते रहे हैं । फिर भी आप दुर्योधन की ओर से लड़ रहे हैं। आप कह चुके हैं कि पाण्डव भी कौरवों के समान राज्य प्राप्ति के समानरूप से पात्र हैं, अधिकारी हैं। किन्तु दुर्योधन कथमपि हमें लौटाना नहीं चाहता। आप समर्थ होते हुए भी उससे हमें दिलवा नहीं सकते। आप तो अपने आपको क्लीब नपुंसक कहकर, एक तरह से उसके सामने आत्मसमर्पण कर चुके हैं और हम उसके भय से या मृत्यु के भय से अपना राज्य-भाग छोड़ना नहीं चाहते। किन्तु हम यह भी नहीं चाहते, कि हमारे हितलाभ के कारण यहाँ उपस्थित लाखों-लाख लोग मौत के ग्रास बनें। हम पाण्डवों को तो दुर्योधन चौकड़ी मार नहीं सकती । ये लोग मार सकते होते तो, अब तक हम जीवित नज़र नहीं आते। विराट-गोहरण के प्रसंग में अकेले अर्जुन ने कर्ण सहित इन दुर्योधनों की जो दशा की थी,उसे भी ये अभी भूले नहीं होंगे। अब हमें मारने के लिये आप महारथियों को युद्ध में लाये हैं। तो हे पितामह! यदि हमारे मरने से ही इन लाखों वीरों की जीवनरक्षा होती है, लाखों ललनाओं को वैधव्य के महादुःख से छुटकारा मिलता है और लाखों बच्चे अनाथ होने से बचते हैं, तो दादा जी! अपने हाथ से आप

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

हमारे सिर काट दीजिये। हम पांचों भाई यहाँ निहत्थे आपके सामने खड़े हैं, उठाओ तलवार और कर दो हमारे सिर धड़ से अलग। यहाँ लाखों वीर देखेंगे कि एक दादा अपने प्रिय पौत्रों के सिर काट कर अपने हाथ पवित्र कर रहा है। इतिहास में आपकी यशोगाथा गाई जाती रहेगी, कि एक भीष्म पितामह ने अपने दुरात्मा, महाईर्ष्यालु, दुर्हठी, महालोभी, कामी, छली, कपटी पौत्र दुर्योधन की खुशी के लिये अपने धर्मात्मा, सत्यारूढ़, प्रतिज्ञापालक, विनम्र पांच पौत्रों के सिर अपने हाथ से काट डाले। करो साहस दादा! ले लो तलवार हाथ में। और बुला लो द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को भी। वे भी उस तलवार पर अपना वरदहस्त रख दें। शीघ्रता करो दादा! कमा लो पुण्य। हमारे सिर कलम करके अपने दुर्योधन के मन को और आत्मा को परम शान्ति पहुँचाओ और कलेजे को ठंडक दिलाओ ।

काल कहता गया— हे युधिष्ठिर! तुम इस प्रकार दृढ़तापूर्वक भीष्म पितामह के सामने डट जाते। तो युद्ध के मूल कारण और उससे उत्पन्न महाविनाश और उसके परिणामों पर भीष्म पितामह का हठात् ध्यान जाता। तब या तो वे अपनी गलती मानकर युद्ध को रोकने का हर संभव प्रयास करते, या फिर वे अधर्मपक्ष छोड़कर पाण्डवपक्ष में आ जाते और तब द्रोण, कृप, अश्वत्थामा आदि भी सत्य का पक्ष लेते। हे युधिष्ठिर! तुमने भीष्म-द्रोण के वचनों को सुनकर उनको वैसे ही मान लिया और समयोचित उत्तर न देकर महाविनाशक युद्ध को रोकने का एक अवसर और खो दिया।

युधिष्ठिर ? [७]

सरोवर में छिपे दुर्योधन का ललकारने पर युद्धार्थ बाहर आना और युधिष्ठिर

युद्ध के अठारहवें दिन कौरव-सेना की कमान मद्रराज शल्य ने संभाली। तब दोनों पक्षों में भयङ्कर निर्मर्याद युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के हजारों योद्धा वीरगति को प्राप्त

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

हुए। दिन के पूर्वार्ध के समाप्त होते-होते शल्य भी युधिष्ठिर के हाथों मारा गया। कौरव-पक्ष के सभी सेनापति भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य लाखों हजारों को मारकर स्वयं भी रणचण्डी की भेंट चढ़ चुके थे। अब कौरव सेना बिना सेनापति के युद्ध करने लगी। दोनों सेनाओं के योद्धा हताहत होते गये। अकेले भीमसेन ने लगभग बाईस हजार योद्धा उस दिन मौत की नींद सुला दिये। दुर्योधन के शेष बचे दुर्मर्षण, श्रुतान्त, जैत्र, भूरिबल, रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष, श्रुतर्वा और सुदर्शन इन बारह भाइयों को भी भीमसेन ने मृत्युलोक का पथिक बना दिया। शकुनि और उसके पुत्र उलूक भी मारे गये।

तब कौरव सेना के शेष बचे योद्धा भी मारे गये। कथंचित् कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और दुर्योधन ये चार कौरव पक्ष के शेष रहे। इनमें से कृप, कृतवर्मा और अश्वत्थामा युद्धभूमि में कहीं अन्यत्र अटक गये थे। सो दुर्योधन ने अपने को अकेला पाकर युद्धभूमि से भागना ही उचित समझा। वह गदा लेकर पैदल ही रणाङ्गन से खिसक गया और जङ्गल में जाकर एक सरोवर में जा छिपा। कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा उसे ढूंढते हुए तालाब पर जा पहुँचे और उससे मन्त्रणा करने लगे। उधर बहेलियों द्वारा पाण्डवों को भी दुर्योधन के तालाब में छिपे होने का पता लगने पर पाण्डव भी वहाँ जा पहुँचे। पाण्डवों को आते देखकर कृप-कृतवर्मा-अश्वत्थामा वहाँ से खिसक लिये।

पाण्डव सरोवर पर पहुँचे। युधिष्ठिर के द्वारा बार-बार ललकारने पर दुर्योधन ने कहा कि 'तुम लोग अनेक हो और मैं अकेला हूँ। अनेकों का एक के साथ युद्ध करना न्यायोचित नहीं है और फिर मैं कवचरहित और थका हुआ हूँ[331]।

हे युधिष्ठिर! तुमने इसका तो सही उत्तर दिया कि 'तुम भूल गये कि तुम्हारे बहुत

---

[332]'मा भूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन।
यदाभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः॥ (महाभा.शल्य. ३२.५५)

> **"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.**

से महारथों ने अकेले अभिमन्यु को मारा था[332]। द्रोण, कृप, कर्ण, शल्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा इन छः महारथियों ने मिलकर घेरकर अकेले असहाय अभिमन्यु को मारा था[333]। पर उसके बाद फिर तुम्हारी बुद्धि पटरी से उतर गई और तुमने हममें से किसी एक से युद्ध करने की बात कह दी[334]।

हे युधिष्ठिर! तब तो तुमने बुद्धिहीनता की पराकाष्ठा ही कर डाली जब तुमने दुर्योधन से कहा, 'कि तुम हममें से किसी एक से युद्ध करो और युद्ध में यदि तुम उस एक को मार दोगे, तो राज्य तुम्हारा ही हो जायेगा[335]। हे युधिष्ठिर ! तुम्हारी बुद्धि थी कि मुट्ठी में पकड़ी हुई बालू रेत! मालूम पड़ता है, तुम्हारे भेजे में रेत ही भरी हुई थी, जो निरन्तर खिसक-खिसक कर भेजे को खाली कर देती थी। तुम्हारी जो जुआ खेलने की मूर्खता भरी आदत थी, उसकी इस घोर विषम स्थिति में भी हूक उठी और तुमने मुख से अनाप-शनाप बोल दिया।

तभी वासुदेव कृष्ण ने तमतमाकर कहा था, हे युधिष्ठिर! यदि यह दुर्योधन गदा-युद्ध में लड़ने के लिये तुम्हें चुन ले, या अर्जुन, नकुल और सहदेव इनमें से किसी एक

---

333 'विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा। एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे॥... द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः। एकोऽयं निहतः शेते नैव धर्मो मतो हि नः॥ (महाभा.द्रोण. ४९.१४,२२)

334 'एक एकेन संगम्य यत्ते सम्मतमायुधम्। तत् त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः॥ (महाभा.शल्य. ३२.२५,२६)

335 'इममेकं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्। पञ्चानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि॥ तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि' (महाभा.शल्य. ३२.६१.६२)

336 'युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम्॥ यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत्त्वां

को चुन ले तो क्या गति होगी ? और यह तुमने दुस्साहस भरी बात क्या कह दी कि हममें से एक को मारकर भी तुम कुरुराज्य के राजा बन जाओगे। सुनो, गदा पकड़े दुर्योधन के साथ लड़ने में तुममें से किसी को भी मैं समर्थ नहीं मानता हूँ। इस दुर्योधन ने भीमसेन को मार गिराने के उद्देश्य से एक लोहे का भीम बनवाकर तेरह वर्ष तक उस पर वार कर करके गदा-युद्ध का अभ्यास किया है। इस प्रकार कैसे हमारा कार्य सिद्ध होगा ? हे राजन्! फिर तुमने दया दिखाकर दुःसाहस का परिचय दिया है। भीमसेन को छोड़कर अन्य किसी को मैं दुर्योधन से भिड़ने में सक्षम नहीं देख रहा हूँ और भीम ने बहुत समय से गदायुद्ध में श्रम से अभ्यास भी किया हुआ नहीं है। तुमने पहले जैसे शकुनि के साथ मूर्खतापूर्ण जुआ खेला था, वैसे ही आज फिर जुआ आरम्भ कर दिया है। भीमसेन बलवान् है और समर्थ भी है; किन्तु दुर्योधन ने निरन्तर अभ्यास किया हुआ है। बलवान् और नित्य के अभ्यासी में से नित्य का अभ्यासी ही अधिक सक्षम माना जाता है। सो हे युधिष्ठिर! तुमने शत्रु को सस्ता सरल उपाय बता दिया। तुमने अपने आपको तो आपत्ति में डाला ही, हमें भी भारी संकट में डाल दिया है। कौन ऐसा होगा जो सबको जीतकर भी शेष रहे एक शत्रु के द्वारा; अपने कठिनाई से पाये राज्य को गंवा दे।... तुम्हारे आचरण से तो ऐसा लगने लगा है, कि पाण्डु और कुन्ती की सन्तान के भाग्य में राज्य

युधिष्ठिर। अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा॥ किमिदं साहसं राजन् त्वया व्याहृतमीदृशम्। एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति॥ न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे। एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश॥ आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया॥ कथं नाम भवेत् कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ॥ साहसं कृतवान् त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम। नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे। ऋते वृकोदरात् पार्थात् स च नातिकृतश्रमः। तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा।...। बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः॥ बलवान् वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते। सोऽयं राजन् त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः॥ न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम्। को नु सर्वान् विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा॥ कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद्राज्यमागतम्॥...। नूनं न राज्यभागेषा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

लाभ नहीं है, यह तो मानो केवल वन में भटकने को अथवा भीख मांगने को ही उत्पन्न हुई है[336]।

युधिष्ठिर की इस महा बचकानी हरकत को स्मरण करके काल भी रोष से उसे कोसते हुए बोला—हे युधिष्ठिर! यदि तुममें से एक भाई के भी दुर्योधन के द्वारा द्वन्द्व-युद्ध में मारे जाने पर उसको अपना राजा मानना था और इस प्रकार अपना हड़पा हुआ राज्य वापिस लेने की इच्छा नहीं थी, तो अपने और पराये लाखों वीरों के गले युद्ध में क्यों कटवाये? जब कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हो गई थीं। तभी तुम न तो भीष्म आदि के पास अनुमति लेने या प्रणाम करने जाते और न ही कुछ और करते। बस ऊँची आवाज में दुर्योधन को पुकार कर कहते, कि इन योद्धाओं के आपस के युद्ध को रहने दो । तुम हम पांचों भाइयों में से किसी एक के साथ द्वन्द्व युद्ध करो और यदि तुम उसको मार दोगे तो राज्य तुम्हारा।

हे युधिष्ठिर! तुम गलती पर गलती करते रहे और अन्त तक तुम्हारी मति गलती पर ही उतारू रही। यह तो अच्छा हुआ कि दुर्योधन भीम से भिड़ा और श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन के द्वारा किये गये सङ्केत को ध्यान में रखकर अधर्मी दुर्योधन को अधर्म (ऊरुभङ्ग) के द्वारा ही उसके किये का फल चखा दिया गया। तुम्हारे आचरण से तो वस्तुतः पाण्डवों को भिखमंगा ही बनना पड़ता।

युधिष्ठिर ? [८]

महाप्रस्थान करते हुए द्रौपदी आदि का गिर पड़ना और युधिष्ठिर

महाविनाशकारी युद्ध की समाप्ति पर लाखों वीरों की हत्या को स्मरण कर करके

पाण्डोः कुन्त्याश्च सन्ततिः । अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः॥ (महाभा. शल्य. ३३.१-११,१६,१७)

> **"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.**

युधिष्ठिर-प्रकरण

को चुन ले तो क्या गति होगी? और यह तुमने दुस्साहस भरी बात क्या कह दी कि हममें से एक को मारकर भी तुम कुरुराज्य के राजा बन जाओगे। सुनो, गदा पकड़े दुर्योधन के साथ लड़ने में तुममें से किसी को भी मैं समर्थ नहीं मानता हूँ। इस दुर्योधन ने भीमसेन को मार गिराने के उद्देश्य से एक लोहे का भीम बनवाकर तेरह वर्ष तक उस पर वार कर करके गदा-युद्ध का अभ्यास किया है। इस प्रकार कैसे हमारा कार्य सिद्ध होगा? हे राजन्! फिर तुमने दया दिखाकर दुःसाहस का परिचय दिया है। भीमसेन को छोड़कर अन्य किसी को मैं दुर्योधन से भिड़ने में सक्षम नहीं देख रहा हूँ और भीम ने बहुत समय से गदायुद्ध में श्रम से अभ्यास भी किया हुआ नहीं है। तुमने पहले जैसे शकुनि के साथ मूर्खतापूर्ण जुआ खेला था, वैसे ही आज फिर जुआ आरम्भ कर दिया है। भीमसेन बलवान् है और समर्थ भी है; किन्तु दुर्योधन ने निरन्तर अभ्यास किया हुआ है। बलवान् और नित्य के अभ्यासी में से नित्य का अभ्यासी ही अधिक सक्षम माना जाता है। सो हे युधिष्ठिर! तुमने शत्रु को सस्ता सरल उपाय बता दिया। तुमने अपने आपको तो आपत्ति में डाला ही, हमें भी भारी संकट में डाल दिया है। कौन ऐसा होगा जो सबको जीतकर भी शेष रहे एक शत्रु के द्वारा; अपने कठिनाई से पाये राज्य को गंवा दे।... तुम्हारे आचरण से तो ऐसा लगने लगा है, कि पाण्डु और कुन्ती की सन्तान के भाग्य में राज्य

युधिष्ठिर। अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा॥ किमिदं साहसं राजन् त्वया व्याहृतमीदृशम्। एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति॥ न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे। एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश॥ आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया॥ कथं नाम भवेत् कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ॥ साहसं कृतवान् त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम। नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे। ऋते वृकोदरात् पार्थात् स च नातिकृतश्रमः। तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा।...। बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः॥ बलवान् वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते। सोऽयं राजन् त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः॥ न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम्। को नु सर्वान् विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा॥ कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद्राज्यमागतम्॥...। नूनं न राज्यभागेषा

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

लाभ नहीं है, यह तो मानो केवल वन में भटकने को अथवा भीख मांगने को ही उत्पन्न हुई है[336]।

युधिष्ठिर की इस महा बचकानी हरकत को स्मरण करके काल भी रोष से उसे कोसते हुए बोला—हे युधिष्ठिर! यदि तुममें से एक भाई के भी दुर्योधन के द्वारा द्वन्द्व-युद्ध में मारे जाने पर उसको अपना राजा मानना था और इस प्रकार अपना हड़पा हुआ राज्य वापिस लेने की इच्छा नहीं थी, तो अपने और पराये लाखों वीरों के गले युद्ध में क्यों कटवाये? जब कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हो गई थीं। तभी तुम न तो भीष्म आदि के पास अनुमति लेने या प्रणाम करने जाते और न ही कुछ और करते। बस ऊँची आवाज में दुर्योधन को पुकार कर कहते, कि इन योद्धाओं के आपस के युद्ध को रहने दो । तुम हम पांचों भाइयों में से किसी एक के साथ द्वन्द्व युद्ध करो और यदि तुम उसको मार दोगे तो राज्य तुम्हारा।

हे युधिष्ठिर! तुम गलती पर गलती करते रहे और अन्त तक तुम्हारी मति गलती पर ही उतारू रही। यह तो अच्छा हुआ कि दुर्योधन भीम से भिड़ा और श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन के द्वारा किये गये सङ्केत को ध्यान में रखकर अधर्मी दुर्योधन को अधर्म (ऊरुभङ्ग) के द्वारा ही उसके किये का फल चखा दिया गया। तुम्हारे आचरण से तो वस्तुतः पाण्डवों को भिखमंगा ही बनना पड़ता।

युधिष्ठिर ? [८]

महाप्रस्थान करते हुए द्रौपदी आदि का गिर पड़ना और युधिष्ठिर

महाविनाशकारी युद्ध की समाप्ति पर लाखों वीरों की हत्या को स्मरण कर करके

पाण्डोः कुन्त्याश्च सन्ततिः । अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः॥ (महाभा. शल्य. ३३.१-११,१६,१७)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

युधिष्ठिर ने शोक में डूब कर और वनस्थ होकर तपस्या में लीन होने का भारी आग्रह किया। सबके द्वारा बार-बार समझाने पर युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में जाकर राजकाज संभाला और अनेक वर्षों तक अपने भाइयों के सहयोग से राज्य किया।

इस बीच धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती की वन में तपस्या करते हुए दावानल से मृत्यु हो गई। विदुर ने भी तपस्या करते हुए शरीर त्याग दिया। उधर बलराम, श्रीकृष्ण और उनके पिता वसुदेव भी परलोकगामी हो गये। मौसल युद्ध में भोज योद्धाओं के हाथों श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न भी वीरगति को प्राप्त हो गये। तदनन्तर अनिरुद्ध (=प्रद्युम्नपुत्र) का भी देहावसान हो गया। द्वारका में हुए पारस्परिक विग्रह में वृष्णिवंश के लोगों के मरने का समाचार सुनकर युधिष्ठिर ने भी तपस्या-हेतु वन में प्रस्थान करने का – महाप्रस्थान करने का निश्चय किया। युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के एक मात्र शेष बचे पुत्र युयुत्सु के हाथ में राज्य की बागडोर सौंपी और परिक्षित् का राज्याभिषेक कर दिया। फिर महारानी सुभद्रा को बुलाकर कहा कि तेरे पुत्र अभिमन्यु का यह पुत्र परिक्षित् हस्तिनापुर में राज्य करेगा और तेरे भतीजे प्रद्युम्न का पौत्र (=अनिरुद्ध का पुत्र) 'वज्र' इन्द्रप्रस्थ का राज्य संभालेगा। तू इनकी रक्षा करना और अधर्म में मन मत लगाना[337]।

तदनन्तर सब पूज्यों को प्रणाम करके, यज्ञाग्नि का जल में अवसान करके युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और द्रौपदी सहित वल्कल धारण किये और महाप्रस्थान-यात्रा पर चल पड़े। बड़े-छोटे के क्रम से वे चले। सबसे पीछे द्रौपदी थी। सबसे पहले उन्होंने पूर्व दिशा

---

[337] 'ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया। राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः॥ अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम्। दुःखार्त्तश्चाब्रवीद्राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः॥ एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति। यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह॥ परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः। वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः'? (महाभा.महाप्र. १.६-९)

[338] 'पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनञ्जये। तस्यैतत् फलमद्यैषा भुङ्क्ते

में प्रस्थान किया। फिर दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम होते हुए पश्चिम में पहुँचे। उन्होंने सागर से घिरी हुई द्वारका का भी अवलोकन किया। फिर वे उत्तर की ओर बढ़े। हिमालय को पार करके जब मेरु पर्वत पर पहुँचे। वहाँ चलते-चलते द्रौपदी नीचे गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद सहदेव गिर पड़ा। थोड़े-थोड़े अन्तराल से नकुल, अर्जुन और भीमसेन भी भूमि पर गिर पड़े। भीमसेन ने सबके गिरने के कारण पूछे, तो युधिष्ठिर ने कहा –

द्रौपदी का अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात था, इसी कारण उसने यह गिरने रूपी फल पाया है। यह सहदेव अपने समान किसी अन्य को बुद्धिमान् नहीं मानता था, इसी दोष के कारण यह गिरा है। नकुल के गिर पड़ने का कारण यह है कि यह अपने को सबसे अधिक रूपवान् समझता था। अर्जुन इसलिये गिरा, क्योंकि यह अपने को शूरवीर मानता था और इसने कहा था, कि मैं एक दिन में शत्रुओं को जला सकता हूँ। पर वह ऐसा नहीं कर सका तथा अन्य धनुर्धारियों की यह अवमानना करता था। और हे भीमसेन! तू इसलिये गिरा कि, तू बहुत अधिक खाता था, अपने बल की आत्मप्रशंसा करता था और दूसरे की परवाह नहीं करता था[338]।

युधिष्ठिर के इन उत्तरों को सुनकर काल ने फटकारते हुए कहा– हे युधिष्ठिर!

पुरुषसत्तम।...। आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कञ्चन। तेन दोषेण पतितस्तस्मादेष नृपात्मजः (=सहदेवः)।...। रूपेण मत्समो नास्ति कश्चिदित्यस्य दर्शनम्। अधिकश्चाहमेवैकः इत्यस्य मनसि स्थितम्॥ नकुलः पतितस्तस्मादागच्छ त्वं वृकोदर॥ एकाह्ना निर्दहेयं वै शत्रूनित्यर्जुनोऽब्रवीत्। न च कृतवानेष शूरमानी ततोऽपतत्॥ अवमेने धनुर्ग्राहानेष सर्वांश्च फाल्गुनः॥ अतिभुक्तं च भवता प्राणेन च विकत्थसे। अनवेक्ष्य परं पार्थ तेनासि पतितः क्षितौ॥ (महाभा.महाप्र. २. ६,१०,१६-१७,२१-२२,२५)

[339]'विद्धं तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य। आदाय

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

तुमने कभी भी अपनी गलतियों पर ध्यान नहीं दिया। उसके विपरीत तुम दूसरों के छोटे-छोटे दोषों को मन में संजोये रखते रहे। द्रौपदी का अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात था, तो अर्जुन इस पक्षपात का पात्र था। द्रुपद नगर में लक्ष्य-वेध रूपी अनुपम पराक्रम कार्य किसने किया था? अर्जुन ने। और तब द्रौपदी ने वरमाला किसको पहनाई थी? अर्जुन को[339]। तो युधिष्ठिर! स्वयंवर में द्रौपदी को पराक्रम से जीता अर्जुन ने। न कि तुम भाईयों में से किसी और ने। इसलिये द्रौपदी के मन में अर्जुन के प्रति उसके पराक्रम के कारण विशेष भाव रहना; सर्वथा ही स्वाभाविक था। किं च केवल मात्र अर्जुन ही द्रौपदी का पति होना चाहिये था। तुमने तब अर्जुन से कहा भी था—'हे अर्जुन! तुमने ही द्रौपदी को जीता है, अतः यह तुम्हारे साथ ही शोभायमान होगी। अग्नि प्रदीप्त करो और विधिपूर्वक इसका पाणिग्रहण करो[340]। और द्रौपदी के पिता यज्ञसेन द्रुपद ने भी चिरकाल से मन में यह लालसा पाल रखी थी कि अर्जुन ही मेरी पुत्री का पति होवे[341]। हाँ, अर्जुन ने अवश्य शिष्टाचार-वश तुमसे कहा था, मुझसे अधर्म मत करवाओ। धर्मानुसार पहले बड़े भाइयों का विवाह होता है, फिर छोटों का। सो पहले आपका और फिर मेरा[342]। तब तुम अर्जुन को कह सकते थे, कि भाई! अग्निसाक्षिक पाणिग्रहण तो तू

शुक्लं वरमाल्यदाम जगाम कुन्तीसुतमुत्स्मयन्ती॥ समेत्य तस्योपरि सोत्ससर्ज समागतानां पुरतो नृपाणाम्। (महाभा.आदि. १७९.२७,२८)

340 'त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री।
प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः'
(महाभा.आदि. १९०.७)

341 'अयं हि कामो द्रुपदस्य राज्ञो हृदि स्थितो नित्यमनिन्दिताङ्गः। यदर्जुनो वै पृथुदीर्घबाहुर्धर्मेण विन्देत सुतां ममैताम्' (महाभा.आदि. १९२.१९)

342 'मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं कृथा न धर्मोऽयमशिष्टदृष्टः। भवान् निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा। अहं ततो नकुलोऽनन्तरं मे पश्चादयं

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

आज कर ले; दाम्पत्यसम्बन्ध भले ही मेरा विवाह हो जाने के बाद करना। देख, भीमसेन का तो दाम्पत्यसम्बन्ध हो ही गया है। हिडिम्बा के मरणपरिणामी अत्याग्रह को देखकर मैंने और माता कुन्ती ने भीम को हिडिम्बा के साथ दाम्पत्य जीवन बिताने की अनुमति दे दी थी। उसके फलस्वरूप इसके घटोत्कच जैसा महाबली पुत्र भी हो गया है।

यह बात सर्वथा ही अविश्वसनीय है और गले उतरने वाली नहीं है, कि अर्जुन के ऐसा कहने पर शेष तीनों पाण्डवों ने द्रौपदी को देखा और उनके मन में कामवासना उत्पन्न हो गई, उनके आकार को देखकर, आपस में पाण्डुपुत्रों में फूट न पड़ जाय इस दृष्टि से तुमने कह दिया कि द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी[343]।

उत्तम रूप को देखकर सामान्यजन के मन में कामभाव का उत्पन्न होना तो स्वाभाविक है। केवल पाण्डवों की ही नहीं, अपितु जितने भी राजे-महाराजे उस स्वयंवर में आये थे, वे सभी द्रौपदी को देखकर कामबाणों से पीड़ित हो गये थे। पर लक्ष्यवेध में सफलता तो अर्जुन को ही मिली। सो जैसे अन्य समागत राजाओं को छोड़कर द्रौपदी मात्र अर्जुन की ही पत्नी हो सकती थी, वैसे शेष चारों पाण्डवों को छोड़कर वह केवल अर्जुन की ही पत्नी होनी चाहिये थी। फिर यह बात कि भाईयों में फूट न पड़ जाय, इसलिये तुमने ऐसा फरमान जारी किया। सो भी व्यर्थ का तर्क है। जीवन भर तुम्हारी हर

सहदेवस्तरस्वी। वृकोदरोऽहं च यमौ च राजन्नियं च कन्या भवतो नियोज्याः' (महाभा.आदि. १९०.८,९)

343'तेषां तु द्रौपदीं दृष्ट्वा सर्वेषाममितौजसाम्। सम्प्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रादुरासीन्मनोभवः। तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। अब्रवीत् सहितान् भ्रातॄन् मिथो भेदभयान्नृपः। सर्वेषां द्रौपदी भार्या भविष्यति हि नः शुभा' (महाभा.आदि. १९०.१३...१६)

344'एवं गते यत् करणीयमत्र धर्म्यं यशस्यं कुरु तद् विचिन्त्य। पञ्चालराजस्य हितं च यत् स्यात् प्रशाधि सर्वे स्म वशे स्थितास्ते' (महाभा.आदि. १९०.१०)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

बात को ब्रह्मवाक्य मान कर कठपुतलियों के समान आचरण करने वाले तुम्हारे भाई, तुम्हारे समझाने से मान जाते कि धर्मानुसार अर्जुन ही द्रौपदी का पति होगा। फिर यह कहना कि भीम-नकुल-सहदेव के मुखों पर कामभाव प्रतीत हुए इसलिये तुमने ऐसा कहा, सो भी व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे वचन में 'हम' शब्द है-'यह हम सबकी पत्नी होगी'। यहाँ यह 'हम' कहाँ से आ गया? क्या तुम्हारी भी कामदेव ने हालत बिगाड़ दी थी? तुम्हें यहाँ धर्मानुसार निर्णय करना था। क्योंकि अर्जुन ने जो शिष्टाचारवश वचन कहे थे। वहाँ यह भी तो कहा था 'ऐसा होने पर भी, जो धर्मानुकूल हो और कीर्त्तिकारक हो वही विचार कर आप करो[344]।

सो द्रौपदी के पहले गिर पड़ने का कारण कथमपि अर्जुन के प्रति पक्षपात का भाव नहीं था। उसके गिरने का कारण उसके द्वारा अनगिनत कष्टों को झेलना था। (i) द्रौपदी ने पांच-पांच पुत्रों को (=प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्त्ति, शतानीक, श्रुतकर्मा) को जन्म दिया। पांच-पांच बार अनिर्वचनीय प्रसवपीड़ा[345] सही थी। (ii) द्रौपदी तुम पांचों पाण्डवों की और अतिथियों की सेवा में लगी रहती थी। तुम सबके सो जाने पर सोती थी, और तुम सबसे पहले जाग जाती थी[346]। (iii) दुःशासन के द्वारा पकड़े जाने के भय से जब द्रौपदी कौरव-राजमहिलाओं की ओर रक्षा के लिये भागी, तब उन स्त्रियों के द्वारा उसकी अवहेलना करने से[347] वह मनःसंताप और पीड़ा से भर गई थी। जब

---

345 'आस्तां तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वारशूलव्यथा।
नैरुच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी' (सू.नि.पृ. १०५)

346 'द्रौपद्युवाच-सदारान् पाण्डवान् नित्यं प्रयतोपचराम्यहम्। प्रणयं प्रतिसंहृत्य निधायात्मानमात्मनि। शुश्रूषुर्निरहंमाना पतीनां चित्तरक्षिणी॥...प्रथमं प्रतिबुध्यामि चरमं संविशामि च। नित्यकालमहं सत्ये एतत् संवननं मम॥ (महाभा.वन. २३३.१९,२०,५८)

347 'ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा विवर्णमामृज्य मुखं करेण। आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ता वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुङ्गवस्य' (महाभा.सभा. ६७.२८)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

युधिष्ठिर-प्रकरण

द्यूत आरम्भ होने से पहले कौरव-राजघराने की स्त्रियों के मध्य द्रौपदी गई, तो वे उसे देखकर विशेष प्रसन्न नहीं हुई थीं[348]। (iv) रजःस्वला अवस्था में दुःशासन के द्वारा जबर्दस्ती घसीटकर केवलमात्र पुरुषों की सभा में ले जाने, उसे कुवाच्य कहने और उसे नग्न करने का प्रयास करने और किसी समर्थ पुरुष के द्वारा उसका बचाव न करने से इस अति घोर अपमान से वह अन्दर से टूट चुकी थी। (v) तेरह वर्ष तक तुम्हारे साथ वन में वह सलोनी राजकुमारी राजरानी कठिन जीवन बिताती रही और दासी का काम भी करती रही। (vi) अपने अपमान के प्रतिशोध की ज्वाला को हृदय में सुलगाती हुई वह तेंरह वर्ष तक स्थण्डिल पर भूमि पर सोती रही[349]। और (vii) निर्दयी अश्वत्थामा द्वारा अपने सोते हुए पांचों पुत्रों के एक साथ मार दिये जाने से द्रौपदी सर्वथा तन, मन, आत्मा से टूट चुकी थी और फिर भी वह तुम्हारा अनुसरण कर रही थी, इसलिये वह गिर पड़ी कष्टों की मारी द्रौपदी! हे युधिष्ठिर!! कुछ याद आ गया ?

तुमने जो सहदेव-नकुल आदि भाईयों के गिर पड़ने के कारण बताये। वे कारण नहीं थे। तुम्हारी अपेक्षा उन्होंने अधिक घात-प्रत्याघात सहे थे। अधिक युद्ध लड़े थे। (i) द्रोण को गुरुदक्षिणा देने के लिये राजा द्रुपद को जीवित पकड़ने के लिये इन चारों ने द्रुपद सेना से भारी युद्ध किया था, बाणों से क्षतविक्षत हुए थे। भीम गदा लेकर आगे आगे चला था, नकुल-सहदेव अर्जुन के रथ के चक्ररक्षक थे, अर्जुन बाणवर्षा कर रहा था। (द्रष्टव्य-पृ. १३७) (ii) राजसूय यज्ञ से पहले चारों भाइयों ने चारों दिशाओं के राजाओं को जीतने के लिये, राजाओं से घोर युद्ध किये थे (द्रष्टव्य-पृ. २२३,२२४)।

---

348 'याज्ञसेन्याः परामृद्धिं दृष्ट्वा प्रज्वलितामिव। स्नुषास्ता धृतराष्ट्रस्य नातिप्रमनसोऽभवन्॥ (महाभा.सभा. ५८.३३)

349 '(दुर्योधन उवाच) 'यदा च द्रौपदी क्लिष्टा मद्विनाशाय दुःखिता। <u>स्थण्डिले नित्यदा</u> शेते यावद् वैरस्य यातनम्' (महाभा.शल्य. ५.१९)

350 'स्वभावादयमगमच्छब्दो महीं सागरमेखलाम्। अर्जुनस्य समो लोके नास्ति

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

युधिष्ठिर-प्रकरण

(iii) द्वैतवन में तुम्हारी आज्ञा को मानकर दुर्योधन आदि को चित्रसेन गन्धर्व की कैद से मुक्त करवाने के लिये इन चारों भाइयों ने ही गन्धर्वों के साथ भारी लड़ाई लड़ी थी (द्रष्टव्य-पृ. १६१,१६२)।

इन तीनों युद्धों के समय तुम तो पृथक् बैठे रहे, ये चारों वीर ही लड़े और क्षतविक्षत हुए। फिर जयद्रथद्वारा द्रौपदी हरण के समय भी इन्होंने महापराक्रम से जयद्रथ की सेना का संहार किया और जयद्रथ को जीवित पकड़कर तुम्हें सौंपा था। किंच महाभारत के महासंग्राम में भी तुमसे भी बढ़-चढ़कर इन्होंने युद्ध किया था। और तुम्हारी मूर्खता के कारण इन्होंने द्यूतसभा में, वनप्रस्थान के समय जो कुवाच्य सुने उनसे इनके मन सन्तप्त हुए थे। फिर तेरह वर्ष के लम्बे काल में वन में जो कष्ट भोगे वे भी इनके अन्तः बहिः ह्रास के कारण थे, इसलिये ये गिर पड़े।

अर्जुन के विषय में यह कहना कि, वह अपने आपको सबसे बड़ा धनुर्धर समझता था, इसलिये गिरा। सो अर्जुन स्वयं ही नहीं; सब लोग उसको ऐसा ही समझते थे[350]। इस बात का प्रमाण द्रुपदनिग्रह, द्रौपदी-स्वयंवर, गन्धर्वों से दुर्योधन की मुक्ति, विराटगोहरण आदि अवसरों पर उसके द्वारा किया गया पराक्रम था ही।

रही बात भीमसेन की, कि वह बहुत खाता था, इसलिये वह गिर पड़ा। तो हे मतिमन्द युधिष्ठिर! अपने भोजन के अनुरूप उसके पराक्रम वाले कार्य भी तो थे। याद करो जब वारणावत के लाक्षागृह से बच निकल कर तुम सब नदी पार करके जा रहे थे, तब तुम सभी बहुत थक गये थे, तब तुम्हारे कहने से भीमसेन अकेले ही तुम सबको

कश्चिद् धनुर्धरः॥ (महाभा.आदि. १३८.१६) द्रोण उवाच – न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः' (महाभा.उ. ४९.१६)

351 '(युधिष्ठिर उवाच) दिशश्च न विजानीमो गन्तुं चैव न शक्नुमः।...। पुनरस्मानुपादाय तथैव व्रज भारत। त्वं हि नो बलवानेको यथा सततगस्तथा। इत्युक्तो

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु..

धृतराष्ट्र-प्रकरण

अपने ऊपर लाद कर वायुवेग से चलने लगा[351]।

हे युधिष्ठिर! तुमने इन पांचों के तो छोटे-छोटे दोषों को गिना दिया। पर तुम अपने उन महान् दोषों को और मूर्खताओं को भूल गये; जिनके कारण इन पांचों ने अनिर्वचनीय कष्ट उठाये और महासंहारक युद्ध भी हुआ।

काल की कटु पर सत्य वचनों को सुनकर युधिष्ठिर तो मौन होकर आगे चल पड़ा। तब काल ने पुत्र के प्रति अन्धमोही धृतराष्ट्र की ओर कूच किया। धृतराष्ट्र की आत्मा को लक्ष्य करके काल बोला –

धृतराष्ट्र ? [१]

क्रुद्ध धृतराष्ट्र द्वारा भीमसेन (नकली) का भुजाओं से पीसना

हे धृतराष्ट्र! महाविध्वंसक महायुद्ध के समाप्त होने पर। दुर्योधनादि तेरे पुत्रों के उसमें काम आ जाने पर; स्त्रियों को सान्त्वना बंधाने और धृतराष्ट्र को प्रणाम करने के लिये श्रीकृष्ण-सहित पाण्डव राजभवन में पहुँचे। वहाँ पहले युधिष्ठिर ने तुम ताऊ धृतराष्ट्र को प्रणाम किया और पाण्डवों ने भी अपने-अपने नाम बताकर वहाँ अपने उपस्थित होने का संकेत दिया[352]।

तब पुत्रों के वध से दुःखी धृतराष्ट्र ने अप्रसन्न मन से, अपने पुत्रों को समाप्त करने वाले ज्येष्ठ पाण्डव का आलिङ्गन किया। युधिष्ठिर का आलिङ्गन करने के बाद दुष्टात्मा धृतराष्ट्र क्रोधाग्नि से सुलगता हुआ भीमसेन रूपी वन को जलाने की इच्छा से उसे

धर्मराजेन भीमसेनो महाबलः। आदाय कुन्तीं भ्रातृंश्च जगामाशु महाबलः' (महाभा. आदि. १४९.२३-२६)

352'ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः। ततोऽभिवाद्य पितरं धर्मेणामित्रकर्षणाः। न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेऽपि सर्वशः' (महाभा.स्त्री. १०,११)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

टटोलने लगा। श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र के भीमसेन के प्रति दुर्भाव को ताड़कर भीम को एक तरफ करके अपने दोनों हाथों से भीम की लोहमयी प्रतिमा को धृतराष्ट्र के हाथों में पकड़ा दिया। यह लोहमयी प्रतिमा वही थी, जिसे दुर्योधन ने तेरह वर्ष पूर्व बनवाया था, और तेरह वर्ष तक भीमसेन को मारने की इच्छा से इस पर गदा के प्रहार करता रहा था[353]। उसे लेकर धृतराष्ट्र ने अपने हाथों से उसे तोड़ डाला, किन्तु उस कारण उसकी छाती में आघात लगा और फलतः उसके मुख से खून निकलने लगा और फिर वह फर्श पर गिर पड़ा[354]।

तब गावल्गणि (=सञ्जय) ने धृतराष्ट्र को संभाला और 'आपको ऐसा नहीं करना चाहिये था' इस प्रकार कहकर उसको सान्त्वना दी। तब अपने गुस्से को त्यागकर धृतराष्ट्र 'हा भीम! हा भीम!' इस प्रकार शोकाकुल होकर विलाप करने लगा[355]। हे धृतराष्ट्र! तुम्हारा यह विलाप करना वास्तव में दिखावा मात्र था, शेष पाण्डवों की

---

353 'एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश।
आयसे पुरुषे राजन् भीमसेन जिघांसया।। (महाभा.शल्य. ३३.४,५)

354 'तमात्मजान्तकरणं पिता पुत्रवधार्दितः। अप्रीयमाणः शोकार्त्तः पाण्डवं परिषस्वजे।। धर्मराजं परिष्वज्य सान्त्वयित्वा च भारत। दुष्टात्मा भीममन्वैच्छद् दिधक्षुरिव पावकः। भीमसेनमयं दावं दिधक्षुरिव दृश्यते। तस्य सङ्कल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः। भीममाक्षिप्य पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम्। तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम्। बभञ्ज बलवान् राजा मन्यमानो वृकोदरम्। भङ्क्त्वा विमथितोरस्कः सुस्राव रुधिरं मुखात्। ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः' (महाभा.स्त्री. १२.१२...१९)

355 'प्रत्यगृह्णाच्च तं विद्वान् सूतो गावल्गणिस्तदा। मैवमित्यब्रवीच्चैनं शमयन् सान्त्वयन्निव। स तु कोपं समुत्सृत्य गतमन्युर्महामनाः। 'हा हा भीमेति चुक्रोश नृपः शोकसमन्वितः' (महाभा.स्त्री. १२.२०,२१)

356 'ततस्ते ज्ञापयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः। पाण्डवानभिना दधानमात्यं च

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

अप्रसन्नता से बचने मात्र के लिये था। इस प्रकार झूठे विलाप करने की तुम्हारी आरम्भ से ही आदत पड़ गई थी। वारणावत के लाक्षागृह में पाण्डवों के जल मरने की सूचना जब वारणावत के नागरिकों ने राजा धृतराष्ट्र को दी, तो पाण्डवों के विनाश को सुनकर वह दुःखी होकर विलाप करने लगा[356]। जब कि स्वयं धृतराष्ट्र ने ही पहले विश्वस्त मन्त्रियों के द्वारा वारणावत नगर के मेले का गुणगान पाण्डवों के सामने करवाया और फिर फुसलाकर पाण्डवों को वारणावत भेजा[357]। हे धृतराष्ट्र! तुम्हारे द्वारा पाण्डवों के निर्वासन को-राज्य से दूर करने के कार्य को प्रजा भी जान गई थी। तभी पाण्डवों के वारणावत-प्रस्थान के समय प्रजाजनों ने पाण्डवों के मुखों को दीनतायुक्त देखकर दुःखी होकर कहा था-'यह मन्दबुद्धि धृतराष्ट्र धर्म को नहीं देख रहा है। पाण्डवों ने जो पितृपरम्परा से प्राप्त राज्य पाया है, वह धृतराष्ट्र को सहन नहीं हो रहा है। यह भीष्म भी कैसा है, जो इस महान् अधर्म की अनुमति दे रहा है और वहाँ दूसरे छोटे से वारणावत नगर में इन पाण्डवों को निर्वासित करने में सहमत है'[358]। इतना ही नहीं, लाक्षागृह के जल जाने

पुरोचनम्। श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद् राजा सुमहदप्रियम्। विनाशं पाण्डुपुत्राणां विललाप सुदुःखितः' (महाभा.आदि. १४९.९,१०)

[357]'धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित् कुशलमन्त्रिणः। कथयांचक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम्॥...। 'ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः। रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम्॥ ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते। सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथामराः' (महाभा.आदि. १४२.२,७,८)

[358]'तत्र केचिद् ब्रुवन्ति स्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा। दीनान् दृष्ट्वा पाण्डुसुतानतीव भृशदुःखिताः। विषमं पश्यते राजा सर्वथा स सुमन्दधीः। कौरव्यो धृतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति। तान् राज्यं पितृतः प्राप्तान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते। अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते॥ विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभि मन्यते" (महाभा.आदि. १४४. ६,७,९,१०)

पर, उसमें पाण्डवों को जला जानकर वारणावत के नागरिकों ने भी इसे धृतराष्ट्र की अनुमति से की गई दुर्योधन की करतूत बताया था। तभी उन्होंने कहा था – 'दुर्योधन ने जो इन पाण्डुपुत्रों को जलाया है, सो निश्चय ही धृतराष्ट्र की जानकारी में थी। और इस विषय में भीष्म, द्रोण, विदुर और कृप भी धर्म का पक्ष नहीं ले रहे हैं। तो चलो अपन दुरात्मा धृतराष्ट्र को इसकी सूचना भेज देते हैं, कि तुम्हारी परम कामना पूरी हो गई है, क्योंकि आज तुमने पाण्डवों को जला दिया है[359]।

धृतराष्ट्र ? [२]

पाण्डु-देहावसान के बाद राजा बने धृतराष्ट्र का व्यवहार

हे धृतराष्ट्र! यद्यपि तुम्हारा जन्म पहले हुआ था और पाण्डु का बाद में। तथापि अन्धे होने के कारण तुम्हें राजा नहीं बनाया गया और पाण्डु को राजपद प्राप्त हुआ[360]। पाण्डु की मृत्यु के बाद तुम राजा बने। परन्तु तुम्हारे अन्दर राजा में होने योग्य उत्तम गुणों की कमी थी। राजधर्मानुसार – राजा को चाहिये कि 'वह धर्म का आचरण करता हुआ

---

[359]'नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा। पाण्डवानां विनाशायेत्येवं ते चुक्रुशुर्जनाः। विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः। नूनं शान्तनवोऽपीह न धर्ममनुवर्त्तते। द्रोणश्च विदुरश्चैव कृपश्चान्ये च कौरवाः। ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः। संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान् दग्धवानसि' (महाभा.आदि. १.४९.३-६)

[360]'धृतराष्ट्रस् त्वचक्षुष्ट्वाद् राज्यं न प्रत्यपद्यत। पारशवत्वाद् विदुरो राजा पाण्डुर्बभूव ह। (महाभा.आदि. १०८.२५)

[361]'वर्त्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्त्तिना। स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद् यल्लोकहितं भवेत्॥ लोकरञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः। सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम्॥...॥ पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः। निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः' (महाभा.शान्ति. ५६.४६;५७.११,३३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

अपने प्रिय को = अपने हित को त्यागकर वही कार्य करे जो कि प्रजा के लोगों के हित में हो'। 'प्रजा के लोगों को प्रसन्न रखना, सत्य की रक्षा करना और व्यवहार में सरलता=छलकपट का अभाव ही राजा का सनातन धर्म है'। 'वही राजा सबसे श्रेष्ठ है, जिसके राज्य में प्रजाजन उसी प्रकार निर्भयतापूर्वक विचरते हैं, जैसे पिता के घर में पुत्र-पुत्रियाँ[361]।

प्रजा के अन्तर्गत तुम्हारे भतीजे (=पाण्डु के पांचों पुत्र) भी आते थे। उनके हित के विषय में तुम्हारा ध्यान नहीं था। उनकी बढ़ती देखकर तुम्हें दुःख होता था। तुम्हारे बाद की दूसरी पीढ़ी में तुम्हारे और पाण्डु के पुत्रों में युधिष्ठिर सबसे बड़े थे। अतः तुमने उसे युवराज-पद पर प्रतिष्ठित किया। क्योंकि युधिष्ठिर में धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, दया, सरलता, कर्मचारियों पर कृपा और स्थिरमित्रता आदि गुण थे[362]।

यह घटना उसके बाद की है, जब शिक्षासमाप्ति पर द्रोण ने कौरव-पाण्डव शिष्यों से 'द्रुपद को जीवित पकड़कर लाना' रूपी दक्षिणा मांगी थी। उस दक्षिणादान के हेतु द्रुपद-सेना से युद्ध करने के समय कर्ण-सहित दुर्योधन आदि कौरव द्रुपद-सेना की मार से व्याकुल होकर रणभूमि से भाग छूटे थे और पाण्डवों ने घोर संग्राम करके द्रुपद को जीवित पकड़कर आचार्य द्रोण को सौंपा था। युधिष्ठिर के युवराज बनने पर अर्जुन ने अपने भीम-नकुल-सहदेव भाईयों के सहयोग से विपुल, दत्तामित्रं, सुमित्र आदि सौ

362'ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव। स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः॥ धृतिस्थैर्य-सहिष्णुत्वादानृशंस्यात् तथार्जवात्। भृत्यानामनुकम्पार्थं तथैव स्थिरसौहृदात्॥ (महाभा.आदि. ५७.११,३३)

363'अर्जुनप्रमुखैः पार्थैः सौवीरः समरे हतः। अतीव बलसम्पन्नः सदामानी कुरून् प्रति॥ विपुलो नाम सौवीरः शस्तः पार्थेन धीमता॥ दत्तामित्र इति ख्यातं संग्रामे कृतनिश्चयम्। सुमित्रं नाम सौवीरमर्जुनोऽदमयच्छरैः॥ भीमसेनसहायश्च रथानामयुतं च सः। अर्जुनः समरे प्राच्यान् सर्वानेकरथोऽजयत्॥ तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणामजयद्

वीर राजाओं को, यवनराज को, प्राच्य देश के राजाओं को और दक्षिण देश के अधिपतियों को जीतकर कुरुराष्ट्र का विस्तार किया और बहुत सा धन भी कुरुराष्ट्र के खजाने में भिजवाया[363]।

हे धृतराष्ट्र! इन पाण्डवों ने कुरुराष्ट्र की – आपके राष्ट्र की समृद्धि को बढ़ाया और इसकी सीमाओं का विस्तार किया, किन्तु तुम इनके पराक्रम से दुःखी हो गये, इनके बल की प्रसिद्धि से तुम्हारे हृदय में पाण्डवों के प्रति दूषित भाव उत्पन्न हो गया, तुम्हें चिन्ता सताने लगी, सो तुम रात में ठीक से सो भी नहीं पाते थे[364]।

तुमने कुटिलमति कणिक नामक मन्त्री को बुलाकर कहा – हे द्विजोत्तम! ये पाण्डव दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक समर्थ होते जा रहे हैं, इनसे मुझे ईर्ष्या हो गई है। तुम मुझे इसके विषय में सन्धि या विग्रह की कोई निश्चित युक्ति बताओ, मैं तुम्हारे कहे अनुसार ही करूँगा'[365]। तब उसने सन्धि की जगह विग्रह से भरी, तुम्हारे मन में जो शत्रु से लग रहे थे, उन पाण्डवों के विषय में बहुत सी कुटिल चालाकी की बातें बताईं, तुम जीवन भर उन्हीं के अनुसार आचरण करते रहे। उसने कहा था– 'किसी पर प्रहार करने से पहले और प्रहार करते हुए भी उससे प्यारी-प्यारी बातें करो। प्रहार करने के बाद

दिशम्। धनौघं प्रापयामास कुरुराष्ट्रं धनञ्जयः॥ एवं सर्वे महात्मानः पाण्डवा मनुजोत्तमाः। परराष्ट्राणि निर्जित्य स्वराष्ट्रं ववृधुः पुरा॥ (महाभा.आदि. १३८.२०...२६)

364 'ततो बलमतिख्यातं विज्ञाय दृढधन्विनाम्। दूषितः सहसा भावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु। स चिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि' (महाभा.आदि. १४८.२७)

365 'उत्सिक्ताः पाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम। तत्र मे निश्चिततमं सन्धि-विग्रहकारणम्। कणिक त्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव' (महाभा.आदि. १४९.३)

366 'प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहरन्नपि भारत। प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च।...। वाचा भृशं विनीतः स्यात् हृदयेन तथा क्षुरः। स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सृष्टो

"इस विषवृक्ष के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

दयाभाव का प्रदर्शन करो। प्रहार से उसके मर जाने के बाद उसकी मृत्यु पर शोक जताओ और रोओ धोओ भी'। 'वाणी से सदा बहुत नम्रता दिखाओ और हृदय में छुरे के समान काटने का भाव रखो। क्रूरता का कर्म करने से पहले मुस्कुराकर उससे बातचीत करो'। 'हे राजन्! तुम पाण्डवों से अपनी रक्षा करो क्योंकि तुम्हारे भतीजे पाण्डव अधिक बलवान् हैं[366]।

हे धृतराष्ट्र! तुम्हारा हृदय कलुषित था, इसलिये उसमें उन पाण्डवों के प्रति, जो तुम्हारे भतीजे थे और जिनके पिता मर चुके थे, डाह उत्पन्न हो गया। उनके द्वारा तुम्हारे खजाने में और राष्ट्र में जो वृद्धि की गई, उससे तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये था और अपने दुर्योधन आदि पुत्रों को उनके साथ जोड़कर अपने राष्ट्र आदि की अभिवृद्धि करनी चाहिये थी। पर तुमने उल्टा ही किया। कणिक की नीति ने आग में घी डालने का काम किया। जैसा पिता वैसा पुत्र। तुमने कुटिलमति कणिक की सीख मानी। पुत्र दुर्योधन कुटिलावतार शकुनि, कर्ण और दुःशासन की मन्त्रणा पर चला[367]।

हे धृतराष्ट्र! दुर्योधन ने जब प्रजाजनों में युधिष्ठिर के प्रति श्रद्धा और अनुराग देखा, तो उसने तुम्हें चालाकी से पाण्डवों को वारणावत भेजने की सलाह दी। तब तुम्हारे हृदय के असली क्रूर भाव प्रकट हो गये। तुमने उसे कहा था– हे दुर्योधन ! मेरे हृदय में भी यही बात बार-बार आती है, पर इसमें पाप दिखाई देता है, इसलिये प्रकट नहीं करता हूँ[368]।

रौद्राय कर्मणे।...। तस्मात्त्वं पाण्डुपुत्रेभ्यो रक्षात्मानं नराधिप। भ्रातृव्या बलिनो यस्मात् पाण्डुपुत्रा नराधिप॥ (महाभा.आदि. १४३.५६,६६,९१,९२)

367'(धृतराष्ट्र उवाच–) ये चास्य सचिवा मन्दाः कर्णसौबलकादयः।
ते तस्य भूयसो दोषान् वर्धयन्ति विचेतसः॥ (महाभा.वन. ४९.१७)

368'(धृतराष्ट्र उवाच–) दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि सम्परिवर्त्तते।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम्॥ (महाभा.आदि. १४१.१६)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

हे धृतराष्ट्र! तुमने अपनी मति-भ्रष्टता के कारण दुर्योधन के कहने में आकर पाण्डवों को वारणावत भेज दिया जलकर मर जाने को। यदि तुम सच्चे राजा का भाव रखकर दुर्योधन की दुष्ट सलाह को न मानते, तो आगे उसकी कपटद्यूत आदि के षड्यन्त्र रचने की हिम्मत नहीं होती।

धृतराष्ट्र ? [३]

कपटद्यूत के लिये धृतराष्ट्र की अनुमति

हे धृतराष्ट्र! जब दुर्योधन ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर पाण्डवों के द्वारा की गई दिग्विजय के फलस्वरूप वहाँ आये नाना देशों के राजाओं को कीमती-कीमती भेंटे लेकर उपस्थित देखा और अपार धनराशि की और रत्नों की भरमार देखी, तो उसके मन में भारी ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। उस राज्यलक्ष्मी को हड़पने का सबसे सुगम तरीका शकुनि ने कपटद्यूत को बताया। दुर्योधन के कहने में आकर तुमने द्यूत के लिये विशाल सभा तैयार करने का आदेश देकर विदुर को युधिष्ठिर के पास भेजा, कि वह आकर मेरे पुत्रों के साथ जुआ खेले[369]।

विदुर के द्वारा द्यूत को कलह का कारण बताकर द्यूत न करवाने की सलाह देने पर भी तुमने यह कहकर द्यूत करवाने का ही निश्चय किया, 'कि यदि भाग्य विपरीत न हुआ, तो कलह नहीं होगी। यह सारा संसार विधाता के विधान के वशीभूत होकर ही

---

[369] 'ततो विद्वान् विदुरं मन्त्रिमुख्यमुवाचेदं धृतराष्ट्रो नरेन्द्रः। युधिष्ठिरं राजपुत्रं च गत्वा मद्वाक्येन क्षिप्रमिहानयस्व॥ सभेयं मे बहुरत्ना विचित्रा शय्यासनैरुपपन्ना महार्हैः। सा दृश्यतां भ्रातृभिः सार्धमेत्य सुहृद्द्यूतं वर्त्ततामत्र चेति (महाभा.स. ५६. २१-२२)

[370] 'नेह क्षत्तः कलहस्तप्स्यते मां न चेद् दैवं प्रतिलोमं भविष्यत्। धात्रा तु

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

चल रहा है, स्वतन्त्रता से नहीं। सो तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र युधिष्ठिर को यहाँ ले आओ[370]।

हे धृतराष्ट्र! तुमने पहले तो द्यूत से दूर रहने के लिये दुर्योधन को समझाया, पर दुर्योधन के हठ करने पर तुम मान गये। इसका कारण था तुम्हारे हृदय में पाण्डवों के प्रति डाह की और उनके अहित की भावना। इसीलिये जब-जब कपटद्यूत की चालें चली गईं, तब-तब तुम एकाग्र होकर उसका परिणाम जानने को उत्सुक होते थे, अपने हृदय की प्रसन्नता को प्रकट न करके। किन्तु अठारहवीं चाल में जब मूढ युधिष्ठिर ने शकुनि के उकसाने पर द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया, उस समय भीष्म, द्रोण आदि के पसीने छूट गये, विदुर माथा पकड़ कर बैठ गया तथा अन्य बुजुर्गों ने युधिष्ठिर को धिक्कारा। पर तुम्हारे मन की स्थिति अन्य थी। तब जैसे ही शकुनि ने पाशे फेंककर कहा 'जीत लिया (=द्रौपदी को जीत लिया) तब तुमने प्रसन्न होकर बार-बार पूछा— 'किं जितम्, किं जितम् = किसे जीत लिया? किसे जीत लिया? इस प्रकार तुम अपने कुटिल भाव को छिपा न सके। वह बाहर फूट पड़ा।[371]।

हे धृतराष्ट्र! तुम्हारी यह ईर्ष्या भावना - पाण्डवों के अहित की भावना ही तुम्हारे दुरात्मा पुत्र दुर्योधन को आगे-आगे दुष्टता करने में सहायक होती गई। यदि तुम राजा का कर्त्तव्य पालते हुए, इस द्यूत को न होने देते, तो महाभारत युद्ध की नींव न पड़ती।

दिष्टस्य वशे किलेदं सर्वं जगच्चेष्टति न स्वतन्त्रम्॥ तदद्य विदुर प्राप्य राजानं मम शासनात्। क्षिप्रमानय दुर्धर्षं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्' (महाभा.सभा. ५७.४,५)

371 'धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः।
किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत' (महाभा.सभा. ६५.४३)

372 'तूर्णं प्रत्यानयस्वैतान् कामं व्यध्वगतानपि। आगच्छन्तु पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः॥ (महाभा.स. ७४.२४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

धृतराष्ट्र ? [४]

पुनः कपटद्यूत और धृतराष्ट्र

हे धृतराष्ट्र! तुम्हारी मति प्रमाद के कारण आन्दोलित होती रहती थी। कभी-कभी उसमें थोड़ा विवेक जागृत होता था, पर फिर मात्र अपने पुत्रों के ही हित के विचार से पुनः विनाशपरिणामी अन्याय-अधर्म का मार्ग पकड़ लेती थी। कपटद्यूत के द्वारा युधिष्ठिर का सब कुछ हड़प लिये जाने पर और द्रौपदी का घोर अपमान होने के बाद; उन सबके भयङ्कर परिणामों पर विचार करके तुमने पहले हुई द्यूतक्रीड़ा को खारिज करके पाण्डवों की हारी हुई राज्यलक्ष्मी उन्हें वापिस कर दी और वे अपनी राजधानी को प्रस्थान भी कर गये।

किन्तु फिर दुर्योधन-कर्ण-शकुनि के द्वारा बहकाने पर तुमने वनवासवाली शर्त पर, पुनः द्यूतक्रीड़ा के लिये, मार्ग में जाते हुए पाण्डवों को बुलवा भेजा[372]। फिर द्यूत न करवाने के लिये भीष्म, द्रोण आदि सभी ने एक स्वर में 'पुनः द्यूत नहीं होना चाहिये' यह कहा था। किन्तु तुमने अपने पुत्र के प्यार में अन्धे होकर किसी की नहीं सुनी (द्रष्टव्य-पृ. २०३)। स्वयं गान्धारी ने भी तुम्हें अनेक प्रकार से समझाकर फिर द्यूतक्रीड़ा करवाने से बाज आने को कहा था (द्रष्टव्य-पृ. २०३)। पर तुमने उससे कहा - '<u>भले ही फिर जुआ खेलने से कुल का नाश हो जावे</u>, मैं इसे रोक नहीं सकता। मेरे पुत्र जैसा चाहते हैं, वैसा ही होवे। मेरे पुत्र पाण्डवों के साथ जुआ खेलें[373]।

तदनुसार फिर जुआ खेला गया और युधिष्ठिर के हार जाने पर पाण्डव द्रौपदी

---

373 'अथाब्रवीन्महाराजो गान्धारीं धर्मदर्शिनीम्। <u>अन्तः कामं कुलस्यास्तु</u> न शक्नोमि निवारितुम्॥ यथेच्छन्ति तथैवास्तु प्रत्यागच्छन्तु पाण्डवाः। पुनर्द्यूतं च कुर्वन्तु मामकाः पाण्डवैः सह (महाभा.स. ७५.११,१२)

374 '(भीमसेन उवाच-) अहं दुर्योधनं हन्ता कर्णं हन्ता धनञ्जयः। शकुनिं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

सहित दुर्योधन चौकड़ी के ताने सुनते हुए वन को चले गये। तेरह वर्ष के बाद वापिस राज्य पाने की आशा के साथ, अन्यथा इन सब अपमानों का बदला लेने के संकल्प के साथ[374]।

हे धृतराष्ट्र! पुनर्द्यूत को न करने की नेक सलाह सर्वश्री द्रोण, सोमदत्त, बाह्लीक, कृप, विदुर, अश्वत्थामा, युयुत्सु, भूरिश्रवाः, भीष्म और विकर्ण इन दस तुम्हारे अपनों ने – हितैषियों ने दी थी और अर्धाङ्गिनी महापतिव्रता गान्धारी द्वारा भी 'तुम पुनर्द्यूत करवाके कुल का क्षय मत करवाओ' इस प्रकार चेतावनी देने पर भी तुमने 'चाहे कुल का अन्त=नाश हो जावे' ऐसा कहकर पुनर्द्यूत करवाया। तो अन्दर से भी अन्धे हृदयान्ध धृतराष्ट्र! तुम ही इस महाविनाशक महाभारतयुद्ध के सर्जक बने। फिर तुम युद्ध में अपने पुत्रों के और कर्ण आदि के मर जाने पर विलाप क्यों करते रहे ? तुम इनकी मृत्यु पर पाण्डवों को दोष देते रहे। पर अपना दोष तुमने नहीं देखा। तुमने अपने हठी पुत्र दुर्योधन की इच्छा की पूर्ति पर सारे कुरुकुल को न्यौछावर कर दिया।

धृतराष्ट्र ? [५]

पाण्डवों द्वारा अज्ञातवास सहित तेरहं वर्ष वनवास रूपी शर्त की पूर्ति और धृतराष्ट्र

हे धृतराष्ट्र! तुम राजा थे। तुम्हारे द्वारा ही जो पुनर्द्यूत हुआ, उसमें शर्त्त थी, कि

चाक्षकितवं सहदेवो हनिष्यति। सत्यं देवाः करिष्यन्ति यन्नो युद्धं भविष्यति। (अर्जुन उवाच) कर्णं कर्णानुगांश्चैव रणे हन्तास्मि पत्रिभिः।...। न प्रदास्यति चेद् राज्यमितो वर्षे चतुर्दशे। दुर्योधनोऽभिसत्कृत्य, सत्यमेतद् भविष्यति'।...। एवं ते पुरुषव्याघ्राः सर्वे व्यायतबाहवः। प्रतिज्ञा बहुलाः कृत्वा धृतराष्ट्रमुपागमन्' (महाभा.स. ७७. २६,३२,३६,४६)

375 'त्रयोदशे च निर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम्।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

हारने वाले को अज्ञातवास सहित तेरह वर्ष वन में रहना पड़ेगा। उसके बाद उसको वापिस अपना राज्य मिल जायेगा[375]। तदनुसार पाण्डवों ने बारह वर्ष वन में गुजारे और एक वर्ष अज्ञात रहकर पूरा किया। इसका पता तुम्हें 'विराटराज की गौओं के हरने के लिये गये दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, शकुनि, भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा और अन्य विकर्ण आदि महारथियों के वापिस लौटने पर और अकेले अर्जुन द्वारा ये सब भगा दिये गये हैं यह जानकर लग गया होगा[376]। और यह भी ज्ञान हो गया होगा, कि पाण्डवों ने तेरह वर्ष की काल सीमा से भी पांच महीने और बारह दिन अधिक वनवास में बिताये हैं[377]।

हे धृतराष्ट्र! इतना ज्ञान होने पर तुम्हें एक राजा के रूप में न्याय करते हुए तुरन्त दुर्योधन को बुलाकर आदेश देना चाहिये था, 'कि द्यूत में पराजित पाण्डवों ने द्यूत की

स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यमितरैरथवेतरैः (महाभा.स. ७६.१४)

376'याते त्रिगर्तान् मत्स्ये तु पशूंस्तान्वै परीप्सति। दुर्योधनः सामात्यो विराटमुपयादथ॥ भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित्। द्रौणिश्च सौबलश्चैव तथा दुःशासनः प्रभो। विविंशतिर्विकर्ण...। विहाय संग्रामशिरः प्रयातो वैकर्त्तनः पाण्डवबाणतप्तः॥ ततः कृपमुपादाय विरथं ते नरर्षभाः। अपजह्रुर्महावेगाः कुन्तीपुत्राद् धनंजयात्॥ अन्तरं प्रददौ पार्थो द्रोणस्य व्यपसर्पितुम्। स तु लब्ध्वान्तरं तूर्णमपायाज्जवनैर्हयैः॥ तौ हताश्वौ विभिन्नांगौ धृतराष्ट्रात्मजावुभौ। अभिपत्य रथैरन्यैरपनीतौ पदानुगैः॥ तं (भीष्मं) विसञ्ज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम्॥ रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो रणात् प्रदुद्राव यतो न पार्थः॥ एवं सर्वाणि सैन्यानि भग्नानि भरतर्षभ। व्यद्रवन्त दिशः सर्वा निराशानि स्वजीवते (महाभा.वि. ३५.१-३;५४.३६;५७.४३;५८.७५,७६;६१.४५;६४.४९;६५.१३;६३.१४)

377'एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः। त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः (महाभा.वि. ५२.४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

शर्त पूरी कर ली है, अतः तुम पाण्डवों को सत्कारपूर्वक विराटनगर से बुलाकर, उनका राज्य उन्हें सौंप दो'। दुर्योधन के द्वारा आदेश मानने से इन्कार करने पर तुम्हें भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर और विकर्ण तथा युयुत्सु को बुलाकर कहना चाहिये था, कि आप लोग पाण्डवों को विराटनगर से ले आइये और उनका राज्य उन्हें सौंप दीजिये। यह दुर्मति दुर्योधन मेरा उचित न्याययुक्त आदेश नहीं मान रहा है, अतः इसे कैद कर लीजिये।

हे धृतराष्ट्र! तुम्हारे द्वारा ऐसा कहने पर भीष्म-द्रोण-कृप-विकर्ण आदि अवश्य तुम्हारी न्याययुक्त बात का समर्थन करके तदनुसार आचरण करते। ऐसा करने पर दुर्योधन चौकड़ी अवश्य प्रतिरोध करती, किन्तु तब पाण्डवों के पराक्रम के सामने उनकी एक न चलती। द्वैतवन के प्रसङ्ग में गन्धर्वचित्रसेन से युद्ध करने में और अभी-अभी विराटगोहरण के अवसर पर अकेला अर्जुन इन सब पर भारी पड़ा था, इस बात को अभी वे भूले नहीं थे। किं च युद्धदुर्मद होकर दुर्योधन चौकड़ी युद्ध भी करती, तो कुछ अवश्य मरते, पर पीछे हुए भारी महाभारत युद्ध में जो लाखों-लाख लोगों की हत्या हुई वह न होती। पर बाहर के समान अन्दर से पुत्रमोहान्ध धृतराष्ट्र! तुमने न्याय का कार्य न करके महाभारत-युद्ध होने में सहायता ही की!

धृतराष्ट्र ? [६]

शन्तिदूत कृष्ण को दुर्योधनादि कीं कैद करने की योजना और धृतराष्ट्र

हे धृतराष्ट्र! तुमने उपरिचर्चित राजा का न्यायोचित कार्य नहीं किया। तत्पश्चात्

---

378 '(युधिष्ठिर उवाच–) अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्। अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकं च पञ्चमम्। भ्रातॄणां देहि पञ्चानां पञ्च ग्रामान् सुयोधन' (महाभा.उ. ३१.१९,२०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

युधिष्ठिर ने 'युद्ध न हो' इस दृष्टि से अपने पूरे इन्द्रप्रस्थ राज्य की मांग को छोड़कर पांच भाइयों के योगक्षेम के लिये मात्र पांच ग्राम - अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और एक दात्रिच्छित देने को संजय के द्वारा तुम्हारे पास सन्देश भिजवाया[378]। तुम अपने हठी पुत्र के मोह के कारण वैसा भी न करवा सके। तब श्रीकृष्ण सन्धि-प्रस्ताव लेकर शान्तिदूत के रूप में तुम्हारी सभा में आये। उस अवसर पर तुम्हारी दुर्योधन चौकड़ी ने दो बार श्रीकृष्ण को कैद करने की योजना बनाई। एक तो जब कृष्ण हस्तिनापुर आते समय विश्राम के लिये एक रात्रि भर के लिये 'वृकस्थल' ग्राम में विश्राम[379] कर रहे थे तब (द्रष्टव्य-पृ. ५२)। और दुर्योधन किसको बन्दी बनाने की सोच रहा था? जिससे कुछ समय पहले ही एक बड़ी सेना युद्ध के लिये सहायता रूप में मिली थी। कितना कृतघ्न था, तेरा बेटा! और दूसरी बार दुःशासन के कहने पर सभा-मध्य में ही कृष्ण को बन्दी बनाने का षड्यन्त्र रचा था (द्रष्टव्य-पृ. ८६)।

कृष्ण को कैद करने के पहले प्रस्ताव का भीष्म ने कड़ा विरोध किया और तुम्हें भी फटकारा था कि तुम भी इस कुपथगामी दुर्योधन की हाँ में हाँ मिलाते हो[380]।

सन्धिसभा के मध्य में ही कृष्ण को बन्दी बनाने के षड्यन्त्र का सात्यकि द्वारा सभा में भण्डाफोड़ कर देने के बाद जब कृष्ण ने तुम्हें सम्बोधन करके कहा था कि – हे

---

379 'वृकस्थलं समासाद्य केशवः प्रवीरहा।... रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह। युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम्' (महाभा.उ. ८४.२०...२३)

380 '(भीष्म उवाच-) इममुत्पथि वर्त्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम्। वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्यानुवर्त्तसे' (महाभा.उ. ८८.२०)

381 'राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा। एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव॥ एतान् हि सर्वान् संरब्धान् नियन्तुमहमुत्सहे॥ अद्यैव ह्यहमेनांश्च ये चैनाननु भारत॥ निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत्' (महाभा.उ. १३०.२४...२८)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

राजन्! यदि ये दुर्योधन आदि क्रुद्ध होकर मुझे कैद करना चाहते हैं, तो अनुमति दो मैं इन सबको बन्दी बनाकर आज ही पाण्डवों को सौंप दूँ[381]।

हे धृतराष्ट्र! तब तुमने – 'हे क्रूर! महापापी! दुर्योधन! तू नीच सहायकों के साथ मिलकर पाप करना चाह रहा है। तू ऐसा कर्म करना चाह रहा है, जो अशक्य होने के साथ ही कीर्त्ति को बट्टा लगाने वाला भी है। ऐसा कार्य तेरा जैसा मूर्ख और कुलकलङ्क ही कर सकता है। तू इन श्रीकृष्ण को पापियों के सहयोग से कैद करना चाहता है" इस प्रकार कर्ण-दुःशासन के साथ बैठे दुर्योधन को फटकारा था[382]। किन्तु इसका दुर्योधन आदि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, श्रीकृष्ण के स्व सामर्थ्य-प्रदर्शन के कारण ही वें उन्हें क़ैद नहीं कर सके।

हे धृतराष्ट्र! तुममें यदि कौरवकुल के नाश की चिन्ता होती, तो तुम उसी समय कृष्ण से कहते, कि भगवन्! यह दुर्मद दुरात्मा किसी की भी मानने को तैयार नहीं है, सो आप समर्थ हैं, तो इसको और इसके सहायकों को कैद करके कारागार में डाल दीजिये। हे भगवन्! जैसे महाराज सगर ने अपने प्रजापीडक पुत्र 'असमञ्जाः' को अपने सचिवों के द्वारा देश निकाला दे दिया था,[383]। वैसे मैं भी इस पापी, लोभी, क्रूर, हठी पुत्र दुर्योधन को आज त्यागता हूँ।'

---

[382]'अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत। कर्णदुःशासनाभ्यां च राजभिश्चापि संवृतम्॥ नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान्। पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकीर्षसि। अशक्यमयशस्यं च सद्भिश्चापि विगर्हितम्। यथा त्वादृशको मूढो व्यवस्येत् कुलपांसनः। त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम्। पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि' (महाभा.स. १३०.३३-३६)

[383]'सगरं चाभ्यभाषन्त सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः। असमञ्जोभयाद् घोरात् ततो नस्त्रातुमर्हसि। पौराणां वचनं श्रुत्वा घोरं नृपतिसत्तमः। मुहूर्तं विमना भूत्वा सचिवानिदमब्रवीत्। असमञ्जाः पुरादद्य सुतो मे विप्रवास्यताम्' (महाभा.वन. १०७. ४१...४३)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

पर तुमसे यह नहीं कहा जा सका। तुम्हारी मति पर अन्ध-पुत्रमोह ने आवरण जो डाल रखा था।

हे धृतराष्ट्र! तुम कुरुराष्ट्र के राजा बने हुए थे। वह राजा ही क्या जिसके आदेश को उसका पुत्र ही न माने। तुम अपने आपको पुत्रनियन्त्रण में असमर्थ मानते थे[384]। तब तुम्हें, उस महामना को, जिसने पाण्डु की मृत्यु के बाद तुम्हें राजा बनाया था, उस भीष्म पितामह को स्पष्ट कहना चाहिये था, कि मैंने जो दुर्योधन को युवराज पद पर बैठाया था, उस आदेश को मैं खारिज करता हूँ, क्योंकि यह किसी भी हितैषी बुजुर्ग का और ऋषि मुनि का और माता-पिता का भी न्याय्य कहना नहीं मानता है, आज से यह युवराज नहीं है। इसके बाद आप लोग विकर्ण को जो धर्मप्रधान हृदय वाला है, जिसने द्यूतसभा में भी न्याय का पक्ष लिया था, उसको युवराज मानें। और कल से, उसे ही कुरुदेश का राजा मानें। मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। सब पुत्रों के मैंने विवाह कर दिये हैं[385]। अब मैं वन में जाकर वानप्रस्थ-जीवन बिताऊँगा। आज ही मैं विदुर को भेजकर पाण्डवों को बुलाता हूँ। हे पिताश्री! आप द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि के सहयोग से पाण्डवों को उनका इन्द्रप्रस्थ वाला राज्य, प्रतिष्ठापूर्वक लौटा दीजिये।"

हे धृतराष्ट्र! तुम्हारे द्वारा ऐसी घोषणा करने पर भीष्म आदि वस्तुतः ऐसा करते। निश्चय ही तब पाण्डवों के आने पर दुर्मति दुर्योधन और उसके साथी उनका प्रतीकार करते और तब कुछ हताहत भी होते, किन्तु पीछे जाकर जो लाखों-लाख लोग मृत्यु के

---

384 'धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत। 'यावद् बलं मे पुत्रेषु' पश्यस्येतज्जनार्दन।...। (कृष्ण उवाच-) वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः। आपृच्छे भवतः सर्वान् गमिष्यामि युधिष्ठिरम्' (महाभा.स. १३१.३१,३२,३८)

385 'सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते। धृतराष्ट्रेण समये परीक्ष्य विधिवन्नृप (महाभा.आदि. ११६.१७)

386 'ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः। राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाण-

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

निवाले बने, वे बच जाते। तुमने वानप्रस्थ-जीवन बिताने का निश्चय तो किया; पर कब? जबकि तुम्हारे समस्त गान्धारी-पुत्र मारे गये, उनके दुर्हठ के कारण दोनों ओर के लाखों वीर युद्ध की भेंट चढ़ गये उसके बाद। और उसके भी पन्द्रह वर्ष बाद और वह भी भीमसेन के चुभने वाले वचनों को सुनकर[386]।

तुम अपने पुत्रों की मृत्यु को याद करके भीम को मारने पर उद्यत हुए और पन्द्रह वर्ष तक पुत्रों की याद आने पर भीम को कोसते रहे[387]। किन्तु तुमने कभी अपनी गलती को नहीं स्वीकारा। अतएव श्रीकृष्ण को कहना पड़ा – 'हे राजन्! तुम्हारे अपने अपराध से यह सब हुआ है, फिर क्यों तुम इतना क्रोध कर रहे हो। तभी मैंने, श्री भीष्म पितामह ने, द्रोणाचार्य ने, विदुर ने और सञ्जय ने भी तुम्हें जो वचन कहे थे – सलाह दी थी, वैसा तुमने किया नहीं। हमारे बहुत मना करने पर भी, कि तुम्हारे पुत्र; बल और पराक्रम में अधिक पाण्डवों से ईर्ष्यावश और लोभवश व्यर्थ में पंगा न लेवें। तुमने इन पुत्रों को रोका नहीं। जो राजा स्थिरप्रज्ञ होता है, वह देश और काल को जानकर अपने दोषों को

पीडितः॥...। उचितं नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ। पुत्रेष्वैश्वर्यमाधाय वयसोऽन्ते वनं नृप' (महाभा.आश्र. ३.१२,१३,३८)

387 'यदा तु कौरवो राजा पुत्रं सस्मार दुर्मतिम्।
तदा भीमं हृदा राजन्नप ध्याति स पार्थिवः' (महाभा.आश्र. ३.२)

388 'आत्मापराधात् कस्मात्त्वं कुरुषे कोपमीदृशम्॥ उक्तवांस्त्वां तदैवाहं भीष्मद्रोणौ च भारत। विदुरः सञ्जयश्चैव वाक्यं राजन्न तत् कृथाः। स वार्यमाणो नास्माकमकार्षीर्वचनं तदा। पाण्डवानधिकान् जानन् बले शौर्ये च कौरव॥ राजा हि यः स्थिरप्रज्ञः स्वयं दोषानवेक्षते। देशकालविभागं च परं श्रेयः स विन्दति॥ उच्यमानस्तु यः श्रेयो गृह्णीते नो हिताहिते। आपदः समनुप्राप्य स शोचत्यनये स्थितः। राजंस्त्वं ह्यविधेयात्मा दुर्योधनवशे स्थितः। आत्मापराधादापन्नस्तत् किं भीमं जिघांससि' (महाभा.स्त्री. १३.३...९)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

देखता है, बार-बार चेताने पर भी जो हित और अहित में से हितरूप कल्याणमार्ग को नहीं अपनाता है, वह अनीति में जकड़ा हुआ, आपत्ति में पड़ने पर शोक करता है। इसलिये हे राजन्! तुम अपने आत्मा को टटोलो। तुम दुर्योधन के वश में रहकर अपने ही अपराध से इस दुःख को देख रहे हो। क्यों तुम भीम को मारना चाहते हो[388] ?

हे धृतराष्ट्र! तुम्हें तुम्हारे दोष याद तो आये, पर कब? सब कुछ समाप्त होने के भी पन्द्रह वर्ष बाद। तब तुमने सब अपने सुहृज्जनों को बुलाकर कहा था–'आप लोगों को यह ज्ञात ही है, कि जैसे यह कुरुवंश नष्ट हुआ। यह सब मेरे अपने अपराध से हुआ है, कि मन्दबुद्धि मैंने दुष्टमति और ज्ञातिजनों के भय को बढ़ाने वाले दुर्योधन का कुरु राज्य के युवराज पद पर अभिषेक किया था। उस समय अन्य कौरवों ने भी इसकी अनुमति दे दी थी। फिर जब श्रीकृष्ण ने यह कहा था, कि 'इस पापी दुर्मति दुर्योधन को इसके मन्त्रियों सहित बन्दी बना लो या मार दो' तब उनके इस उचित वचन पर मैंने ध्यान नहीं दिया। विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भगवान् व्यास, सञ्जय आदि मनीषियों ने और गान्धारी ने भी बार-बार हर अवसर पर जो हित की बात कही, वह मैंने पुत्रमोह के कारण नहीं मानी, उसी का मुझे सन्ताप है। तीसरी गलती मेरी यह है, कि मैंने गुणवान् और महान् आत्मा वाले पाण्डवों को उनकी पिता-पितामह से प्राप्त तथा स्वयं के द्वारा और बढ़ाई गई राज्यलक्ष्मी को उन्हें नहीं लौटाया। श्रीकृष्ण ने ठीक ही कहा था, कि

389 'ततः समानयामास धृतराष्ट्रः सुहृज्जनम्।। वाष्पसंदिग्धमत्यर्थमिदमाह च तान् भृशम्। विदितं भवतामेतद् यथा वृत्तः कुरुक्षयः।। ममापराधात् तत् सर्वमनुज्ञातं च कौरवैः। योऽहं दुष्टमतिं मन्दो ज्ञातीनां भयवर्धनम्।। दुर्योधनं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम्। यच्चाहं वासुदेवस्य नाश्रौषं वाक्यमर्थवत्। बध्यतां साध्वयं पापः सामात्य इति दुर्मतिः। पुत्रस्नेहाभिभूतस्तु हितमुक्तो मनीषिभिः। विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च कृपेण च। पदे पदे भगवता व्यासेन च महात्मना।। संजयेनाथ गान्धार्या तदिदं तप्यते च माम्। यच्चाहं पाण्डुपुत्रेषु गुणवत्सु महात्मसु।। न दत्तवान् श्रियं दीप्तां पितृपैतामहीमिमाम्। विनाशं पश्यमानो हि सर्वराज्ञां गदाग्रजः।। एतच्छ्रेयस्तु परममन्यत

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

पाण्डवों को उनका राज्य लौटाने में ही कल्याण है, अन्यथा सब राजा नष्ट हो जायेंगे। सो मेरे इन अपराधों को जो मेरे हृदय में कांटे के समान चुभ रहे हैं। उनको अब मैं पन्द्रह वर्ष बीतने पर विशेष रूप से अनुभव कर रहा हूँ[389]।

हे धृतराष्ट्र ! यह स्वापराधों को मानना भी तुम्हारे द्वारा स्वयं चिन्तन के द्वारा नहीं हुआ, अपितु जब तुम्हारे द्वारा बार-बार कोसे जाने वाला भीमसेन भी इस महाविनाश के मूल में तुम्हें देखता और कहता था तब[390]। अन्यथा युधिष्ठिर अपने भाईयों सहित तुम्हारी आज्ञा में रहकर तुम्हारे सत्कार में लगे रहते थे। क्योंकि दयालु युधिष्ठिर की सब भाईयों और मन्त्रियों को यह आज्ञा थी, कि 'मुझे और आप सबको महाराज धृतराष्ट्र का सदा सम्मान करना है। जो धृतराष्ट्र की आज्ञा में चलेगा वही मेरा प्रिय होगा और जो इससे विपरीत आचरण करेगा वह मेरा शत्रु होगा और उसे दण्ड दिया जायेगा[391]।

इसीलिये युधिष्ठिर के भय से कोई भी मनुष्य धृतराष्ट्र के और दुर्योधन के द्वारा किये गये दुष्कर्मों को नहीं कह पाता था[392]। धृतराष्ट्र या गान्धारी जो भी छोटा या बड़ा

जनार्दनः। सोऽहमेतान्यलीकानि निवृत्तान्यात्मनस्तदा॥ हृदये शल्यभूतानि धारयामि सहस्रशः। विशेषतस्तु पश्यामि वर्षे पञ्चदशेऽद्य वै' (महाभा.आश्र. ३.१५-२४)

390 'तथैव भीमसेनोऽपि धृतराष्ट्रं जनाधिपम्। नामर्षयत राजेन्द्र सदैव दुष्टवद्धृदा' (म.आश्र. ३.३)

391 'ततस्ते सहिताः पञ्च भ्रातरःपाण्डुनन्दनाः। तथाशीलाः समातस्थुर्धृतराष्ट्रस्य शासने॥...। एवं धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः। भ्रातृभिः सहितो धीमान् पूजयामास तं नृपम्॥ उवाच स तदा भ्रातॄनमात्यांश्च महीपतिः। मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः। निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृत्। विपरीतश्च मे शत्रुर्नियम्यश्च भवेन्नरः' (महाभा.आश्र. २.३-५)

392 'न राज्ञो धृतराष्ट्रस्य न च दुर्योधनस्य वै।
उवाच दुष्कृतं कश्चिद् युधिष्ठिरभयान्नरः' (महाभा.आश्र. २.२७-२८)

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

कार्य कहते, उसे युधिष्ठिर तुरन्त सम्मान के साथ पूरा करता था। युधिष्ठिर के इस व्यवहार से और आचरण से धृतराष्ट्र अति प्रसन्न होता था और प्रतिदिन प्रातः उठकर जप करने के बाद 'पाण्डवों की युद्धों में सदा विजय हो' यह कामना और उनकी आयुवृद्धि की प्रार्थना करता था[393]। पाण्डवों ने धृतराष्ट्र के प्रति ऐसा सद् व्यवहार किया था, कि उसे जो प्रसन्नता उसके पुत्र नहीं दे सके, वह प्रसन्नता उसने पाण्डवों से प्राप्त की[394]।

तो ऐसे मान-सम्मान से खुशनुमा वातावरण में तुम्हें अपनी गलतियाँ क्यों याद आतीं। अन्दर-बाहर एक-सा रहने वाले सत्यवक्ता भीमसेन के कड़वे पर सच्चे वचनों के सुनने के बाद ही तुम्हें तुम्हारे दोष याद आये। काश! इन पर समय रहते तुम विचार करते!!

धृतराष्ट्र ? [७]

युद्ध के चौथे दिन अपने आठ पुत्रों के और आठवें दिन सत्रह पुत्रों के मारे जाने पर धृतराष्ट्र का व्यवहार

हे धृतराष्ट्र! महाविनाशकारी युद्ध के मूल कारण द्यूत को न होने देने के लिये तुमने

---

393 'यद् यद् ब्रूते च किंचित् स धृतराष्ट्रो जनाधिपः। गुरु वा लघु वा कार्यं गान्धारी च तपस्विनी। तं स राजा महाराज पाण्डवानां धुरन्धरः॥ पूजयित्वा वचस्तत् तदकार्षीत् परवीरहा। तेन तस्याभवत् प्रीतो वृत्तेन स नराधिपः। अन्वतप्यत संस्मृत्य पुत्रं तं मन्दचेतसम्। सदा च प्रातरुत्थाय कृतजप्यः शुचिर्नृपः। आशास्त पाण्डुपुत्राणां समरेष्वपराजयम्।...। आयूंषि पाण्डुपुत्राणामाशंसत नराधिपः॥ (महाभा.आश्र. २.१८...२३)

394 'न तां प्रीतिं परामाप पुत्रेभ्यः स कुरूद्वहः।
यां प्रीतिं पाण्डुपुत्रेभ्यः सदावाप नराधिपः॥ (महाभा.आश्र. २.२३७२४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

कोई प्रभावकारी प्रयास नहीं किया। फिर बुजुर्गों, आचार्यों और हितैषियों के मना करने पर भी तुमने यह कहकर पुनर्द्यूत करवाने की आज्ञा देदी, कि भले ही कुल का नाश हो जाय, फिर से जुआ खेला जाय। मेरे पुत्र जैसा चाहते हैं, वैसा ही हो। (द्रष्टव्य-पृ. २५०) फिर शर्त के अनुसार अज्ञातवाससहित वनवास के तेरह वर्ष पूरे करने के बाद भी तुम पाण्डवों को उनकी राज्यलक्ष्मी नहीं दिलवा सके। क्यों ? क्योंकि तुम्हें अपने पुत्र ही प्यारे लगते थे। उनके हित का ही तुम्हें ध्यान रहता था। तुम राजा थे। परन्तु तुम्हारी न्याय करने में अभिरुचि नहीं थी। परिणामतः युद्ध हुआ। युद्ध में प्रतिदिन हजारों लाखों वीर मारे जाने लगे। तुम्हें प्रतिदिन प्रतिसमय युद्ध में हताहतों की और जय-पराजय की सूचना तो मिल ही रही थी।

तीन दिन तक के युद्ध में एक लाख से अधिक वीर मृत्यु के ग्रास बन गये। चौथे दिन भी हजारों योद्धा अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गये, हे धृतराष्ट्र! तुम्हें इनकी मृत्यु पर तो पश्चात्ताप नहीं हुआ, परन्तु चौथे दिन के अन्त में जब तुम्हारे सेनापति (=सेनानी), जलसन्ध, सुषेण, उग्र, वीरबाहु, भीम, भीमरथ और सुलोचन नाम वाले आठ पुत्र मारे गये[395]। तब तो तुम्हें कुछ होश आना चाहिये था, कि ऐसे ही मेरे अन्य पुत्र भी मारे

---

[395] 'पुत्रांस्तव तु सम्प्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः। सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश् चिच्छेद पाण्डवः। सम्प्रहस्य च हृष्टात्मा त्रिभिर्बाणैर्महाभुजः। जलसन्धं विनिर्भिद्य सोऽनयद् यमसादनम्। सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे। उग्रस्य सशिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि। पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम्। वीरबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुं ससारथिम्। निनाय समरे वीरः परलोकाय पाण्डवः। भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव। पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद् यमसादनम्। ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे मिषतां सर्वसैन्यानामनयद् यमसादनम्' (महाभा.भी. ६४.३१...३८)

[396] 'अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे। पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम्। अथापरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम्। प्राहिणोन् मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

जायेंगे, सो युद्ध को बन्द करवाने के लिये जी-जान की बाजी लगा दूँ। फिर युद्ध के आठवें दिन जब तुम्हारे सत्रह पुत्र (=अपराजित, कुण्डधार,पण्डितक, विशालाक्ष, महोदर, महेष्वास, आदित्यकेतु, बह्वाशी, व्यूढोरस्क, कुण्डली, अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज) मारे गये[396]। तब तुम्हें कुछ होश आया और तुमने युद्ध का वृत्तान्त सुनाने वाले संजय से पूछा – 'हे सञ्जय! दिन-प्रतिदिन मेरे पुत्र मरते जा रहे हैं, इससे प्रतीत होता है, कि दुर्भाग्य के कारण ही हम मारे जा रहे हैं, तभी तो भीष्म, द्रोण, कृप, सौमदत्ति, भगदत्त और अश्वत्थामा जैसे शूरवीरों के संरक्षण में रहते हुए भी मेरे पुत्र मारे गये हैं। मन्द दुर्योधन तब नहीं माना। भीष्म, विदुर और गान्धारी के द्वारा बहुत मना करने पर भी दुष्टबुद्धि दुर्योधन नहीं समझा उसी का यह फल है, कि क्रुद्ध हुआ भीमसेन मेरे मूर्ख पुत्रों को प्रतिदिन यमलोक भेज रहा है[397]।

पश्यतः। ततः पुनरमेयात्मा प्रसन्धाय शिलीमुखम्। प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत। स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम्। विशालाक्षशिरश्छित्वा पातयामास भूतले। महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे। विव्याध समरे राजन् स हतो न्यपतद् भुवि। आदित्यकेतोः केतुं च छित्त्वा बाणेन संयुगे। भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद भारत। बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणानतपर्वणा। प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति' (महाभा.भी. ८८.२२...२९)

व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत। अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन च। अपातयत् कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा।...। अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम्। दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव च कनकध्वजम् (महाभा.भी. ९६.२३...२७)

397'अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति संजय। मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम्॥ यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः। सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः। अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणामनिवर्तिनाम्। अन्येषां चैव शूराणां मध्यगास्तनया मम। यदहन्यन्त संग्रामे किमन्यद् भागधेयतः। न हि दुर्योधनो मन्दः पुरा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य; प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धृतराष्ट्र-प्रकरण

हे धृतराष्ट्र! आखिर तुम्हें अपने पुत्रों की लगातार होने वाली मृत्यु से युद्ध की महाविनाशकता का अनुभव तो हुआ। किन्तु तब भी तुम पहले तो दैव को=भाग्य को कोसते रहे और फिर दुर्योधन की मूढ़ता को। किन्तु तुमने युद्ध को रोकने का प्रयत्न नहीं किया। इन आठ दिनों में लाखों वीर मारे गये। अकेले भीष्म ने पाण्डव सेना के अस्सी हजार योद्धा मार गिराये। तुम्हारे एक चौथाई पुत्र भी युद्ध में अन्तिम नींद सो गये। तुम राजा थे। तुम्हें सोचना चाहिये था, कि महामूढ़, दुर्हठी दुर्योधन की जिद् के कारण हो रहे युद्ध में मारे जा रहे लाखों योद्धाओं की और मेरे पुत्रों की निरपराध स्त्रियाँ विधवा होती जा रही हैं, सो मैं भीष्म, द्रोण आदि को बुलाकर अपने आदेश से युद्ध को रुकवा दूँ, पर तुमने कुछ नहीं किया। हे धृतराष्ट्र! तुम्हें अब तो दुर्योधन की उन डींगों का खोखलापन पता लग जाना चाहिये था, जिन्हें उसने हांका था, कि (हे पिताजी!) 'आप जल्दी ही यह समाचार सुनेंगे, कि पांचों पाण्डव, मत्स्य देश के योद्धा, पञ्चाल देश के वीर, केकय देश के भट, सात्यकि और श्रीकृष्ण ये सब मेरे द्वारा जीत लिये गये हैं। जैसे सागर के पास पहुँचकर नदियाँ नष्ट हो जाती हैं, वैसे ही मेरे पास पहुँचकर वे सब अपने वंशसहित नष्ट हो जायेंगे। मेरी बुद्धि उनसे बढ़कर है, मेरा तेज और मेरा महान् पराक्रम उनसे श्रेष्ठ है। मेरी विद्या और मेरा योग भी उनसे श्रेष्ठ है। जिन अस्त्रों को भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य और शल (=सोमदत्तपुत्र) जानते हैं, उनको मैं भी जानता हूँ। आप

प्रोक्तमबुध्यत। वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च। गान्धार्या चैव दुर्मेधाः सततं हितकाम्यया। नाबुध्यत पुरा मोहात् तस्य प्राप्तमिदं फलम्। यद् भीमसेनः समरे पुत्रान् मम विचेतसः। अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम् (महाभा.भी. ८८.२-८)

398 'पाण्डवांश्चैव मत्स्यांश्च पञ्चालान् केकयैः सह। सात्यकिं वासुदेवं च श्रोतासि विजितान् मया। सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः। तथैव ते विनंक्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः॥ परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम। परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते। पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा। अस्त्रेषु यत्प्रजानन्ति सर्वं तन्मयि विद्यते। (महाभा.उ. ६१.२५-२८)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

निश्चिन्त रहे[398]। 'हे पितामह! आप पाण्डवों की जीत होगी, ऐसी बात कैसे कह रहे हैं? सुनिये, मैं आपके, द्रोणाचार्य के, कृपाचार्य के, बाह्लिक के अथवा अन्य राजाओं के बलबूते पर युद्ध में नहीं उतर रहा हूँ। मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन ये हम तीन ही युद्ध में पाण्डवों को मार गिरायेंगे[399]।

धृतराष्ट्र ? [८]

अपने पुत्रादि के श्राद्ध के लिये धृतराष्ट्र द्वारा युधिष्ठिर से धन मांगना

हे धृतराष्ट्र! तुमने युद्ध के पश्चात् १५ वर्ष तक पाण्डवों के द्वारा सम्मानपूर्वक रखे जाने के बाद अपनी कर्त्तव्यविहीनता के स्मरण करने कराने पर वन में जाकर तपस्या करने हेतु जाने से पहले विदुर के द्वारा युधिष्ठिर से अपने पुत्र आदि के श्राद्ध के लिये धन देने को कहलवाया – कि महाराज धृतराष्ट्र आगामी कार्त्तिकी पौर्णमासी को बन जायेंगे। उससे पहले धृतराष्ट्र; युद्ध में मारे गये भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लिक और अपने पुत्रों के तथा अन्य अपने मित्रों के और दुष्ट जयद्रथ के श्राद्ध के रूप में दान करना चाहते हैं। सो उसके लिये वे धन चाहते हैं[400]।

हे धृतराष्ट्र! अब मरे हुओं के नाम पर श्राद्ध के रूप में दान करने का क्या लाभ?

---

399 'पितामह! विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम्। नाहं भवति न द्रोणे न कृपे न च बाह्लिके। अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे। अहं वैकर्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे। पाण्डवान् समरे पञ्च हनिष्यामः शितैः शरैः (महाभा.उ. ६३.४-६)

400 'धृतराष्ट्रो महाराजो वनवासाय दीक्षितः। गमिष्यति वनं राजन्नागतां कार्तिकीमिमाम्। स त्वां कुरुकुलश्रेष्ठ किंचिदर्थमभीप्सति। श्राद्धमिच्छति दातुं स गाङ्गेयस्य महात्मनः॥ द्रोणस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः। पुत्राणां चैव सर्वेषां ये चान्ये सुहृदो हताः। यदि चाप्यनुजानीषे सैन्धवापसदस्य च' (महाभा.आश्र. ११. ३-६)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी-प्रकरण

तुमने अपनी कर्त्तव्य-च्युति के कारण जुआ आदि होने दिया। फिर युद्ध को रोकने का कोई भी प्रभावी प्रयत्न नहीं किया। सच्चा श्राद्ध तो तब होता, यदि तुम किसी भी उपाय से युद्ध न होने देते और उन्हें अकाल मृत्यु से बचा लेते और तुम्हारे द्वारा उन मरे हुओं के नाम पर दान करने से क्या वे अपने दुष्कर्मों का फल पाने से बच जायेंगे तथा क्या तुम भी अपने किये के फल से बच जाओगे? कड़वी पर सच्ची बात कहने वाले भीमसेन ने उस समय अपने बड़े भाई राजा युधिष्ठिर और छोटे भाई अर्जुन की सम्मति के विपरीत कहा था – 'हे अर्जुन! भीष्म पितामह, सोमदत्त, भूरिश्रवाः, बाह्लीक, द्रोणाचार्य तथा अन्य सुहृज्जनों के निमित्त हम श्राद्ध-दान देंगे। धृतराष्ट्र न देवें तो ही ठीक है। कर्ण के श्राद्धदान का कार्य माता कुन्ती कर देगी। और दुर्योधन आदि दुष्टों के लिये श्राद्धदान की कोई आवश्यकता नहीं है। वे तो भारी से भारी कष्ट को प्राप्त होवें। क्योंकि उन कुलांगारों ने सारी पृथिवी को=सारी पृथिवी के वीरों को नष्ट करवा दिया। हे अर्जुन! तुम बारह वर्षों के वनकष्टों को और अज्ञातवास के महादुःख को तथा द्रौपदी के घोर अपमान को भूल गये हो? कहाँ चला गया था उस समय हमारे प्रति धृतराष्ट्र का स्नेह? जब तुम्हारे शरीर पर से सुवस्त्र और आभूषण उतरवा लिये गये थे और मृगचर्म धारण करके द्रौपदी सहित तुम वन जाने से पहले धृतराष्ट्र से मिलने गये थे? और ये भीष्म, द्रोण, सोमदत्त आदि भी उस समय कहाँ थे जब हम तेरह वर्ष तक जंगली फल आदि से वनों में गुजारा कर रहे थे। और तुम उस बात को भूल गये क्या? जब यह ज्येष्ठ पिता (=ताऊ) कहलाने वाला

---

401 'भीमसेनस्तु सक्रोधः प्रोवाचेदं वचस्तदा। वयं भीष्मस्य दास्यामः प्रेतकार्यं तु फाल्गुन। सोमदत्तस्य नृपतेर्भूरिश्रवस एव च। बाह्लीकस्य च राजर्षेर्द्रोणस्य च महात्मनः। अन्येषां चैव सर्वेषां,कुन्ती कर्णाय दास्यति। श्राद्धानि पुरुषव्याघ्र मा प्रादात् कौरवो नृपः॥ इति मे वर्तते बुद्धिर्मा नो निन्दन्तु शत्रवः। कष्टात् कष्टतरं यान्तु सर्वे दुर्योधनादयः। यैरियं पृथिवी कृत्स्ना घातिता कुलपांसनैः। कुतस्त्वमसि विस्मृत्य वैरं द्वादशवार्षिकम्। अज्ञातवासं गहनं द्रौपदीशोकवर्धनम्। क्व तदा धृतराष्ट्रस्य स्नेहोऽस्मद्गोचरो गतः॥ कृष्णाजिनोपसंवीतो हृताभरणभूषणः। सार्धं पाञ्चालपुत्र्या त्वं राजानमुपजग्मिवान्।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी-प्रकरण

दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र; कपटद्यूत के समय विदुर से बार-बार पूछता था, कि 'युधिष्ठिर की क्या वस्तु जीत ली गई? क्या वस्तु जीत ली गई?[401]।

काल की सच्ची बातों को सुनकर धृतराष्ट्र ने मानो पछताते हुए अपना मुख नीचा कर लिया और वन जाने को उतावले हो गये।

तब काल गान्धारी की सेवा में पहुँचा –

गान्धारी ? [१]

युधिष्ठिर-जन्म-वृत्तान्त सुनकर गान्धारी द्वारा ईर्ष्यावश पेट पीटना

काल बोला – हे सुबल की पुत्री गान्धारी! निश्चय ही तुम्हारी जैसी पतिव्रता स्त्री इस संसार में दुर्लभ ही है। जिसने विवाह से पहले ही यह जानकर, 'कि मेरे पिता माता जिसके साथ मेरा विवाह करने वाले हैं, वह जन्म से अन्धा है' तुमने तत्काल रेशमी वस्त्र की कई तहों वाली पट्टी से अपनी आंखें बांध ली और निश्चय किया कि मैं पतिव्रत-परायणा रहूंगी और पति के प्रति असूया (=दोषदर्शन) भाव नहीं रखूंगी[402] और तुमने विवाह के पश्चात् पतिकुल में आकर अपनी सुशीलता, सदाचार और चेष्टाओं से सब कौरवों को सन्तुष्ट कर दिया। सब बुर्जुगों को अपने आचरण से प्रसन्न करके अपने पति

क्व तदा द्रोणभीष्मौ तौ सोमदत्तोऽपि वाऽभवत्। यत्र त्रयोदश समा वने वन्येन जीवथ। न तदा त्वां पिता ज्येष्ठः पितृत्वेनाभिवीक्षते। किं ते तद् विस्मृतं पार्थ यदेष कुलपांसनः। दुर्बुद्धिर्विदुरं प्राह द्यूते किं जितमित्युत' (महाभा.आश्रम. ११.१६-२५)

402'गान्धारीत्वथ शुश्राव धृतराष्ट्रमचक्षुषम्। आत्मानं दित्सितं चास्मै पित्रा मात्रा च भारत। ततः सा पट्टमादाय कृत्वा बहुगुणं तदा। बबन्ध नेत्रे स्वे राजन् पतिव्रत-परायणा। नाभ्यसूयां पतिमहमित्येवं कृतनिश्चया' (महाभा.आदि. १०९.१३-१५)

403'गान्धार्यपि वरारोहा शीलाचारविचेष्टितैः। तुष्टिं कुरूणां सर्वेषां जनयामास

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

के अनुकूल रहते हुए तुमने वाणी से भी किसी अन्य पुरुष का नाम तक नहीं लिया[403]।

किन्तु हे गान्धारी! इतने उच्च गुणों से युक्त होते हुए भी तुम्हारे अन्दर साधारण स्त्रियों जैसा एक महान् दुर्गुण था – ईर्ष्या। इसीलिये तुमने जब कुन्ती के गर्भ से युधिष्ठिर के जन्म की बात सुनी, तब भारी दुःख से मूर्छित सी हुई तुमने अपने पेट को बड़े जोर से पीटा, जिससे तुम्हारे एक लोहे के गोले के समान कठोर मांसपेशी पैदा हुई[404]।

हे गान्धारी! तुमने ईर्ष्यावश ऐसा किया। तुम्हें तो वनवासिनी कुन्ती के पुत्रजन्म पर प्रसन्न होना चाहिये था और धैर्य धारण करके स्वयं के प्रसव न होने के कारण का पता लगा कर, योग्य चिकित्सा करानी चाहिये थी। परन्तु ईर्ष्या तुम पर हावी थी। माता-पिता के गुण-अवगुण सन्तान में भी सङ्क्रान्त होते हैं। तुम्हारा यह ईर्ष्या रूपी दुर्गुण तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को संस्कार रूप में मिला जो क्रमशः बढ़कर महाभारत-युद्ध का मूल कारण बना। यह ईर्ष्या ही थी, जिसने दुर्योधन के मन में,पाण्डवों की राज्यलक्ष्मी को देखने के बाद,भारी बैचेनी उत्पन्न कर दी। दुर्योधन ने खाना-पीना-सोना सब छोड़ दिया और मरने को तैयार हो गया। तब भानजे के दुर्मोह में फंसे शकुनि ने कपटद्यूत से पाण्डवों की राज्यलक्ष्मी दुर्योधन के लिये हड़पने की योजना बनाई (द्रष्टव्य-पृ. ४३)। जो कि क्रमशः महाभारतयुद्ध का कारण बनती गई।

भारत॥ वृत्तेनाराध्य तान् सर्वान् गुरून् पतिपरायणा। वाचापि पुरुषानन्यान् सुव्रता नान्वकीर्त्तयत् (महाभा.आदि. १०९.१८,१९)

404 'श्रुत्वा कुन्तीसुतं जातं बालार्कसमतेजसम्। उदरस्यात्मनः स्थैर्यमुपलभ्यान्वचिन्तयत्। अज्ञातं धृतराष्ट्रस्य यत्नेन महता ततः। सोदरं घातयामास गान्धारी दुःखमूर्छिता। ततो जज्ञे मांसपेशी लोहाष्ठीलेव संहता।' (महाभा.आदि. ११४. १०-१२)

405 'मा निमज्जीः स्वदोषेण महाप्सु त्वं हि भारत। मा बालानामशिष्टानाम-भिमंस्था मतिं प्रभो। मा कुलस्य क्षये घोरे कारणं त्वं भविष्यसि। बद्धं सेतुं को नु

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी-प्रकरण

गान्धारी ? [२]

पुनः कपटद्यूत और गान्धारी

हे गान्धारी ! एकबार के कपटद्यूत में युधिष्ठिर के पराजय के फलस्वरूप पाण्डवों के राजपाट-सहित सब कुछ छिन जाने पर; उसके भयंकर परिणामों पर विचार करके धृतराष्ट्र द्वारा उसके खारिज कर देने के बाद, दुर्योधन-चौकड़ी के द्वारा उकसाये गये धृतराष्ट्र ने जब पुनर्द्यूत के लिये पाण्डवों को बुलवा भेजा। तब द्रोण, सोमदत्त, विदुर और भीष्म आदि के मना करने पर भी जब धृतराष्ट्र फिर से जुआ कराने पर आमादा रहा, तब तुमने भी – हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! तुम अपने किये दुष्ट कर्म से आपत्तियों रूपी गहरे जल में मत डूबो। हे राजन्! तुम इन उद्दण्ड पुत्रों की बुद्धि के अनुसार मत चलो। तुम कुल के महानाश के 'कारण' मत बनो। कौन बंधे हुए बांध को तोड़ना चाहेगा और कौन शान्त हुई अग्नि को फिर से भड़काना चाहेगा? शान्त हुए पाण्डवों को कौन फिर से क्रुद्ध करना चाहेगा? अभी तुम मेरी बात नहीं मान रहे हो। किन्तु पीछे मैं तुम्हें स्मरण कराऊंगी कि मेरी बात न सुनने का यह परिणाम हुआ है। बूढ़े मनुष्य को कभी बालबुद्धि नहीं बन जाना चाहिये। इसलिये मेरे कहने से इस कुलकलङ्क दुर्योधन को त्याग दीजिये। तुमने यदि पुत्रमोह के कारण इसे नहीं त्यागा, तो फिर इसका फल कुरुकुल का नाश ही समझो[405]। हे गान्धारी! तुम्हारे द्वारा इस प्रकार चेतावनी देने पर भी जब धृतराष्ट्र ने 'भले ही कुल का नाश हो जाय, मैं इस (द्यूत) को रोक नहीं सकता। मेरे पुत्र जैसा चाहते हैं,

---

भिन्द्याद् धमेच्छान्तं च पावकम्। शमे स्थितान् को नु पार्थान् कोपयेद् भरतर्षभ। स्मरन्तं त्वामाजमीढ स्मारयिष्याम्यहं पुनः। न वै वृद्धो बालमतिर्भवेद् राजन् कथंचन। तस्मादयं मद्वचनात् त्यज्यतां कुलपांसनः। तथा ते न कृतं राजन् पुत्रस्नेहान्नराधिप। तस्य प्राप्तं फलं विद्धि कुलान्तकरणाय यत्' (महाभा.स. ७५.४...९)

406 'अथाब्रवीन्महाराजो गान्धारीं धर्मदर्शिनीम्। अन्तः कामं कुलस्यास्तु न

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

वैसा ही होवे[406]। यह कहकर तुम्हारी नेक सलाह पर ध्यान नहीं दिया, तो हे देवी! तुम्हें उस समय पुनर्द्यूत को न होने देने के लिये हरचंद कोशिश करनी चाहिये थी। तुम द्यूतभवन में जाकर शकुनि और युधिष्ठिर के बीच में जाकर बैठ जाती और अपने भाई शकुनि से कहती, कि क्यों तू दुर्योधन की दुष्टमति के अनुसार चल रहा है, मेरे जीते जी यह द्यूत नहीं हो सकता। तू पहले मुझे मार, फिर तू युधिष्ठिर से जुआ खेलना'। हे राजमाता! तुम्हारे इस प्रकार कठोर कदम उठाने पर, भीष्म, द्रोण, विदुर आदि भी तुम्हारे साथ होते और तब धृतराष्ट्र को हठात् पुनर्द्यूत रोकना पड़ता। हे गान्धारी! तुम चूक गई। यदि तुम ऐसा करती, तो युद्ध को रोकने में तुम्हारा पूरा सहयोग होता।

हे गान्धारी! सन्धि-प्रस्ताव लेकर कौरवसभा में आये श्रीकृष्ण के भाषण की उपेक्षा करने वाले दुर्योधन को समझाने के प्रसंग में फिर से तुमने धृतराष्ट्र को समझाया था। किन्तु वह पुत्रमोह के कारण नहीं माना था। ऐसे समय में सर्वनाश पर तुले पति के विरुद्ध तुम्हारी जैसी धर्मदर्शिनी महिला को सर्वनाश को रोकने के लिये कठोर उपाय करना चाहिये था।

गान्धारी ? [३]

सबकी अवहेलना करनेवाला दुर्योधन और गान्धारी

हे गान्धारी ! तुमने अनेक बार धृतराष्ट्र को चेताया, कि पुत्रमोह के कारण तुम अनीति के काम कर रहे हो। किन्तु तुममें भी वह पुत्रमोह ही था, जो तुम्हें पुत्र को सही

शक्नोमि निवारितुम्। यथेच्छन्ति तथैवास्तु, प्रत्यागच्छन्तु पाण्डवाः। पुनर्द्यूतं च कुर्वन्तु मामकाः पाण्डवैः सह (महाभा.स. ७५.११,१२)

407'धृतराष्ट्र उवाच – अवाग् गान्धारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः। ईर्षुर्दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः॥ गान्धार्युवाच – ऐश्वर्यकाम दुष्टात्मन् वृद्धानां शासनातिग।

मार्ग पर लाने में बाधक बन रहा था। तुमने कई बार दुर्योधन को समझाया। पहले जब संजय के कहने पर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को श्रीकृष्ण के पास जाने को कहा। तब दुर्योधन के वचन थे – 'यदि अर्जुन के साथ मित्रता के कारण श्रीकृष्ण सब लोकों को जला डालें, तब भी मैं श्रीकृष्ण के पास नहीं जाऊँगा। उस समय धृतराष्ट्र ने अति दुर्बुद्धि, ईर्ष्यालु, दुष्टात्मा, अभिमानी और बड़ों की सलाह का अतिक्रमण करने वाले दुर्योधन को समझाने को तुम्हें कहा था। तब तुमने – हे ऐश्वर्यकामी दुष्टात्मा और बड़ों के अनुशासन को न मानने वाले मूर्ख दुर्योधन ! तू ऐश्वर्य, अपने जीवन, पिता धृतराष्ट्र और मुझे त्यागकर अपने दुश्मनों की प्रसन्नता को बढ़ाता हुआ और मुझे शोकसागर में डुबाता हुआ जब भीमसैन के हाथों मारा जायेगा, तब अपने पिता के वचनों को याद करेगा[407]।

तत्पश्चात् सन्धिदूत बनकर आये श्रीकृष्ण के कौरवसभा में भाषण के बाद धृतराष्ट्र के द्वारा अपने अशिष्ट, धर्मार्थलोपी और अविनीत पुत्र दुर्योधन को समझाने हेतु जब तुम्हें बुलाया गया तब भी तुमने – ' हे दुर्योधन! तुम्हें तुम्हारे पिता, दादा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर ने जैसा कहा है, वैसा तू मान ले। जो मनुष्य अपने हितचिन्तकों, बुद्धिमानों और विद्याकुशल अनुभवी लोगों के अनुशासन को नहीं मानता, वह अपने शत्रुओं की प्रसन्नता का कारण बनता है। हे प्रिय! युद्ध में न तो कल्याण दिखता है, न ही

ऐश्वर्यजीविते हित्वा पितरं मां च बालिश। वर्धयन् दुर्हृदां प्रीतिं मां च शोकेन वर्धयन्। निहतो भीमसेनेन स्मर्तासि वचनं पितुः॥ (महाभा.उ. ६९.८-१०)

408 'दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम। भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद्वचः। सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने। प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः॥ न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम्। न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः॥ भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्लिकेन च। दत्तोऽशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद् भीतैररिन्दम॥ तस्य चैतत्प्रदानस्य फलमद्यानुपश्यसि। यद् भुङ्क्षे पृथिवीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम्॥ प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम। यदीच्छसि सहामात्यो

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

धर्म और अर्थ की उपलब्धि; तो सुख कहाँ से होगा!! इसलिये युद्ध में अपना चित्त मत लगा। भीष्म पितामह, तुम्हारे पिता और बाह्लीक ने पाण्डवों को उनका राज्यभाग इसीलिये दिया था, कि आपस में फूट न पड़े। उस निर्णय का ही यह फल है, कि तुम आज निर्बाध रूप से राज्यसुख का उपभोग कर रहे हो। अब यही उचित है कि तुम पाण्डवों को आधा राज्य लौटा दो। तुम्हारे और मित्रों के उपभोग के लिये तुम्हारा राज्य भाग पर्याप्त है। तुम हितैषियों के कहे अनुसार करते हुए कीर्त्ति का संचय करोगे। याद रखो, श्रीमान्, आत्मवशी, बुद्धिशाली और जितेन्द्रिय पाण्डवों से लड़ाई ठानना तुम्हें सुख से वञ्चित कर देगा। तेरह वर्ष तक पाण्डवों ने जो अपमान तिरस्कार सहा है, वही बहुत है। काम-क्रोध के कारण किये गये उस तिरस्कार को अब तुम शान्त कर दो। पाण्डवों के ऐश्वर्य को तुम जो दबाये रखना चाहते हो, वह सम्भव नहीं है। कर्ण और तुम्हारा भाई दु:शासन महाक्रोधी हैं। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न के क्रुद्ध हो जाने पर निश्चय ही सब प्रजाओं का अस्तित्व मिट जायेगा। हे पुत्र! तुम क्रोध के वशीभूत होकर कौरवों का नाश मत करो। तुम्हारे कारण यह पृथिवी (=पृथिवी के राजवंश) नष्ट न हो जावें[408]।

हे गान्धारी! तुम्हारे द्वारा बार-बार इतना समझाने पर भी दुर्योधन माना क्या? सर्वथा ही नहीं माना। ऐसी अवस्था में तुम्हें अपने दुर्मद पुत्र के सामने आमरण अनशन जैसा कठोर कदम उठाना चाहिये था जिससे 'कुरुकुल का नाश' और 'पृथिवी के राजवंशों का नाश' रुक सकता था। पर तुमने ऐसा नहीं किया।

भोक्तुमर्धं प्रदीयताम्। अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम्। सुहृदां वचने तिष्ठन् यशः प्राप्स्यसि भारत। श्रीमद्भिरात्मवद्भिस्तैर्बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः। पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात्।...। अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः। शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम्। न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि। सूतपुत्रो दृढक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते। भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनञ्जये।। धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी-प्रकरण

गान्धारी ? [४]

गान्धारी द्वारा पाण्डवों को शाप

हे गान्धारी ! महाविनाशक युद्ध के बाद जब पाण्डव और श्रीकृष्ण; धृतराष्ट्र के क्रोधावेग को झेलने के बाद तुम्हारे पास आये, तो तुमने पाण्डवों को शाप देना चाहा। तब व्यास मुनि ने कहा – 'हे गान्धारी! अठारह दिन तक यह संहारक युद्ध चला। तब प्रतिदिन प्रातः दुर्योधन तुम्हारे पास आकर शत्रुओं पर विजय पाने के लिये तुम्हारा आशीर्वाद मांगता था। तब प्रतिदिन अर्थात् अठारहों ही दिन तुम्हारे आशीर्वादरूप में यही वचन होते थे, कि 'यतो धर्मस्ततो जयः' = जिधर धर्म होता है उधर ही जीत होती है'। बताओ, तुम ऐसा कहती थी कि नहीं? तो तदनुसार पाण्डवों ने युद्ध में विजय प्राप्त की है। वास्तव में ही उनमें तुम्हारे पुत्र की अपेक्षा अधिक धर्म है। सो अपने धर्म का और अपनी आशीर्वाद वाली वाणी का स्मरण करके अब क्रोध को त्याग दो[409]।

हे गान्धारी ! तुम कुछ दिवस पहले की बात को भी भूल गई। श्रीकृष्ण-शान्तिदूत-सभा में तुमने दुर्योधन को समझाते हुए कहा था कि 'युद्ध से न कल्याण होता है, न धर्म-

---

स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम्। अमर्षवशमापन्नो मा कुरूंस्तात जीघनः एषा हि पृथिवी कृत्स्ना मा गमत् त्वत्कृते वधम्' (महाभा.उ. १३१.२०,३९...५०)

409'उक्तास्यष्टादशाहानि पुत्रेण जयमिच्छता। शिवमाशास्व मे मातर्युध्यमानस्य शत्रुभिः। सा तथा याच्यमाना त्वं काले काले जयैषिणा। उक्तवत्यसि गान्धारि 'यतो धर्मस्ततो जयः'। न चाप्यतीतां गान्धारि वाचं ते वितथामहम्। स्मरामि भाषमाणायास्तथा प्राणिहिता ह्यसि। विग्रहे तुमुले राज्ञां गत्वा पारमसंशयम्। जितं पाण्डुसुतैर्युद्धे नूनं धर्मस्ततोऽधिकः॥ त्वं च धर्मं परिस्मृत्य वाचं चोक्तां मनस्विनि। कोपं संयच्छ गान्धारि मैवं भूः सत्यवादिनि (महाभा.स्त्री. १४.८...१३)

410'किं तु कर्माऽकरोद् भीमो वासुदेवस्य पश्यतः। दुर्योधनं समाहूय गदायुद्धे

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी-प्रकरण

अर्थ की सिद्धि और न ही सुख की प्राप्ति। अतः तुम युद्ध की बात मन में मत लाओ'। और अब युद्ध छिड़ गया। तब जब वह अनाज्ञाकारी दुर्योधन प्रतिदिन तुम्हारे पास विजयहेतु आशीर्वाद मांगने आता था, तो तुम्हारा मात्र यह कहना कि 'जिधर धर्म होगा उसकी ही जीत होगी' पर्याप्त नहीं था। जब तुम युद्ध के भयंकर परिणामों से परिचित थी, तो पहले दिन ही, जब दुर्योधन आशीर्वाद मांगने आया था, तभी उसे कहती कि आशीर्वाद कैसा? युद्ध से कुरुवंश नष्ट हो जायेगा, पृथिवी के अनेक कुल समाप्त हो जायेंगे, इसलिये तुम युद्ध मत करो' ऐसा कहने पर भी यदि दुर्योधन युद्ध करने पर ही उतारू दिखता तो तुम्हें हे गान्धारी! कुरुकुल के और पृथ्वी के राजवंशों के सम्भाव्य नाश को रोकने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगानी चाहिये थी। तुम युद्धोन्मादी अपने पुत्र से कहती-'हे मूढ़! पहले तू मुझे मार, फिर तू युद्ध के लिये जा। मैं जीते जी कौरवों की और अन्य वीरों की हत्या नहीं देख सकती'। यह कहकर वास्तव में मरने को तैयार हो जाती और भारी हंगामा खड़ा कर देती। तब धृतराष्ट्र आदि भी युद्ध रुकवाने में तुम्हारे साथ होते। पर तुमने ऐसा नहीं किया। और नहीं तो युद्ध के चौथे दिन जब लाखों वीरों की हत्या केसाथ तुम्हारे आठ पुत्र (द्रष्टव्य-पृ. २६१) भी मारे गये। तब तो तुम्हें पांचवें दिन प्रातः अपना जीवन समाप्त करने का उपाय काम में लेना था। कम से कम, युद्ध के आठवें दिन जब तुम्हारे सत्रह पुत्र और मौत के शिकार बन गये तब तो चण्डी का रूप धारण करके अथवा निरन्तर महा करुण रोदन करके युद्ध को रोकने का प्रयत्न करना चाहिये था। पर तुमने ऐसा नहीं किया। जब सब मारे गये तब करुणरोदन और विलाप करने का तथा पाण्डवों को शाप देने का कोई अर्थ नहीं था। शाप तो तुम यदि युद्ध से पहले दुर्योधन को ही दे देती, तो अन्य पुत्रों की मौत न होती!!

महामनाः। अधो नाभ्याः प्रहृतवान् तन्मे कोपमवर्धयत्। कथं नु धर्मं धर्मज्ञैः समुद्दिष्टं महात्मभिः। त्यजेयुराहवे शूराः प्राणहेतोः कथंचन' (महाभा.स्त्री. १४.१९...२१)

411 '(भीम उवाच) अधर्मो यदि वा धर्मस्त्रासात् तत्र मया कृतः।...। अधर्मेण

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी–प्रकरण

गान्धारी ? [५]

भीम द्वारा दुर्योधन के जङ्घाभंग पर गान्धारी द्वारा धर्म की दुहाई

हे गान्धारी ! दुर्योधन की जङ्घा तोड़कर हत्या करने वाले भीमसेन को कोसते हुए तुमने धर्म की दुहाई देकर कहा था–'श्रीकृष्ण के सामने भीम ने दुर्योधन की नाभि के नीचे प्रहार किया, इसी से मेरा क्रोध बढ़ गया है। युद्ध में धार्मिक लोग अपने प्राणों की रक्षा के लिये भी धर्म को त्यागते नहीं है। सो भीम ने यह अधार्मिक कार्य किया है[410]।

तुम्हारे द्वारा ऐसा कहने पर भीमसेन का उत्तर था –'(हे गान्धारी!) यदि मेरे द्वारा जङ्घाभङ्ग करना अधर्म था, तो अधर्म का कार्य तो पहले तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने किया था, जो कि अधर्म के द्वारा उसने युधिष्ठिर को द्यूत में हराया और हमारा सदा तिरस्कार किया। राजपुत्री द्रौपदी जो रजस्वला थी और मात्र एक वस्त्र धारण किये हुई थी, उसका भरी सभा में अपमान किया गया और उसे तेरे पुत्रों ने जो कुछ दुर्वचन कहे थे, वे सब आपको ज्ञात ही होंगे। और तब तो अधर्म की हद ही हो गई थी, जब दुर्योधन ने सभा के बीच में ही द्रौपदी को अपनी बांई जङ्घा नंगी करके दिखाई थी। उस दुराचारी दुर्योधन को तो हमें उसी समय मार देना चाहिये था। पर हम उस समय धर्मराज युधिष्ठिर के अनुशासन में थे। तुम्हारे पुत्र द्वारा शत्रुता को भड़काने का यह सबसे बड़ा कारण था। उसके बाद भी हमें बारह-तेरह वर्ष तक जङ्गलों में रखड़वाया। इसलिये मैंने उन सब अधर्मों का बदला लेने के लिये दुर्योधन की जङ्घा तोड़ी है[411]।

जितः पूर्वं तेन चापि युधिष्ठिरः। निकृताश्च सदैव स्म ततो विषममाचरम्।...। राजपुत्रीं च पाञ्चालीमेकवस्त्रां रजस्वलाम्। भवत्या विदितं सर्वमुक्तवान् यत् सुतस्तव। तथाप्यप्रियमस्माकं पुत्रस्ते समुपाचरत्। द्रौपद्या यत् सभामध्ये सव्यमूरुमदर्शयत्। तदैव वध्यः सोऽस्माकं दुराचारश्च ते सुतः। धर्मराजाज्ञया चैव स्थिताः स्म समये तदा। वैरमुद्दीपितं राज्ञि पुत्रेण तव तन्महत्। क्लेशिताश्च वने नित्यं तत एतत् कृतं मया' (महाभा.स्त्री. १५.२...१०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी-प्रकरण

हे गान्धारी ! भीम के द्वारा तो दुर्योधन की अधार्मिकता जो उस समय गिनाई गई वह अल्पमात्रा में ही गिनाई गई थी। तुम तो महापतिव्रता होने के कारण मनस्विनी थी, सो तुम्हें ज्ञात ही होगा,कि तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने धोखे से भीमसेन को दो-दो बार भोजन में हलाहल जहर देकर मारने का अधर्म किया था। प्रमाणकोटि में विषप्रभाव से बेहोश किये गये भीम को तुम्हारे पुत्र ने लताओं से जकड़ बांधकर मरने को गंगा में ढकेलने का अधर्म किया था (द्रष्टव्य-पृ.७८)। फिर वनवास काट रहे पाण्डवों को चिढ़ाने के लिये; तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अपनी चौकड़ी सहित और राजघराने की रानियों और भाईयों एवं मन्त्रियों के साथ द्वैतवन गया था। (द्रष्टव्य-पृ. १५१,१५२) वह अधर्म था कि नहीं? फिर पुनर्द्यूत की शर्त के अनुसार तेरह वर्ष की वनवास-अज्ञातवास रूपी सजा काट चुके पाण्डवों को उनका राज्य लौटाने को सर्वथा ही निषेध करना अधर्म था कि नहीं? जब छः महारथियों ने मिलकर एक अभिमन्यु को मारा था वह, अधर्म था कि नहीं?

फिर तुम्हारा भीम से यह कहना कि तुमने सौ पुत्रों को मार दिया। कम से कम एक को तो छोड़ देते। जो हमारे बुढ़ापे की लाठी होती। यदि तुम ऐसा करते तो मुझे इतना दुःख नहीं होता[412]।

हे गान्धारी! भीम ने सोते हुए या बैठे हुए तुम्हारे पुत्रों को नहीं मारा। वे पाण्डवों से और उनकी सेना से युद्ध करने आये थे। उन्होंने भी पाण्डवसेना के हजारों वीरों को

412'वृद्धस्यास्य शतं पुत्रान् निघ्नंस्त्वमपराजितः। कस्मान्नाशेषयः कंचिद् येनाल्पमपराधितम्। सन्तानमावयोस्तात वृद्धयोर्हृतराज्ययोः। कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता। शेषे ह्यवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि। न मे दुःखं भवेदेतद् यदि त्वं धर्ममाचरेः' (महाभा.स्त्री. १५.२१-२३)

413'ततः कोपपरीताङ्गी पुत्रशोकपरिप्लुता। जगाम शौरिं दोषेण गान्धारी व्यथितेन्द्रिया॥ गान्धार्युवाच-पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च दग्धाः कृष्ण परस्परम्। उपेक्षिता विनश्यन्तस् त्वया कस्माज्जनार्दन॥ शक्तेन बहुभृत्येन विपुले तिष्ठता बले। उभयत्र

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

मौत के घाट उतारा था। सो भीम ने अपनी सेना का संहार करने वाले तेरे पुत्रों को मारा था। हाँ, विकर्ण जब लड़ते-लड़ते भीम के हाथों मारा गया था, तब भीम को पश्चात्ताप जरूर हुआ था और उसने युद्ध कर्म को धिकारा था (द्रष्टव्य-पृ. ३२)। क्योंकि विकर्ण ने द्यूतसभा में न्यायोचित बात कहकर धर्म का पक्ष लिया था। किं च यदि तुम्हारे कुछ पुत्र भी 'युयुत्सु' के समान दुर्योधन वाले अधर्म पक्ष का त्याग करके पाण्डवों के धर्मपक्ष में आ जाते, तो वे भी युयुत्सु के समान जीवित रहते। रही बात बुढ़ापे के सहारे की। सो महाराज युधिष्ठिर ने और तदनुसार कुन्ती समेत सभी पाण्डवों ने बाद में तुम दोनों की इतनी सेवा की थी और तुम्हें सुख पहुँचाया था, कि जितना तुम्हारे औरस पुत्र भी नहीं पहुँचा सके थे (द्रष्टव्य-पृ. २६०)।

गान्धारी ? [६]

पुत्रादि-वध से क्रुद्धा गान्धारी द्वारा श्रीकृष्ण को शाप

हे गान्धारी ! अपने मरे हुए पुत्रों के शवों को तथा अन्य कर्ण, द्रोण, भीष्म, अभिमन्यु, शल्य, भगदत्त तथा शकुनि आदि के शवों को देखकर तुमने करुण विलाप किया और सारा दोष कृष्ण के मत्थे मढ़कर उन्हें शाप देने के लिये तुमने कहा – 'हे कृष्ण! पाण्डव और कौरव आपस में युद्धाग्नि में जल मरे। नष्ट होते हुए उनकी तुमने कैसे उपेक्षा की? तुम सशक्त थे, सेना वाले थे, बल में अद्वितीय थे, और शस्त्र तथा शास्त्र दोनों की दृष्टि से समर्थ थे। फिर भी तुमने चाहकर ही कौरवों के नाश की उपेक्षा की है। सो तुम अब उसका फल चखो। पति की सेवा से मैंने जो भी तप प्राप्त किया है, उस अलभ्य तप= प्रभाव से मैं तुम्हें शाप दूंगी। तुम भी अपने ज्ञातिजनों के वध के निमित्त

समर्थेन श्रुतवाक्येन चैव ह॥ इच्छतोपेक्षितो नाशः कुरूणां मधुसूदन। यस्मात् त्वया महाबाहो फलं तस्मादवाप्नुहि॥ पतिशुश्रूषया यन्मे तपः किंचिदुपार्जितम्। तेन त्वां दुरवापेन शप्स्ये चक्रगदाधर॥ यस्मात् परस्परं घ्नन्तो ज्ञातयः कुरुपाण्डवाः। उपेक्षितास्ते

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

गान्धारी-प्रकरण

बनोगे। छत्तीसवें वर्ष में अपने ज्ञाति-जनों, मन्त्रियों और पुत्रों के मारे जाने पर तुम वन में अकेले विचरोगे[413]।

हे गान्धारी ! तुम्हारे द्वारा इस प्रकार शाप देने पर श्रीकृष्ण ने ठीक ही कहा था– हे गान्धारी! उठो और शोक मत करो। तुम्हारे ही अपराध से कौरव मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। जो कि तुम अपने दुरात्मा, ईर्ष्यालु, अभिमानी, दुष्कर्मा, क्रूर, वैर-परायण और बुजुर्गों के अनुशासन को न मानने वाले पुत्र दुर्योधन के कर्मों को अच्छा मान रही हो और अपने दोष को मेरे ऊपर थोपना चाह रही हो[414]। रही बात यादवों के नाश की, सो वे आपस के सङ्घर्ष के कारण नष्ट होंगे[415]।

काल ने कहा – हे गान्धारी! वास्तव में ही कुरुकुल के और अन्य वीरों के नाश का मूल कारण तुम्हारा पुत्र दुर्योधन ही था। तुम उसे बुरा भला कहती थी और चेताती भी थी, तथापि पुत्रमोह के कारण तुम उससे मनवाने के लिये कठोर कदम उठाने में झिझकती रही। तुमने सभा में धृतराष्ट्र से कहा था कि 'इस कुलपांसन दुर्योधन को त्याग दो' । किन्तु स्वयं तुम उसे नहीं त्याग सकी। यदि तुम स्वयं 'आज से तू मेरा पुत्र नहीं है,

---

गोविन्द तस्माज्ज्ञातीन् वधिष्यसि। त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन। हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः' (महाभा.स्त्री. २५,३८–४४)

414 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारि मा च शोके मनः कृथाः। तवैव ह्यपराधेन कुरवो निधनं गताः। यत्त्वं पुत्रं दुरात्मानमीर्षुमत्यन्तमानिनम्। दुर्योधनं पुरस्कृत्य दुष्कृतं साधु मन्यसे। निष्ठुरं वैरपुरुषं वृद्धानां शासनातिगम्। कथमात्मकृतं दोषं मय्याधातुमिहेच्छसि। (महाभा.स्त्री. २६.१–३)

415 'परस्परकृतं नाशमतः प्राप्स्यन्ति यादवाः (महाभा.स्त्री. २५.५०)

416 'ततः पितॄणां भ्रातॄणां पौत्राणां स्वजनस्य च। पुत्राणामार्यकाणां च पतीनां च कुरुस्त्रियः। उदकं चक्रिरे सर्वा रुदत्यो भृशदुःखिताः। सुहृदां चापि धर्मज्ञाः प्रचक्रुः सलिलक्रियाः।... ततः कुन्ती महाराज सहसा शोककर्शिता। रुदन्ती मन्दया वाचा

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

मेरा तुझसे कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा' ऐसा कहकर वास्तव में ही उससे सब तरह का नाता तोड़ लेती, तो सम्भवतः वह हठी दुर्योधन मां की ममता को ध्यान में रखकर सीधे रास्ते पर आ जाता। किं च यदि तुम्हारी पतिपरायणता और पतिशुश्रूषा के तपः का इतना प्रभाव था, तो तुम अब जो श्रीकृष्ण को शाप दे रही थी। वह शाप तुम कुलांगार दुर्योधन को कौरवसभा में अथवा युद्धारम्भ से पहले दे देती, तो यह महाविनाश नहीं होता।

काल की इन विश्लेषणात्मक बातों को सुन कर गान्धारी सुन्न हो गई। तब काल ने माता कुन्ती को पुकारा –

कुन्ती ?

हे मातेश्वरी कुन्ती! निश्चय ही तुम आदर्श, पतिसेवा-परायणा, पतिहित-चिन्तिका, सन्तान-सुसंस्कारदात्री और वीर-माता हो। किन्तु महाविनाशक महाभारत युद्ध के मूल में परोक्ष रूप से तुम्हारा भी हाथ है। जब दोनों पक्षों के लाखों-लाख वीर अकाल मृत्यु के ग्रास बन गये। तब उन मृतकों की आत्माओं की शान्ति के लिये तथाकथित जलाञ्जलि देने के लिये धृतराष्ट्र के साथ राजघराने की समस्त स्त्रियों और पाण्डवों सहित तुम भी गङ्गातट पर पहुँची। तब स्त्रियों ने अपने मृत पिताओं, भाइयों, पौत्रों, पुत्रों, पतियों तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों के लिये करुणरोदन के साथ जलाञ्जलि दे दी। तभी हे कुन्ती! तुमने अचानक शोकविह्वल होकर रोते हुए अपने पुत्रों (=पाण्डवों)

पुत्रान् वचनमब्रवीत्। यः स वीरो महेष्वासो रथयूथपयूथपः। अर्जुनेन जितः संख्ये वीरलक्षणलक्षितः। यं सूतपुत्रं मन्यध्वं राधेयमिति पाण्डवाः।... कर्णस्य सत्यसन्धस्य संग्रामेष्वपलायिनः। कुरुध्वमुदकं तस्य भ्रातुरक्लिष्टकर्मणः। स हि वः पूर्वजो भ्राता भास्करान्मय्यजायत। श्रुत्वा तु पाण्डवाः सर्वे मातुर्वचनमप्रियम्। कर्णमेवानुशोचन्तो भूयः क्लान्ततरा भवन्। ततः स पुरुषव्याघ्रः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। उवाच मातरं वीरो निःश्वसन्निव पन्नगः। यस्येषुपातमासाद्य नान्यस्तिष्ठेत् धनञ्जयात्। कथं पुत्रो भवत्या

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

को धीरे से कहा-'यह जो महाधनुर्धारी महारथी वीर था जिसे अर्जुन ने युद्ध में जीता था, जिसे तुम सूत अधिरथ और राधा का पुत्र मानते रहे हो, उस तुम्हारे भाई कर्ण के लिये भी तुम जलाञ्जलि दो। वह तुम्हारा बड़ा भाई है, उसे मैंने जन्म दिया था। उसे मैंने सूर्य से प्राप्त किया था, तब तुम्हारे उस कष्टकारक वचन को सुनकर कर्ण के लिये शोक करते हुए पाण्डव और अधिक दुःखी हो गये। तब युधिष्ठिर ने सन्तप्त होते हुए तुम्हें कहा था- हे माता! जिसका सामना, अर्जुन को छोड़कर अन्य कोई नहीं कर पाता था और जो आपका दिव्यगर्भ पुत्र था, उसके जन्म की बात को-कर्ण मेरा पुत्र है, इस बात को वैसे ही क्यों छिपाकर रखा था, जैसे वस्त्र की ओट में अग्नि को? वह हमारा अग्रज भ्राता था। आपने उस अद्भुत पराक्रमी पुत्र को कैसे जन्म दिया था। आपने इस बात को अब तक हमसे छिपाकर रखा है, इससे हम मानो मर ही गये हैं। अभिमन्यु के, द्रौपदी-पुत्रों के, और पञ्चालों के मरण से तथा कौरवों के नाश से हमें जितना दुःख हुआ है, उससे सौगुणा दुःख हमें भाई कर्ण के मारे जाने से हुआ है। हाय! हमने हमारे भाई को मार डाला। मैं कामना करता हूँ कि आगे से कोई भी स्त्री अपने मन में कोई भी बात छिपा के न रख सके[416]।

हे कुन्ती ! आपने अपने विवाह से पूर्व ही कुन्तिभोज के घर में रहते हुए कर्ण को जन्म दिया था। तब उस नवजात बालक कर्ण को देखकर तुमने विचार किया कि विवाह

स देवगर्भः पुराभवत्।... स नः प्रथमजो भ्राता सर्वशस्त्रभृतां वरः। असूत तं भवत्यग्रे कथमद्भुतविक्रमम्। अहो ! भवत्या मन्त्रस्य गूहनेन वयं हताः। निधनेन हि कर्णस्य पीडितास्तु सबान्धवाः। अभिमन्योर्विनाशेन द्रौपदेयवधेन च। पञ्चालानां विनाशेन कुरूणां पतनेन च। ततः शतगुणं दुःखमिदं मामस्पृशद् भृशम्॥... अतो मनसि यद् गुह्यं स्त्रीणां तन्न भविष्यति' (महाभा. स्त्री २७.२...२९)

417 'दृष्ट्वा कुमारं जातं सा वार्ष्णेयी दीनमानसा। एकाग्रं चिन्तयामास किं कृत्वा सुकृतं भवेत्। गूहमानापचारं सा बन्धुपक्षभयात्तदा। उत्ससर्ज कुमारं तं जले कुन्ती

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

से पूर्व कौमार्यावस्था में जन्मे इस शिशु के कारण मेरे पिता आदि की बदनामी होगी, सो आपने छिपकर उस महाबलशाली बालक को सुरक्षापूर्वक नदी के जल में छोड़ दिया। जिसे सूत अधिरथ ने और उसकी पत्नी राधा ने अपने पुत्र के रूप में अपनाया, पालापोसा और बड़ा किया[417]।

हे कुन्ती! आपको बदनामी के भय से बालक को इस प्रकार त्यागना नहीं चाहिये था। आप अपने पिता-माता से कह सकती थी, कि मैंने किसी पुरुष का संग नहीं किया है। प्रत्युत महर्षि दुर्वासाजी ने मुझे मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मुझे एक ऐसा मन्त्र (=ऐसी विद्या) बताई थी, कि आपद्धर्म की दृष्टि से जब कभी सन्तान की कामना हो, तो बिना किसी पुरुष के साथ सम्पर्क के तुम देवों (=दिव्य पदार्थों) से गर्भ धारण करके पुत्र को जन्म दे सकोगी[418]। सो मैंने निर्जन स्थान में अश्वत्थ वृक्ष के नवपल्लवों में छनकर आती हुई सूर्य-किरणों में स्थित रेतस् को विशेष विधि से गर्भाशय में स्थापित किया था, जिसके फलस्वरूप यह सूर्यसम तेजस्वी बालक जन्मा है। दुर्वासाजी ने बताया था कि वेद में सूर्य की विशेषवर्ण वाली 'सूर्यश्वित्' किरणों में तथा अन्य दिव्य पदार्थों में पुष्कल मात्रा में रेतस् (=वीर्य) होता है[419]। और इस परावैज्ञानिक विधि से गर्भधारण होता है तथा प्रसव के पश्चात् पुनरपि कन्यात्व (=अक्षतयोनित्व) प्राप्त हो जाता है। सो मैं इस

महाबलम्॥ तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधाभर्त्ता महायशाः। पुत्रत्वे कल्पयामास सभार्यः सूतनन्दनः (महाभा.आदि. ११०.२१-२३)

418 'निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः। तमुग्रं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयत्॥ तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्ववेक्षया। यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि। तस्य तस्य प्रसादेन पुत्रस्तव भविष्यति। (महाभा. ११०.५-७)

419 'पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः' (ऋ. १०.९४.५) 'कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः' (अ. १९.५३.१) 'यदेनं द्यौर्जनयत् सुरेताः' (ऋ. १०.४५.८)। 'सोमो रेतोधास्तस्याहं देवयज्यया सुरेतोधा रेतो धिषीय' (काठ. ५.४)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

बालक को जन्म देने के पश्चात् भी फिर से कन्या ही हूँ[420]। महर्षि दुर्वासा ने मुझे यह भी बताया था कि 'मन्त्र से देव (=दिव्य पदार्थ) का 'आवाहन' का यहाँ धातुलभ्य अर्थ भलीभांति प्राप्त करना ही है[421] बुलाना नहीं।

हे कुन्ती ! तुमने विवाह के पश्चात् भी तो तुम्हारे पति महाराज पाण्डु के द्वारा सन्तानोत्पत्ति में अपनी असमर्थता बताने पर, इस पराविज्ञान पद्धति से तीन पुत्रों को जन्म दिया था। पाण्डु के द्वारा जब आपको यह कहा गया था, कि तुम किसी मेरे समान गुणों वाले अथवा मेरे से उत्तम गुणों वाले अन्य पुरुष के सहवास से पुत्र प्राप्त कर लो[422]। तब तुमने पाण्डु से कहा था कि मैं तुम्हारे सिवाय किसी अन्य पुरुष का मन से भी सङ्ग नहीं कर सकती[423]। तब तुमने दुर्वासा से प्राप्त विशेषमन्त्र (=विद्या) की बात पाण्डु को बताई कि मैं देव (=दिव्य पदार्थ) से गर्भधारण करके पुत्र को जन्म दे सकती हूँ। सो इस समय उस पद्धति को आपकी आज्ञा से अपनाती हूँ[423A]। सो तुमने शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि के चन्द्रमा (+घर्म) की किरणों में स्थित रेतस् को निर्जन स्थान में विशेष पद्धति से धारण करके समय आने पर युधिष्ठिर को जन्म दिया। फिर द्वादशी के

---

420 'प्रादाच्च तस्यै कन्यात्वं पुनः स परमद्युतिः' (महाभा.आदि. ११०.२०)

421 'आवाहनम्। आङ्+वह प्रापणे+ण्युट्=आवाहनम्। आ समन्तात् वाहनम्=प्रापणम्=पूर्णा उपलब्धिः।

422 'तस्मात् प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात् स्वयम्। सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्ध्यपत्यं यशस्विनि' (महाभा. ११९.३७)

423 'न ह्यहं मनसाऽप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम्। त्वत्तः प्रतिविशिष्टश्च कोऽन्योऽस्ति भुवि मानवः' (महाभा.आदि. १२०.५)

423A 'मन्त्रं त्विमं च मे प्रादादब्रवीच्चैव मामिदम्। यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि। तस्य तस्य प्रसादात्ते राज्ञि पुत्रो भविष्यति।... ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तस्य कालोऽयमागतः। (महाभा.आदि.१२१.१२...१५)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे; तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

चन्द्रमा (+वायु) की किरणों में स्थित रेतस् को धारण किया उस समय स्वाति (=निष्ट्या) नक्षत्र भी था जिसका देवता (=दिव्य तत्त्व) भी वायु था। फलस्वरूप वायुसम वेगशाली बली भीमसेन को जन्म दिया। तत्पश्चात् ज्येष्ठा नक्षत्र की रश्मियों में वर्त्तमान रेतस् को जो इन्द्र नामक दिव्य तत्त्व से युक्त था, उसको धारण करके समय आने पर अर्जुन को जन्म दिया। तदनन्तर पाण्डु के कहने पर तुमने यह 'दिव्यपदार्थ-स्थित रेतस् को धारण करके पुत्र प्राप्त करने की विद्या' माद्री रानी को भी दी। उसने नक्षत्रयुगल अश्वियों की रश्मियों में स्थित मनोरम रेतस् को धारण किया और यथासमय अति मनोहर नकुल और सहदेव इन युगल भाइयों को जन्म दिया[424]।

हे कुन्ती! तुम अपने माता-पिता आदि को महर्षि दुर्वासा द्वारा प्रदत्त मन्त्र (=विद्या) की पुष्टि में उन्हीं के द्वारा बताये गये प्रमाणों के सन्दर्भ में बता सकती थी, कि देवताओं (=दिव्य पदार्थों) से पुत्र-प्राप्ति की यह प्रक्रिया वही है, जो सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि के समय हुई थी। वेद में प्राणियों=शरीरधारियों का पिता द्यौः=द्युलोकस्थ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पर्जन्य आदि को कहा गया है और पृथिवी को माता कहा गया है[425]।

---

[424] 'दशम्या देवता धर्मः (सं.वि.नाम.)। द्वादश्या देवता वायुः (सं.वि.नाम.) 'वायुर्नक्षत्रमभ्येति निष्ट्याम् (=स्वातीम्)। (तैब्रा. ३.१.१.१०)। 'इन्द्रो ज्येष्ठामनु नक्षत्रमेति' (तैब्रा. ३.१.२.१)। 'तदश्विनाश्वयुजोपयाताम्' (तैब्रा. ३.१.२.१०) 'ततः कुन्तीं पुनः पाण्डुर्विविक्त इदमब्रवीत्।... सा त्वं माद्रीं प्लवेनैव तारयैनामनिन्दिते। अपत्यसंविभागेन परां कीर्तिमवाप्नुहि। एवमुक्त्वाब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिन्तय दैवतम्।... ततो माद्री विचार्यैवं जगाम मनसाश्विनौ। तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ' (महाभा.आदि. १२३.१,१४-१५)

[425] 'द्यौर्वः पिता पृथिवी माता' (ऋ. १.१९१.६)। 'द्यौष्पितः पृथिवि मातः' (ऋ. ६.५१.५) 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु' (अ. १२.१.१२)। 'त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्याः' (अ. १२.१.१५)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

सर्गारम्भ में पृथिवी के विशिष्ट गर्त्तों में, उन गर्त्तों की भित्ति से स्रवित होने वाला विशिष्ट प्रकार के लोहितरंग का द्रव ही रजः था और सूर्य-किरणों में, चन्द्र-किरणों में अथवा अश्विनी, रोहिणी, ज्येष्ठा, स्वाति आदि नक्षत्रों की रश्मियों में जो विशेष तत्त्व था वही रेतस् (=वीर्य) था। उन रजः और रेतः का संयोग उन सुरक्षित गर्त्तों में होने पर, वह क्रमशः कलिल, घन, पिण्ड आदि अवस्था में विकसित होते हुए पूर्ण अण्डाकृति शरीर बन जाता था, उसके पूर्ण विकसित होने पर उस अण्डाकार पिण्ड के फट जाने पर प्राणी= शरीरधारी आत्मा उससे बाहर आ जाता था[426]।

हे कुन्ती! इस प्रकार तुम माता-पिता को सत्य बात बताने का साहस करती और उस बालक को नहीं त्यागती, तो वह सूतपुत्र नहीं कहलाता। तुम उसे और अधिक सुसंस्कारों से सम्पन्न महामानव बना सकती थी। तब उसमें हीनभावनाग्रसित ईर्ष्या, द्वेष, प्रमाद=(बुद्धि की अनवधानता) तथा अनार्यत्व के दुर्गुण कभी न आते।

खैर, तुमने उस समय कर्ण को जन्म देने की बात को प्रकट नहीं किया। किन्तु जब वन में निवास करते समय महाराज पाण्डु ने पुत्रप्राप्ति की अदम्य लालसा से तुम्हें पुत्र प्राप्ति के लिये अन्य पुरुष से सहवास करने को कहा था और तुमने उसका निषेध करते हुए दुर्वासाप्रदत्त देव (=दिव्य पदार्थ) से पुत्रप्राप्ति की विद्या की चर्चा की थी और कहा था, कि उस विद्या से पुत्रप्राप्ति की प्रक्रिया को आजमाने का समय आ गया है[427]। सो कुन्ती! उस समय तुम उसको आजमाने का समय आ गया है' ऐसा न कहकर; यह

---

[426] 'द्रष्टव्य- 'प्रभातवेला' (गुरुदत्त) पृष्ठ ६,१० तथा पृष्ठ २५-२६।

[427] 'इत्युक्ताऽहं तदानेन पितृवेश्मनि भारत।... ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तस्य कालोयमागतः। अनुज्ञाता त्वया देवमाह्वयेयमहं नृप। तेन मन्त्रेण राजर्षे यथा स्यान्नौ प्रजा हिता' (महाभा.आदि. १२१.१४,१५)

[428] 'कृतास्त्रान् धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारत। दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद् राजन्

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कहती, कि मैंने उस पुत्रप्राप्ति की विशिष्ट विद्या का कौमार्यावस्था में सफल परीक्षण किया था और एक बालक कर्ण को जन्म दिया था। इस बात को मैंने उस समय तो (व्यर्थ की) बदनामी के भय से प्रकट नहीं किया था, पर आज प्रकट कर रही हूँ। मैं देख रही हूँ, कि आपको मेरे द्वारा पुत्र-जन्म की इतनी उत्कट अभिलाषा है, कि तदर्थ आप मुझे पर पुरुष से सहवास की भी आज्ञा दे रहे हैं । तो हे स्वामिन्! मैंने जो पहले कौमार्यावस्था में देव=सूर्य=सूर्य में स्थित= 'सूर्यश्वित्' किरणों में स्थित पुष्कलरेतस् को गर्भाशय में स्थापित करके एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया था, उसको आप अनुचित नहीं मानेंगे। और आज उसी पराविद्या से देवता (=दिव्य पदार्थ) स्थित रेतस् के धारण से अन्य पुत्र को प्राप्त करूँगी'। ऐसा कहने पर महाराज पाण्डु निश्चय ही प्रसन्न होते और बालक कर्ण को ढूँढकर उसे पांच पाण्डवों का अग्रज बनाते और अन्य पांच पाण्डवों के समान कर्ण को भी शतशृङ्ग निवासी ऋषि मुनियों से उत्तमोत्तम संस्कार और वैदिकाध्ययन की प्राप्ति होती। ऐसा होने पर दुर्योधन चौकड़ी में जो कर्ण का समावेश होना था, वह न होता। और फलतः कर्ण के आश्रय के कारण दुर्योधन को जो युद्धोन्माद चढ़ा रहता था, वह न होता ।

हे कुन्ती ! तुमने तब भी कर्ण के स्वपुत्रत्व को प्रकट नहीं किया, चलो कोई बात नहीं। परन्तु जब कौरव-पाण्डवों के शस्त्रास्त्र-विद्या के प्रदर्शन की वेला आई, तब तुम्हारे पास एक और अवसर आया था इस बात को प्रकट करने का।

'द्रोणाचार्य ने कौरवों और पाण्डवों को शस्त्रास्त्र-विद्याओं में निष्णात हुआ

धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्' कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः। गाङ्गेयस्य च सान्निध्ये व्यासस्य विदुरस्य च। राजन् सम्प्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम। ते दर्शयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव। ततोऽब्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनान्तरात्मना। क्षत्तर्यद् गुरुराचार्यो ब्रवीति कुरु तत् तथा। ततो राजानमामन्त्र्य निर्गतो विदुरो बहिः। भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम्। तस्यां भूमौ बलिं चक्रे तिथौ नक्षत्रपूजिते। रङ्गभूमौ सुविपुलं

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

देखकर कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, भीष्म, व्यास मुनि और विदुर की उपस्थिति में राजा धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन्! आपकी अनुमति हो, तो ये राजकुमार अपनी शस्त्रास्त्र-शिक्षा का प्रदर्शन करें। तब धृतराष्ट्र के आदेशानुसार विदुर द्रोणाचार्य को साथ ले गये। द्रोणाचार्य ने प्रदर्शन-योग्य भूमि की माप चोखकर भूमि संस्कार करवाया और तब रङ्गभूमि में शिल्पियों ने विभिन्न प्रेक्षागार (=दर्शकदीर्घाएँ) बनाये[428]।

तब उन राजकुमारों ने अनेक अस्त्रविद्या के अद्भुत कौशल दिखाये। कुछ राजकुमारों ने रथारोहण, घुड़सवारी, गजसवारी तथा द्वन्द्व युद्ध करते हुए अस्त्रकौशल का प्रदर्शन किया। कुछ ने तलवारबाजी में निपुणता दिखाई। तब भीमसेन और दुर्योधन गदायुद्ध के लिये मैदान में उतरे। राजकुमारों के कौशल-प्रदर्शन का विवरण धृतराष्ट्र को विदुर बताते जाते थे और गान्धारी को कुन्ती। इस बीच जब भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध चरम सीमा पर पहुँच गया तब रक्तपात के भय से द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा के द्वारा दोनों को गदायुद्ध से अलग करवाया। अन्त में द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र से अधिक

शास्त्रदृष्टं यथाविधि। प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः' (महाभा. आदि. १३१.१...११)

429 'चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम्। ते स्म लक्ष्याणि बिभिदुर्बाणैर्नामाङ्कशोभितैः। विविधैर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिर्द्रुतम्। कृत्वा धनुषि ते मार्गान् रथचर्यासु चासकृत्। गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलाः। गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः। त्सरुमार्गान् यथोद्दिष्टान् चेरुः सर्वासु भूमिषु॥... अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ। अवतीर्णौ गदाहस्तावेकशृङ्गाविवाचलौ। तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ। चेरतुर्मण्डलगतौ समदाविव कुञ्जरौ। विदुरो धृतराष्ट्रस्य गान्धार्याः पाण्डवारणिः। न्यवेदयेतां तत् सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम्॥ (महाभा.आदि. १३३.२४...३५)। कुरुराजे हि रङ्गस्थे भीमे च बलिनां वरे। पक्षपातकृतस्नेहः स द्विधेवाभवज्जनः।... ततः क्षुब्धार्णवनिभं रङ्गमालोक्य बुद्धिमान्। भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमब्रवीत्। वारयैतौ

> ***"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.***

कुन्ती-प्रकरण

प्रिय शिष्य अर्जुन का परिचय देते हुए उसे अपने अस्त्रकौशल का प्रदर्शन करने को कहा। तब अर्जुन ने अपने अस्त्रलाघव का प्रदर्शन करते हुए आग्नेयास्त्र से अग्नि को प्रकट कर दिया। वारुणास्त्र से जल उत्पन्न किया। वायव्यास्त्र से तीव्र वायु प्रवाहित कर दी। पर्जन्यास्त्र से बादलों का निर्माण कर दिया। भौमास्त्र से वह भूमि में धंस सा गया। पार्वतास्त्र से पर्वतसा खड़ा कर दिया। अन्तर्धानास्त्र से वह अन्तर्हित हो जाता था - छिप सा जाता था। पल भर में तो अर्जुन बहुत लम्बा दीखता था और दूसरे पल में बोना। वह क्षण भर में रथ के जुए पर दिखाई देता था तो दूसरे क्षण में रथ के बीच में और तुरन्त फिर वह फर्श पर दृष्टिगोचर होता था। लोहे के बने हुए घूमते सुअर के मुख में अर्जुन ने पांच बाण इतनी फुर्ती से मारे, कि वे एक बाण के समान लग रहे थे। हिलती हुई रस्सी में लटकते हुए, बैल के खोखले सींग में अर्जुन ने इक्कीस बाण खोंस दिये। इसी प्रकार उसने तलवारबाजी और गदायुद्ध के भी कुछ पैंतरों का प्रदर्शन किया[429]। तब दर्शकों की विस्मयोत्पन्न ध्वनि और बाजों-गाजों की ध्वनि के शान्त होने पर उस रङ्ग-भूमि में तभी धनुष हाथ में लिये हुए और कमर में लटकती तलवारवाले कवच-

---

महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि। यो मे पुत्रात् प्रियतरः सर्वशस्त्रविशारदः। ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति।...। [तत अर्जुनः] आग्नेयेनासृजद् वह्निं वारुणेनासृजत् पयः। वायव्येनासृजद् वायुं पार्जन्येनासृजद् घनान्। भौमेन प्राविशद् भूमिं पार्वतेनासृजद् गिरीन्। अन्तर्धानेन चास्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत्। क्षणात् प्रांशुः क्षणाद् ह्रस्वः क्षणाच्च रथधूर्गतः। क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम्। भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम्। पञ्च बाणानसंयुक्तान् सम्मुमोचैकबाणवत्। गव्ये विषाणकोषे च चले रज्ज्ववलम्बिनि। निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम्॥ इत्येवमादि सुमहत् खड्गे धनुषि चानघ। गदायां शस्त्रकुशलो मण्डलानि ह्यदर्शयत्' (महाभा.आदि. १३४.१...२५)

430 'विवेश रङ्गं विस्तीर्णं कर्णः परपुरञ्जयः। सहजं कवचं बिभ्रत् कुण्डलोद्द्योतिताननः। सधनुर्बद्धनिस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः।...। स निरीक्षय महाबाहुः

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

कुण्डलधारी कर्ण ने विशाल रङ्गभूमि में प्रवेश किया। उसने पहले रङ्गभूमि में सब ओर दृष्टिपात किया और साधारण से आदर के साथ द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को प्रणाम किया। तत्पश्चात् कर्ण ने अपने अज्ञात भाई अर्जुन से कहा 'हे पार्थ! तुम अपने आप में इतने मत फूलो, तुमने अभी जो-जो अस्त्रकौशल दिखाये हैं, उनसे बढ़कर मैं सबके सामने करके दिखा दूंगा। कर्ण के इस प्रकार कहने पर वहाँ उपस्थित जनसमुदाय तो एकदम खड़ा हो गया, किन्तु दुर्योधन तो प्रसन्नता से खिल उठा और उसी क्षण अर्जुन को लज्जा और क्रोध ने एक साथ आ घेरा। उसके बाद द्रोण की अनुमति मिलने पर कर्ण ने; अर्जुन ने जो-जो अस्त्रकौशल दिखाये, वे सब कर दिखाये। तब भाइयों सहित दुर्योधन ने कर्ण का आलिङ्गन किया और हर्ष से बोला-'हे महाबाहु कर्ण! तुम्हारा स्वागत करता हूँ। हमारा अहोभाग्य है, कि तुम हमें मिल गये हो। मैं और यह कुरुराज्य भी तुम्हारे ही हैं। तुम यथेष्ट रूप से इनका उपभोग करो। तब कर्ण ने कहा – 'हे दुर्योधन! तुमने जो मेरा स्वागत किया, उसका मैं आभार मानता हूँ और तुम्हारे साथ मित्रता का वरण करता हूँ। अब मैं अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ। यह सुनते ही दुर्योधन का मुँह खुला

सर्वतो रङ्गमण्डलम्। प्रणामं द्रोणकृपयोर्नात्यादृतमिवाकरोत्। सोऽब्रवीन्मेघगम्भीर-स्वरेण वदतां वरः । भ्राता भ्रातरमज्ञातं सावित्रः पाकशासनिम्। पार्थ यत्ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः। करिष्ये पश्यतां नृणां माऽऽत्मना विस्मयं गमः। असमाप्ते ततस्तस्य वचने वदतां वर। यन्त्रोत्क्षिप्त इवोत्तस्थौ क्षिप्रं वै सर्वतो जनः। प्रीतिश्च मनुजव्याघ्र दुर्योधनमुपाविशत्। ह्रीश्च क्रोधश्च बीभत्सुं क्षणेनान्वाविवेश ह। ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा। यत् कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः। अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारत। कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत्। स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद। अहं च कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम्। कर्ण उवाच – कृतं सर्वमहं मन्ये सखित्वं च त्वया वृणे। द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तुमिच्छाम्यहं प्रभो। दुर्योधन उवाच-भुङ्क्ष्व भोगान् मया सार्धं बन्धूनां प्रियकृद् भव। दुर्हृदां कुरु सर्वेषां मूर्ध्नि पादमरिन्दम' (महाभा.आदि. १३५.१...१६)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

– 'हे कर्ण! मेरे साथ सभी भोगों का उपभोग करो, मेरे बन्धुओं के प्रियकारी बनो और मेरे समस्त शत्रुओं के सिरों को अपने पांवों से रौंद दो[430]। दुर्योधन के वचन सुनकर अर्जुन ने अपने आपको पददलित सा अनुभव करते हुए कर्ण से कहा– 'हे कर्ण! तुम यहाँ बिना बुलाये आ घुसे हो, सो मेरे द्वारा मारे जाने पर तुम उन्हीं की गति को प्राप्त करोगे, जो बिना बुलाये आ घुसते हैं और बिना बुलाये बकबक करने लगते हैं। इस पर कर्ण बोला–हे अर्जुन! यह रङ्गभूमि सर्वसाधारण के लिये है। तुम्हारे इन व्यर्थ के वाग्बाणों से तुम क्या सिद्ध करना चाहते हो ? देखो, मैं तुम्हारे गुरु के सामने ही तुम्हारा सिर बाणों से काट गिराता हूँ। तब द्रोणाचार्य की अनुमति लेकर और अपने भाईयों से मिलकर अर्जुन युद्ध के लिये कर्ण के पास आ गया। उधर दुर्योधन ने अपने भाईयों सहित कर्ण का आलिङ्गन किया। धनुष पर बाण चढ़ा कर कर्ण भी युद्ध के लिये आ डटा। उस समय रङ्गभूमि का दर्शकमण्डल दो भागों में बँट गया। धृतराष्ट्र के पुत्र आदि कर्ण की ओर आ बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म पितामह आदि अर्जुन की ओर बैठ गये। दर्शक महिलाएँ भी दो भागों में विभक्त हो गईं। कर्ण और अर्जुन को युद्ध के लिये तैयार देखकर, असली बात को जानने वाली अर्थात् ये दोनों सहोदर भाई हैं इस बात को जानने वाली कुन्ती अचानक बेहोश हो गई। विदुर ने सेविकाओं द्वारा चन्दनजल के छींटों से उसकी बेहोशी दूर की। होश आने पर कुन्ती ने देखा कि दोनों भाई=कर्ण और

431'अनाहूतोपसृष्टानामनाहूतोपजल्पिनाम्। ये लोकास्तान् हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे। कर्ण उवाच – रङ्गोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फाल्गुन। किं क्षेपैर्दुर्बलायासैः शरैः कथय भारत। गुरोः समक्षं यावत्ते हराम्यद्य शिरः शरैः। ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरञ्जयः। भ्रातृभिस्त्वरयाऽऽश्लिष्टो रणायोपजगाम तम्। ततो दुर्योधनेनापि सभ्रात्रा समरोद्यतः। परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः।... धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तस्मिन् देशे व्यवस्थिताः। भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन्। द्विधा रङ्गं समभवत् स्त्रीणां द्वैधमजायत। कुन्तिभोजसुता मोहं विज्ञातार्था जगाम ह। तां तथा मोहमापन्नां विदुरः सर्वधर्मवित्। कुन्तीमाश्वासयामास प्रेष्याभिश् चन्दनोदकैः।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

कुन्ती-प्रकरण

अर्जुन खार खाये हुए से एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध के लिये तत्पर हैं; तो वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई[431]।

काल बोला – हे कुन्ती ! तुमने थोड़ी सी देर कर दी। तुम रङ्गभूमि में होने वाली प्रत्येक घटना को सावधानी से देख रही थी और उसे गान्धारी को बता भी रही थी; तो जिस समय महाधनुर्धारी कर्ण ने रङ्गभूमि में प्रवेश किया तब तुमनेउसे पहचान ही लिया होगा कि यह मेरा पुत्र कर्ण है और तब तो अवश्य पहचान लिया होगा जब कर्ण ने अर्जुन को ताना मारा था कि तुम इतराओ मत, मैं तुम्हारे से बढ़कर अस्त्रकौशल दिखाऊँगा। कर्ण की बात को सुनकर सारा दर्शकमण्डल उठ खड़ा हो गया, तब तो तुमने अवश्य ही कर्ण को पहचान लिया होगा। हे कुन्ती! बस यह उपयुक्त अवसर था। तब तुम्हें तुरन्त खड़े होकर पाण्डवों के अभिमुख होकर कहना चाहिये था – हे पुत्रो ! आओ तुम अपने बड़े भाई कर्ण को प्रणाम करो। यह तुम्हारा सहोदर सगा भाई है। मैंने ही इसे जन्म दिया था। हे कुन्ती ! ऐसा कहकर दुर्वासा-प्रदत्त मन्त्र (=विद्या) का संक्षेप से उस समय वर्णन कर देती, कि जिस पराविद्या से बिना पुरुष-सम्पर्क के सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि देवों=दिव्य पदार्थों में स्थित रेतस् को विशेष विधि से धारण करके स्त्री पुत्र को जन्म दे सकती है। तुम्हारे इस प्रकार सत्य को प्रकट करते ही पाँचों पाण्डव=तुम्हारे पांचों पुत्र अपने अग्रज सहोदर के चरणों में प्रणाम करते और हमारा अग्रज ऐसा महान् धनुर्धारी है, यह जानकर फूले नहीं समाते। निश्चय ही अर्जुन-सहित सभी पाण्डव कर्ण के चरणों में प्रणत हो जाते। क्योंकि महाविनाशक युद्ध की समाप्ति पर तथाकथित जलाञ्जलि देने के समय

ततः प्रत्यागतप्राणा तावुभौ परिदंशितौ। पुत्रौ दृष्ट्वा सुसम्भ्रान्ता नान्वपद्यत किं चन' (महाभा. आदि. १३५.१८...२९)

432'पश्य वैकर्त्तनं कर्णं निहत्यातिरथान् बहून्। शोणितौघपरीताङ्गं शयानं पतितं भुवि। यं स्म पाण्डवसन्त्रासान्मम पुत्रा महारथाः। प्रायुध्यन्त पुरस्कृत्य मातङ्गा इव यूथपम्। उद्विग्नः सततं यस्माद् धर्मराजो युधिष्ठिरः। त्रयोदश समा निद्रां चिन्तयन्

कुन्ती-प्रकरण

तुम्हारे द्वारा सत्य प्रकट कर देने पर। यह जानते हुए भी कि कर्ण ने दुर्योधन के अनुसार चलकर सदा हमारा अहित किया है, भरी सभा में द्रौपदी को और हमें कुवाच्य कहने में कर्ण अग्रसर था। वनवास के समय हमें चिढ़ाने के लिये कर्ण भी आया था और दुर्योधन की ओर से लड़ते हुए कर्ण ने पाण्डवसेना के पाञ्चाल, चेदि और केकय वीरों का तथा अन्य हजारों योद्धाओं का संहार किया है। धृष्टद्युम्न के पुत्रों का और भीमपुत्र घटोत्कच को मारने वाला भी कर्ण ही है, इतना सब स्मरण होते हुए भी 'यह कर्ण हमारा सहोदर भाई था' यह जानकर उसके अपने हाथों मारे जाने से भारी दुःख हुआ था। तो जब अभी कर्ण ने पांचों पाण्डवों का कोई भी अपकार नहीं किया था, तब तुम्हारे द्वारा सत्य प्रकट कर देने पर पांचों भाई अपने सहोदर अग्रज कर्ण से लिपट जाते। तब न तो दुर्योधन कर्ण को अपने में मिलाने में समर्थ होता और न ही दुर्योधन को उद्दाम युद्धोन्माद चढ़ता। क्योंकि दुर्योधन कर्ण के आसरे से ही युद्ध में पाण्डवों के संहार की और विजय की आस लगाये रहता था। युद्धभूमि में कर्ण के शव को देखकर गान्धारी ने कहा था — हे कृष्ण ! इस कर्ण को देखो, जिसने अनेक महारथियों को मार गिराया था, अब खून से लथपथ होकर भूमि पर पड़ा है। पाण्डवों से डरे हुए मेरे महारथी पुत्र इस कर्ण के आसरे से ही युद्ध में कूद पड़ते थे। जिस कर्ण से भयभीत युधिष्ठिर तेरह वर्ष तक अच्छी प्रकार से सो भी नहीं सका था। वह वीर कर्ण मेरे पुत्र दुर्योधन का असली आश्रय था[432]।

हे कुन्ती ! तुमने इस समय भी सत्य को प्रकट न करके परोक्ष रूप से महाभारत युद्ध के होने में योगदान किया ही है। तुम यदि इस अवसर पर सत्य को प्रकट करने का

नाध्यगच्छत॥ स भूत्वा शरणं वीरो धार्तराष्ट्रस्य माधव। भूमौ विनिहतः शेते वातभग्न इव द्रुमः' (महाभा.स्त्री. २१.२,४,७,९)

433 'यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाऽराज्ञा योद्धुमिच्छति। तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते। ततस्तस्मिन् क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः। काञ्चनैः काञ्चने पीठे मन्त्रविद्भिर्महारथः। अभिषिक्तोऽङ्गराज्ये स श्रिया युक्तो महाबलः॥ उवाच कौरवं राजन्

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

साहस जुटा लेती, तो न तो दुर्योधन कर्ण को अङ्गदेश का राजा बनाकर उसे अहसानों से लाद कर उसको अपने साथ महामैत्री=अत्यन्तमैत्री के बन्धन में बांधता[433] और न ही अङ्गदेश के राजा बने कर्ण को सूत अधिरथ द्वारा पुत्र कहने पर भीमसेन उसे सूतपुत्र कहकर चिढ़ाता और न कर्ण तब और खार खाता[434]। तुम्हारे द्वारा सत्यता के प्रकटीकरण से कर्ण-अर्जुन सहोदरों के कारण पाण्डव जहाँ सर्वथा अजेय बन जाते, वहाँ कौरव-दल भी इतना दम्भी और दर्पी न बनता।

हे कुन्ती! तुम इस सत्य को कहने के लिये अकेले में कर्ण के पास गई और तुमने उसे अपना प्रथम पुत्र बताकर पाण्डव-पक्ष में आने के लिये प्रेरित किया[435], किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। जब तुम कर्ण के पास गई तब रङ्गभूमि वाली घटना को बीते लगभग तीन दशक बीत चुके थे। इस अन्तराल में कर्ण दुर्योधन-मण्डली के सङ्ग से सर्वथा वैसा ही हो गया था। जो व्यक्ति उचित समय पर उचित कदम नहीं उठाता, वह अपने और पराये सन्ताप का कारण बनता है।

काल की तथ्यात्मक बात को सुनकर कुन्ती को भारी पछतावा हुआ। पर अब पश्चात्ताप करने से और जलाञ्जलिदान रूपी टोटका करने से क्या लाभ था।

काल अब गाण्डीवधारी अर्जुन की ओर अग्रसर हुआ—

वचनं स वृषस्तदा। अस्य राज्यप्रदानस्य सदृशं किं ददानि ते।'....... 'अत्यन्तं सख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोधनः' (महाभा.आदि. १३५.३६...४०)

434 'ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससम्भ्रमः। पुत्रेति परिपूर्णार्थमब्रवीद्रथ-सारथिः। भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव। न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम्' (महाभा.आदि. १३६.३,५)

435 'योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत् परिरक्षितः। कस्मान्न कुर्याद् वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा। इति कुन्ती विनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति। (महाभा.उ. १४४.२५,२६)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

अर्जुन-प्रकरण

अर्जुन ? [१]

द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य के दक्षिण अङ्गुष्ठ को कटवाना और अर्जुन

काल ने अर्जुन को टोका—हे अर्जुन! तुम्हारे में दया का वास है' ऐसी प्रसिद्धि रही है। युद्धारम्भ से पूर्व, सम्भाव्य वीरहत्याओं का विचार करके जो तुम्हारे अन्दर युद्ध से वैराग्य उत्पन्न हो गया था, वह इस प्रसिद्धि का प्रमाण भी है। किन्तु तुम्हारे अन्दर ईर्ष्याभाव का भी एक अच्छेद्य अंकुर था। तुम्हारी असमयोचित दया और ईर्ष्यावृत्ति भी इस महाविनाशक महाभारतयुद्ध में परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से कारण रही हैं। यह कैसे ? सो सुनो। पहले ईर्ष्यावृत्ति की बात सुनो—हे अर्जुन! तुम्हें स्मरण होगा, शिक्षाग्रहण-काल में तुम पाण्डव और कौरव वन में आखेट के लिये गये थे। तब तुम्हारे पीछे आ रहे एक मनुष्य के साथ चल रहे कुत्ते ने जब वन में घूमते हुए, एक मृगचर्मधारी कृष्णवर्ण युवक को निरन्तर बाण चलाते देखा, तो वह भौंकने लगा। तब उस युवक ने अपने हस्तलाघव से उस कुत्ते के मुख को सात बाणों से ऐसे भर दिया, कि उस कुत्ते के मुख को कहीं जरा सी खरोंच भी नहीं आई। वह कुत्ता जब तुम लोगों की ओर आया, तो उसे देखकर तुम आश्चर्य से उस शरक्षेप्ता की प्रशंसा करने लगे। ढूंढने पर वह युवक मिल गया। पूछने पर पता लगा कि वह निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य है और द्रोणाचार्य का शिष्य है। लौटकर तुम लोग गुरु द्रोण के पास आये। मौका पाकर तुमने एकान्त में गुरु द्रोण को याद दिलाया—'आपने मुझे एक बार गले लगाकर कहा था, कि मेरा कोई भी अन्य शिष्य तुमसे बढ़कर नहीं होगा। तब फिर यह निषादराज का पुत्र एकलव्य आपका शिष्य मेरे से भी बढ़कर और लोकमात्र के वीरों से भी बढ़कर कैसे है? तब कुछ विचार करके द्रोण तुम्हें साथ लेकर एकलव्य के पास गये। एकलव्य के यह

436'स तु बद्धाङ्गुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः। अतिमानी वनचरो बभौ राम इवापरः॥ एकलव्यं हि साङ्गुष्ठमशक्ता देवदानवाः। सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि

> *"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.*

अर्जुन-प्रकरण

कहने पर, कि 'मैं आपका शिष्य एकलव्य आपको प्रणाम करता हूँ'। गुरु द्रोण ने तब -'यदि तुम मेरे शिष्य हो, तो मेरा वेतन दो। और वेतन यह है कि तुम अपने दाहिने हाथ का अंगूठा मुझे दे दो। तब सत्यप्रतिज्ञ एकलव्य ने बिना विचारे तुरन्त अपना दाहिना अंगूठा काटकर गुरु को दे दिया (द्रष्टव्य-पृ.११०-११२)। हाय! हाय!!

हे अर्जुन! कहाँ गई थी, उस समय तुम्हारी दया-भावना? कैसे तुमने उस निरपराध का अंगूठा कटते हुए देख लिया? तुम इतने क्रूर हो गये थे उस समय! उस समय तुम्हारे लिये उचित था, कि तुम गुरु द्रोण से कहते-'गुरुजी! आपने तो इसे निषाद जानकर शिष्य बनाने से मना कर दिया था। अतः आपने तो इसे क्षण भर के लिये भी कुछ भी नहीं सिखाया। बस केवल इसने मन में आपके प्रति गुरुभाव रखा है। पर इसको अस्त्रचालन में अद्वितीय हस्तलाघव जो प्राप्त हुआ है, सो उसका निरन्तर अभ्यास और निष्ठात्मक श्रम है। सो मैं भी अब और अधिक निष्ठा से श्रम करूँगा। ऐसा निवेदन करने के पश्चात् तुम एकलव्य से कहते-हे एकलव्य! मैं तुम्हारे साथ मित्रता चाहता हूँ। जैसे राम और सुग्रीव मित्र बने और आजीवन मित्रता निभाई, वैसे मैं और तुम जीवन भर के लिये आज मित्र बनते हैं, ऐसा कहकर अपने हाथ में उसका दाहिना हाथ पकड़ लेते और उसे अपने गले लगा लेते। हे अर्जुन! तुम चूक गये। तुम्हारी बुद्धि पर ईर्ष्या हावी हो गई थी, इसलिये तुम एकलव्य के दक्षिण-अंगुष्ठ को कटते हुए देख सके। यदि निष्ठुरता को त्यागकर, एकलव्य की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाते, तो निश्चय ही तुम लोगों की शक्ति में वृद्धि होती। जब वानर जातीय सुग्रीव ने और उसके वानर जातीय वीरों ने राम की पूरी सहायता की और नरभक्षी हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच ने अपने पुत्र अञ्जनपर्वा सहित पाण्डवों की युद्ध में भरपूर सहायता की और पाण्डवों के हित ही युद्ध में वे मारे गये। सो यदि हे अर्जुन! तुम एकलव्य के साथ मित्रता कर लेते, तो उसके पिता हिरण्यधनुः अपने

कर्हिचित्। किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात् प्रतिवीक्षितुम्। दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम्। (महाभा.द्रो. १८१.१८-२०)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

पुत्रों, अपने अनुयायियों और अपने सैनिकों के साथ तुम पाण्डवों का साथ देते। निश्चय ही एकलव्य स्वयं अजेय वीर था, जैसा कि पीछे श्रीकृष्ण ने बताया था– 'वह निषादपुत्र वनवासी एकलव्य सदा दस्ताने पहने रहता था। वह दृढ़ पराक्रमी, अति स्वाभिमानी और द्वितीय राम सा बन गया था। वह मजबूत मुष्टिवाला, कर्त्तव्यपरायण और दिनरात अस्त्राभ्यास करने वाला था। अक्षत अंगुष्ठों वाले एकलव्य को युद्ध में देव, दानव, राक्षस और नागजातीय लोग भी नहीं जीत सकते, तो सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या[436]।

हे अर्जुन! ऐसे पराक्रमी वीर एकलव्य को श्रीकृष्ण ने तुम्हारे बचाव के लिये एक समय स्वयं मार डाला था[437]। सो यदि तुम उस समय उससे गाढ़ मित्रता कर लेते, तो वह एकलव्य तुम्हारे लिये तुम्हारे शत्रुओं का संहार करता।

हे अर्जुन! एक निरपराध युवक के अंगूठा कटने के तुम निमित्त बने। अपने क्षतविक्षत हाथ वाले–अंगूठा रहित हाथ वाले निष्पाप पुत्र एकलव्य को देखकर उसके माता-पिता को कितना दुःख हुआ होगा। जो जैसा करता है वैसा ही भरता है। सम्भवतः इसीलिये रात्रि में युद्ध-शिविर में गाढ़ निद्रा में सोये हुए तुम्हारे पुत्र श्रुतकीर्त्ति के अश्वत्थामा के हाथों मारे जाने पर तुम्हें भी भारी दुःख हुआ होगा!!

अर्जुन ? [२]

कपटद्यूत और अर्जुन

हे अर्जुन! द्यूतक्रीडा राजाओं के लिये–क्षत्रियों के लिये महाव्यसन माना गया है।

---

437 (श्रीकृष्ण उवाच) 'त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि' (महाभा. द्रो. १८१.२१)

438 'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि' (तैउ. शी. ११)

> "इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

अर्जुन-प्रकरण

फिर तुमने अपने भीम आदि भाइयों के साथ मिलकर युधिष्ठिर को जुए खेलने से रोका क्यों नहीं? समावर्त्तन के समय आचार्य ने तुम लोगों को सीख दी थी, कि जो हमारे उत्तम आचरण हैं, उन्हीं का तुम अनुकरण करना और अनुमोदन करना; हीन-निन्दनीय आचरणों का नहीं[438]। तो अस्माकम्=हमारे अर्थात् हम बड़ों के। सो युधिष्ठिर बड़े तो थे, पर उनमें द्यूत खेलने का दुर्व्यसन था। उसका आप लोगों को अनुमोदन नहीं करना चाहिये था, अपितु डटकर विरोध करना चाहिये था। तुम्हारे स्वभाव के विपरीत, भीमसेन बुराई का विरोध करने वाला था। वह तुम्हारे कारण कपटद्यूत के समय बहुत समय तक चुप बैठा रहा। पर जब शकुनि के द्वारा उकसाने पर युधिष्ठिर ने महारानी द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया और रजस्वला द्रौपदी का भरी सभा में भारी अपमान किया जाने लगा, तब भीम से न रहा गया और वह बोला – हे भाई युधिष्ठिर! काश्य (=काशिराज) ने जो धन तथा उत्तम पदार्थ हमें भेंट में दिये थे तथा अन्य राजाओं ने जो रत्न, धन, वाहन, कवच तथा अस्त्रशस्त्र हमें उपहार में दिये थे; उन सबको तुमने दांव पर लगाया और हार गये। फिर अपने राज्य को, हम सबको और अपने आपको भी तुमने दांव पर लगा कर गंवा दिया। तब तक मुझे क्रोध नहीं आया, क्योंकि आप बड़े भाई होने के कारण हमारे स्वामी हो। पर जब तुमने द्रौपदी को दांव पर लगा दिया, तो यह मूर्खताभरी दुष्टता की हद ही हो गई। हे युधिष्ठिर! यह पाण्डव-पत्नी द्रौपदी तुम्हारे कारण इन क्षुद्र, क्रूर और दुष्टात्मा कौरवों के द्वारा सताई जा रही है। इस कारण मैं अपने क्रोध की गाज तुम्हारे

---

439 'काश्यो यद्धनमाहार्षीद् द्रव्यं यच्चान्यदुत्तमम्। तथान्ये पृथिवीपाला यानि रत्नान्युपाहरन्। वाहनानि धनं चैव कवचान्यायुधानि च। राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृतं परैः। न च मे तत्र कोपोऽभूत् सर्वस्येशो हि नो भवान्। इमं त्वतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते। एषा ह्यनर्हती बाला पाण्डवान् प्राप्य कौरवैः। त्वत्कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः। अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन्निपात्यते। बाहू ते सम्प्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय। (महाभा.स. ६८.२-६)

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

ऊपर गिराता हूँ। हे सहदेव! तुम अग्नि लाओ उससे मैं इस युधिष्ठिर के हाथों को जला डालूंगा[439]। हे अर्जुन! भीमसेन के सोद्वेग वचन को सुनकर तुमने भीम को समझा-बुझाकर शान्त तो कर दिया। परन्तु तुम्हें भी तो युधिष्ठिर की इस महाबचकानी एवं निन्दनीय हरकत पर उसे डांटना चाहिये था और चेताना चाहिये था।

प्रथम कपटद्यूत में युधिष्ठिर द्वारा सब कुछ जड़ चेतन पदार्थमात्र हार जाने पर। उस कपटद्यूत के परिणाम पर और भरी सभा में द्रौपदी के भारी अपमान के परिणाम पर विचार करके धृतराष्ट्र ने उस द्यूत को खारिज करके पाण्डवों को उनका सब कुछ लौटा देने की और उन्हें अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ जाने की अनुमति दे दी। किन्तु दुर्योधन वाली चाण्डाल-चौकड़ी द्वारा बहकाने पर धृतराष्ट्र द्वारा बुलावा भेजने पर फिर से युधिष्ठिर मार्ग में से कपटद्यूत खेलने के लिये भाईयों सहित लौट पड़ा। हे अर्जुन! तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर का तो भेजा खराब हो गया था। पर तुम भाईयों को क्या हो गया था? क्यों तुम उसके साथ लौट पड़े और क्यों तुमने फिर से जुआ खेलने को उसे लौटने दिया? क्यों नहीं तुम भाइयों ने उसे जबर्दस्ती लौटने से रोका? तुम डट जाते। तुम युधिष्ठिर को पकड़कर इन्द्रप्रस्थ ले आते और उसे फिर से द्यूत खेलने ही नहीं देते। यदि युधिष्ठिर कहता कि मेरा प्रण है-'आहूतोऽहं न निवर्त्तेय=ललकारने पर मैं पीछे नहीं हट सकता'। तो तुम कहते कि भाईजी! यह बात युद्ध के लिये ललकारने के विषय में है। दुर्व्यसन या दुराचार करने के विषय में नहीं है। और आपने आज ही अभी-अभी इस दुर्व्यसन द्यूत के=कपटद्यूत के परिणाम को देखा नहीं था क्या? अरे अभी-अभी जो महारानी द्रौपदी का महाघोर अपमान भरी सभा में हुआ था, उसे भूल गये क्या? वह इस द्यूत का ही फल था। सो हम आपको हरगिज पुनः द्यूत के लिये नहीं जाने देंगे'। हे अर्जुन! यदि तुम लोग

---

440 'सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरद् ऋजीयस् तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्
(ऋ. ७.१०४.१२)

ऐसा करते, तो न तुम्हें अपना राज्य गंवाना पड़ता, न वनवासादि का दुःख भोगना पड़ता और न ही अपना राज्य पाने के लिये तुम्हें युद्ध करना पड़ता और फलस्वरूप लाखों वीरों की अकाल मृत्यु भी नहीं होती। पर तुम लोग बुद्धि-प्रमाद के कारण कठपुतलियों के समान बड़े का उचित-अनुचित कहना मानते रहे; उसी का परिणाम यह महाविनाश था।

अर्जुन ? [३]

द्वैतवन में गन्धर्वों द्वारा दुर्योधनदल का निग्रह और अर्जुन

हे अर्जुन! बारह वर्ष के वनवास काल में द्वैतवन में वनवास काट रहे तुम लोगों को दुरवस्था में देखकर अपना कलेजा ठण्डा करने और चिढ़ाने के उद्देश्य से जब दुर्योधन अपने दलबल सहित द्वैतवन पहुँचा, तो वहाँ पहले से पड़ाव डाले गन्धर्वों से कौरव सैनिकों के उलझ पड़ने और दुर्योधनादि का गन्धर्वों के साथ युद्ध छिड़ जाने के फलस्वरूप गन्धर्वराज चित्रसेन ने दुर्योधन को सेना सहित हरा दिया तथा भाईयों समेत दुर्योधन को और उनकी स्त्रियों को कैद कर लिया। तब बचे हुए कौरव-अमात्यों आदि के द्वारा युधिष्ठिर से दुर्योधनादि की मुक्ति के लिये गुहार मचाई गई। तब युधिष्ठिर ने तुम सब भाईयों को किसी भी प्रकार से दुर्योधनादि को गन्धर्वों की कैद से मुक्त कराने को भेजा। तब तुम भाईयों ने गन्धर्वों के साथ भारी संग्राम करके उन बन्दियों को युधिष्ठिर के पास पहुँचाया और युधिष्ठिर ने उन्हें मुक्त करवा दिया (द्रष्टव्य–पृष्ठ १५२–१६३ तथा २११,२१२)।

हे अर्जुन! यहाँ फिर तुमसे भारी भूल हो गई। हाथ में आये और बिना तदर्थ रक्त बहाये तुम लोगों ने अपने जन्मजात द्वेषी, हलाहल विष देकर मारने का प्रयत्न करने वाले, माता-सहित लाक्षागृह में जला मारने का पूरा प्रयत्न करने वाले पापी दुर्योधन को तुमने गन्धर्व चित्रसेन की कैद से छुड़वा दिया!! अरे भूतकाल का महा दुःख विस्मृत हो गया था, तो वर्त्तमान तो सौ-सौ मुखों से तुम्हें याद दिला रहा था। तुम जो वनों में बरसों

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

से भूखे-प्यासे, तपते-ठिठुरते रखड़ रहे थे, उसका मूल कारण कौन था? दुर्योधन। अरे! तुमने महारानी द्रौपदी का सभा में घोर अपमान करने कराने वाले और अपनी बांईं नंगी जांघ दिखाने वाले कामी दुर्योधन को छुड़वा दिया!! कहाँ गया था तुम्हारा क्षात्र तेज और मन्यु? अरे! प्रतिशोध की अग्नि को हृदय में संजोये हुए महारानी द्रौपदी बरसों से स्थण्डिल पर=कठोर भूमि पर सो रही थी। इन सब अपमानों का, नीचताओं का, दुष्टताओं का और क्रूरताओं का हिसाब बराबर करने का तुम्हें अनायास ही अवसर हाथ लगा था। पर तुमने उसे खो दिया!!

तब वास्तविक व्यावहारिक भीमसेन ने ठीक ही कहा कि जो काम हमें हाथी घोड़ों की सेना तैयार करके बड़े प्रयत्न से करना पड़ता, उसे आज हमारे बैठे-बैठे ही गन्धर्वों ने कर दिया है। सौभाग्य से संसार में हमारा भी कोई प्रिय कार्य करने वाला है (द्रष्टव्य-पृ.१५८) सो अर्जुन! तुम्हें भी युधिष्ठिर की इस आज्ञा का कठपुतली के समान पालन नहीं करना चाहिये था। अवश्य तुम कौरवों की स्त्रियों को, अन्य सैनिकों और दुर्योधन के विविंशति, विन्द, अनुविन्द आदि भाइयों को भी मुक्त करवा देते। किन्तु सब अनर्थ की जड़ दुर्योधन को और उसके भाई दुःशासन को तो कभी न छुड़वाना चाहिये था। तुम चित्रसेन गन्धर्व को अपना काम करने देते। रही बात, कि भाई युधिष्ठिर की आज्ञा का उल्लङ्घन करने से अधर्म होता। तो अर्जुन! युधिष्ठिर कौनसा सदा धर्मानुसार ही काम कर रहा था। महाव्यसन द्यूतक्रीडा कौनसा धर्मकार्य था? और एक बार भारी अपमान और क्लेश भोगने के तुरन्त बाद वह फिर से कपटद्यूत में उतर गया। उस समय सब सभ्यों के मना करने पर भी जुआ खेलने लगा मतिमन्द युधिष्ठिर। स्वयं के इस अनुचित अधार्मिक द्यूतकृत्य से तुम सबको भी जङ्गल पर्वतों की ठोकरें खाने को और अज्ञातवास में झूठ बोलकर अक्षत्रियोचित कर्म करने को मजबूर करने वाले युधिष्ठिर की, दुर्योधन की मुक्ति की आज्ञा को न मानना ही धर्म था। चित्रसेन के हाथों से दुर्योधन दुःशासन को न छुड़वाते, तो तुम्हें अपना राज्य वापिस प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती और महाभारत-युद्ध भी नहीं होता।

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत-युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि, उस समय ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये" सत्यार्थ. ११ समु.

अर्जुन-प्रकरण

अर्जुन ? [४]

विराट की अपहृत गौओं को दुर्योधनदल से मुक्त करवाते समय अर्जुन का व्यवहार

हे अर्जुन! तुम लोगों के अज्ञातवास-सहित वनवास की अवधि पूरी होते-होते विराट के कामी सेनापति महाबली कीचक के और उपकीचकों के मारे जाने पर त्रिगर्तराज सुशर्मा के उकसाने पर कौरव भी अपने महारथियों सहित विराट की साठ हजार गौओं को अगुआ करके ले चले। तब अपने आश्रयदाता विराट की गौओं को छुड़वाने के लिये तुमने विराटपुत्र उत्तर को सारथि बनाकर कौरव-सेना के भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा दुर्योधन आदि के साथ भारी युद्ध किया। 'विराट-गोहरण-समर में भीष्मादि वीर आये, पर उन सब पर अर्जुन, भारी पड़ा अकेला'। हे अर्जुन! उस समय तुमने कौरव महारथियों की अच्छी गत बनाई। पहले तुमने दुर्योधन-सहोदर विकर्ण को हराया। फिर कौरव महारथी शत्रुन्तप और कर्णभ्राता संग्रामजित् को मार गिराया और कर्ण को भी पराजय का मुख दिखाया। फिर क्रमशः कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, दुःशासन को पराजित किया। भीष्म के साथ युद्ध में तुम्हारे अस्त्रप्रहार से भीष्म भी मूर्छित हो गये। तब दुर्योधन के साथ तुम्हारा संग्राम हुआ, जिसमें घबराकर दुर्योधन तुम्हारे सामने से भाग खड़ा हुआ। हे अर्जुन! उस समय तुमने यह कहकर उसे युद्ध से भाग जाने का अवसर दे दिया कि, 'न ते पुरस्तादथ पृष्ठतो वा पश्यामि दुर्योधन रक्षितारम्। अपेहि युद्धात् पुरुषप्रवीर प्राणान् प्रियान् पाण्डवतोऽद्य रक्ष॥ 'हे दुर्योधन! तुम्हारी रक्षा करने वाला यहाँ तुम्हारे आगे या पीछे कोई नहीं है, सो तुम भाग जाओ और अर्जुन से अपने प्राणों की रक्षा कर लो'। हे अर्जुन! फिर तुमने भारी गलती कर डाली। ऐसे अधर्मी, लोभी, कामी और माता-सहित, पत्नी-सहित पाण्डवों के समस्त कष्टों के मूल कारण रूपी दुर्योधन को तुमने भाग कर बच निकलने का अवसर दे दिया अर्थात् महाविनाशक महाभारत-युद्ध की मूल ग्रन्थि को और फूलने-फलने के लिये तुमने जीवित छोड़ दिया। प्रतीत होता है,

बड़े भाई युधिष्ठिर के समान तुम्हारी मति भी उचित अवसर पर उचित कार्य करने में कुंठित हो जाती थी। प्रमाद (=अनवधानता=अविवेक) के कारण ही तुम भी दुष्ट शत्रु को सही समय पर सही पाठ नहीं पढ़ा सके।

काल ने सिंहावलोकन कर इस महायुद्ध में होने वाले महाविनाश की जाने-अनजाने अनदेखी करने वाले कुछ मुख्य व्यक्तियों के कृत्यों का विश्लेषण किया। फिर काल, महाभारतयुद्ध के बाद के इतिहास का विश्लेषण करने लगा। जिन प्रमाद (बुद्धिजन्य अविवेक), आलस्य, ईर्ष्या, द्वेष और लोभ आदि के कारण भारत की जो दुर्गति महाभारत-युद्ध के पूर्व आरम्भ हो गई थी। वह आगे भी जारी रही। ये हेतु नये-नये रूप धारण करके भारत को जर्जर करने में, खण्डबण्ड करने में और पराधीन करने में लगे रहे। जब मनुष्य के पास सुविज्ञान नहीं रहता, तब वह असत् मार्ग का अवलम्बन करके पतन के मार्ग की ओर लुढ़कता जाता है[440]। जब उत्तम ज्ञान प्राप्त नहीं होता तो अन्धपरम्परा चल पड़ती है।

बुद्धिप्रमाद के और स्वार्थ हितसाधन के कारण लोगों ने भगवानों की अर्थात् धर्मी, यशस्वी, ज्ञानी, ध्यानी महापुरुषों शिव, विष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमान् आदि के पाषाण, काष्ठ, धातु आदि के विग्रह बनाकर उनको पूजने पुजवाने का धन्धा शुरू कर दिया। फिर यह अन्धविश्वास भी पाल लिया कि ये विग्रह ही हमारी रक्षा कर लेंगे।

जब महमूदगज़नवी ने सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण किया तब "मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और लाखों फौज दश सहस्र फौज से भाग गई। जो पोप पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर' और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे कि आप निश्चिन्त रहिये। महादेवजी भैरव या वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे या अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे। वे बेचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकावे से विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया। दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई। इत्यादि बहकावट में रहे। जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया, तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पोप पुजारी और उनके चेले पकड़े गये। ...जब मूर्त्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह करोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे। कहा कि कोष बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष (लूटकर ले

गये)। मार कूट कर पोप और उनके चेलों को 'गुलाम' बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल-मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये। हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की? जिससे (शक्तिमान् होकर) म्लेच्छों के दांत तोड़ डालते और अपना विजय करते। ...पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की परन्तु मूर्त्ति एक भी उड़के म्लेच्छों के सिर पर न लगी।" (सत्यार्थ. ११ समु.)

पाषाणादि पदार्थों से बने विग्रहों की-मूर्त्तियों की पूजा का प्रचलन महाभारतकाल से पूर्व नहीं था। विश्लेषकों के अनुसार मूर्त्तिपूजा का चलन जैनियों से आरम्भ हुआ। तत्पश्चात् शैवों, शाक्तों और वैष्णवों ने भी अपनी-अपनी भावना के अनुसार अलग-अलग मूर्त्तियाँ बनाईं। महाभारत से पूर्व ये शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सम्प्रदाय भी नहीं थे। इन सम्प्रदायों के कारण भी भारतीयों में परस्पर फूट और वैमनस्य फैला।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय वालों ने भिन्न-भिन्न मूर्त्तियों का पूजना पुजवाना आरम्भ किया। प्रमाद-जन्य अविवेक के कारण लोग जड़पूजा के चक्कर में फंसते गये। विवेक से काम लेते, तो उन्हें ज्ञान हो जाता कि जड़ वस्तु में चेतनता नहीं आ सकती। प्राणी-शरीर में चेतनता तभी तक प्रतीत होती है, जब तक उसमें जीवात्मा रहता है। जीवात्मा के निकल जाने पर पार्थिव शरीर जड़ मात्र वस्तु ही रह जाती है। जिसमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान इन छः गुणों की प्रतीति एक साथ होती है, वही वस्तु चेतन होती है। पाषाणादि में और उनकी बनी मूर्त्तियों में ये छः गुण एकत्र उपस्थित नहीं होते, अतः उनका पूजना और उनसे प्रार्थना करना व्यर्थ है।

काल्पनिक भावनावाद और आस्थावाद ने भी मनुष्यों को जड़पूजा आदि कुरीतियों में ढकेलने का कार्य किया है। उन्होंने कहना शुरु किया कि यद्यपि काष्ठ, पाषाण अथवा मिट्टी के बने विग्रहों में=मूर्त्तियों में देवत्व नहीं है, तथापि भाव में=भावना में देव है। जैसी जिसकी भावना होती है, वैसी ही उसको सिद्धि हो जाती है। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। क्योंकि जो वस्तु जैसी हो, उसको वैसा ही समझना भावना है। विपरीत समझना भावना नहीं है। सूजी में नमक की भावना करने से दाल शाक में नमकीन स्वाद नहीं आयेगा। नमक में चीनी की भावना करने से उससे दूध में मधुरता का अनुभव नहीं होगा। वैसे ही जड़ वस्तु में चेतन की भावना करने से वह वस्तु तीन काल में भी चेतन नहीं हो सकती।

इस मूर्त्तिपूजा के कारण बड़े-बड़े मन्दिर बंने और उनमें भोले भक्तों ने सुवर्ण तथा रत्न आदि भेंटें चढ़ाईं। परिणामतः विदेशी लुटेरों को एक स्थान पर ही अकूत धनसम्पत्ति लूटने को मिल गई। 'महमूद ने सब मन्दिरों की सम्पत्ति लूटी...उसे जितने ऊँट मिल सके सब पर मन्दिरों व राजकोष का धन लादा गया। वह सात सौ चालीस ७४० मन सोना, २००० मन चाँदी, २० मन से अधिक रत्न और सहस्रों स्वर्ण-सिलें ले गया'।

मुहम्मद गौरी ने कन्नौज और काशी को जीता, मन्दिरों को तोड़ा, लूटा।... सात लाख स्वर्ण दीनार, ७०० मन सोने चाँदी के पत्र, २०० मन सोने के पासे, २००० मन चाँदी और २० मन हीरा, पन्ना, मूंगा, मोती आदि पाया' (हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र, पृ. ४०४-४०७)

यदि ये मन्दिर न होते और अन्धभक्त अपनी धनराशि वहाँ भेंट न करके अपने पास ही रखते तो हमारा खरबों-खरब धन लूट में इस प्रकार बाहर न जाता।

अविवेकजन्य मुहूर्त्तवाद ने भी भारत को भारी हानि पहुँचाई। समर्थ होते हुए भी भारतीय वीर मुहूर्त्त के चक्कर में शत्रुओं पर आक्रमण न कर सके और पराधीन होते गये। ये तथाकथित मुहूर्त्त-दर्शन हमारी विजययात्राओं में बाधक रहे।

ईर्ष्या-द्वेष और अतिलोभ के कारण दुर्योधन जैसे कुरुवंश का और सैंकड़ों राजकुलों के नाश का और लाखों वीरों के संहार का कारण बना। दुर्भाग्य से पीछे के लोगों ने इतिहास से शिक्षा नहीं ली। महाराजे युधिष्ठिर से महाराजे यशपाल तक लगभग १२४ पीढ़ियों ने=राजाओं ने इन्द्रप्रस्थ को राजधानी बनाकर राज्य किया। इनका राज्यकाल कुल ४१५७ वर्ष के लगभग रहा। इस काल में सात राजाओं ने लोभवश अपने पूर्ववर्त्ती राजा को मारकर राज्य छीना। क्षेमक को मारकर विश्रवा नें राज्य हथियाया। वीरसालसेन को मारकर राजा वीरगहा गद्दी पर बैठा। आदित्यकेतु को मारकर धन्धर राजा बन बैंठा। उसकी नौंवी पीढ़ी के राजा राजपाल को मारकर सामन्त महान्‌पाल राजा बना। उस महान्‌पाल को विक्रमादित्य ने मार के राज्य किया। उसे मारकर समुद्रपाल गद्दी पर बैठा। इसकी १६ वीं पीढ़ी के विक्रमपाल को मलुखचन्द ने मार के राज्य किया। इसकी ९ वीं पीढ़ी के गोविन्दचन्द्र के कोई सन्तान नहीं थी। अतः उसकी रानी पद्मावती ने राज्य संभाला। उसकी मृत्यु हो जाने पर मन्त्रियों ने हरिप्रेम वैरागी को राजा बना दिया। उसकी चौथी पीढ़ी के राजा महाबाहु के तपस्यार्थ वन में चले जाने पर बंगाली आधीसेन इन्द्रप्रस्थ का राजा बन बैठा। आधीसेन की १२ वीं पीढ़ी के राजा दामोदरसेन को उसके

उमराव दीपसिंह ने मार गिराया। दीपसिंह की छठी पीढ़ी के राजा जीवनसिंह को पृथ्वीराज चह्वाण ने मार डाला। पृथ्वीराज की पांचवीं पीढ़ी के राजा यशपाल को गजनी के शाहबुद्दीन गौरी ने प्रयाग के किले में वि.संवत् १२४९ में कैद कर लिया और खुद राज्य करने लगा (सत्यार्थ. ११ समु.)।

भारतीय आर्यों में जो, शत्रुओं पर पहले आक्रमण करने की शौर्य भरी भावना थी। वह धीरे-धीरे क्षीण होती गई। केवल रक्षार्थ शस्त्र उठाने का ही भाव रह गया। जैन और बौद्ध शिक्षाओं के फलस्वरूप वह रक्षार्थ शत्रु-प्रतीकार का भाव भी कम होता गया। अव्यावहारिक अहिंसा की घुट्टी के परिणामस्वरूप अधिकाधिक विदेशी आक्रान्ता भारत को पराधीन बनाकर, यहाँ के शासक बनते चले गये।

जो भूल युधिष्ठिर और अर्जुन ने दुष्टात्मा, पापी शत्रु को कैद से मुक्त करवा के तथा भाग जाने का अवसर देकर की, वही गलती पीछे भी दुहराई जाती रही। मुहम्मद गौरी को सोलह बार छोड़ दिया गया। १३२६ ई. में राणा हम्मीर ने दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक को सिंगौली के समीप परास्त किया और बन्दी बना लिया। फिर अजमेर, नागौर, श्योपुर और रणथम्भौर के प्रदेश, ५० लाख रुपये तथा १०० हाथी लेकर उसे मुक्त कर दिया। उस समय राणा हम्मीर भारत में हिन्दुओं की शक्ति का एक मात्र प्रतीक था। मारवाड़, आमेर, बूंदी, ग्वालियर, चन्देरी, रायसेन, सीकर, कालपी और आबू के राज्य; मेवाड़ के राणा हम्मीर को भेंट देते थे (भारतीय संघर्ष का इतिहास, पृ. ३६-३७)। यदि राजा हम्मीर मुहम्मद तुगलक को मुक्त करने के बजाय उसको मार कर दिल्ली पर आक्रमण कर देते तो गोभक्षकों की सत्ता का भारत में तभी अन्त हो जाता।

तथाकथित अहिंसा के अतिरेकी भाव ने भारत के करोड़ों धर्मप्राण गोरक्षकों को दब्बू और कायर बना दिया। उनमें अत्याचारी के आगे झुकने की प्रवृत्ति बढ़ती गई।

महाभारतकाल के बाद के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो इस दुष्प्रवृत्ति का उत्तरोत्तर विस्तार होता गया। मुगल-शासन, यवनशासन और मुसलमानी शासन में भी ऐसा ही हुआ। यद्यपि महाराणा हम्मीर, महाराणा प्रताप तथा शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह आदि स्वदेशाभिमानी रणबांकुरों ने अत्याचारियों का हर प्रकार से डटकर सामना किया। तथापि उन्हें अन्य शासकों का उचित सहयोग नहीं मिला। फिर अंग्रेजी शासन-काल में, अंग्रेजों की कुटिल एवं छद्म नीतियों के कारण भारतीय मानस उनके चक्कर में आ गया।

गया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई। उत्तर और दक्षिण में फूट डाली। द्रविड़ों को आर्यों से अलग बताया। आर्यों को विदेशी करार दिया। मराठों और सिखों को हिन्दुओं से पृथक् बताया। भारत के इतिहास को विकृत किया। भारतीय इतिहास को, संस्कृति को और सभ्यता को पिछले युग का बताया। भारतीय सभ्यता को अभावग्रस्त सभ्यता बताया। उन्होंने वेदों को बचकाना, आरम्भिक और गडरियों के गीत बताकर उनकी निन्दा की। इसके विपरीत मैकाले की शिक्षानीति के माध्यम से यूरोपीय संस्कृति, सभ्यता और भाषा को श्रेष्ठ बताया। इसी काल में इनके पिट्ठू और वेतनभोगी इतिहास-लेखकों ने सर्वथा ही सत्य के विपरीत यह सिद्ध करने का प्रयास किया, कि भारत को एकता के सूत्र में बांधने वाले अंग्रेज हैं। अंग्रेजों ने हिन्दुओं के विरोध में मुसलमानों और ईसाइयों को उकसाया। ऐसी पुस्तकें लिखवाई जिनमें महमूद गजनवी और बाबर जैसे विध्वंसकों, आततायियों और अत्याचारियों को तो सभ्यता और समानता लाने वाला बताया गया। दूसरी ओर स्वाधीनता के लिये प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध करने वालों और संघर्ष करने वालों शिवाजी, राणा प्रताप, चन्द्रशेखर आजाद जैसों को अवरोधक तथा प्रगति के मार्ग में बाधक कहकर चित्रित किया गया। यह शिक्षा-नीति आज भी चालू है, क्योंकि शिक्षानीति-निर्धारण करने वालों में प्रायः अंग्रेजी और अंग्रेजों के मानस गुलामों की, मुस्लिम मानसिकता वालों की और मार्क्स-माओ के मानस पुत्रों कम्युनिष्टों की पकड़ है। ये लोग भारतीय छात्र-वर्ग में विष घोल रहे हैं। किन्तु इसका फल इन्हें भी मिलेगा।

अंग्रेजों के भारत से बिदा होने और भारतीय स्वतन्त्रता (=खण्ड खण्ड स्वतन्त्रता) के उदयकाल में अत्याचारी, दंगाकारी, धमकाने वाले और भयकारी के सामने झुक जाने की दब्बू नीति के साथ ही एक दुष्प्रवृत्ति और बढ़ी 'सर्वप्रिय बनने की' 'हरदिल अजीजी' की, सबका नेता बनने की। इसके साथ ही एक नया पाखण्ड शुरू हुआ - 'सरकार में न रहते हुए भी अपने उचित-अनुचित पूर्वाग्रहों तथा मांगों के मनवाने के लिये धरना तथा अनशन करने की।। इसके आविष्कर्त्ता थे–श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी। खिलाफत और असहयोग आन्दोलन भी गांधीजी ने चलाये जो बाद में असफल सिद्ध हुए। गांधीजी को हिन्दू-मुस्लिम एकता का भारी व्यामोह हो गया था। इसके लिये छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बात पर वे झुक जाना पसन्द करते थे। जबकि मुसलमान नेता जानबूझकर गांधीजी को और प्रकारान्तर से हिन्दुओं को दबाते जाते थे।

इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन की घटना है। एम्बेसेडर कार में चार व्यक्ति बैठे

थे। मोहम्मद अली, मोहनदास कर्मचन्द गांधी, शौकत अली और स्वामी श्रद्धानन्द। मोहम्मद अली ने स्वयंसेवक से पीने को पानी मांगा। मुँह से गिलास लगाकर पानी पिया। थोड़ा पानी उसमें रहने दिया । उसी जूठे गिलास में और पानी डलवाकर मो. अली ने गांधी जी को दिया। स्वच्छता की मूर्त्ति कहलाने वाले गांधीजी वह पानी पी गये। तब शौकत अली ने पानी मंगाकर अपने भाई जैसा ही काम किया और उस जूठे गिलास में पानी डलवाकर स्वामी श्रद्धानन्द जी को दिया। तब श्रद्धानन्द जी ने स्वयंसेवक मेघराज (टमकोर निवासी) को आवाज देकर कहा 'बेटे! इस गिलास को मांज-धोकर फिर पानी-भर लाओ अथवा दूसरे शुद्ध पात्र में पानी लाओ'। तब शौ. अली कहते हैं–देखो! गांधी! ये तो एक बरतन से पानी भी पीने को राजी नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकता कैसे होगी। तब श्रद्धानन्दजी ने कहा 'ए मिस्टर अली! झूठे बरतन में खाने से कोई एकता नहीं होती। यदि ऐसा होता, तो एक ही बरतन में खाने वाले दो कुत्ते आपस में लड़ते नहीं। याद रखो 'जिस दिन हिन्दू बलवान् और संगठित हो जायेंगे। उसी दिन हिन्दू-मुस्लिम एकता अपने आप हो जायेगी'।

बहुत कम लोगों को पता होगा, कि गांधीजी के साथ जो 'महात्मा' शब्द लगा, उस उपाधि को देने वाले स्वामी श्रद्धानन्द (=मुंशीरामजी) थे। जब गांधी जी अफ्रीका से भारत में आकर राजनीति करने लगे, तब महात्मा मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्द) ने उन्हें गुरुकुल कांगड़ी में बुलाकर उनका सम्मान किया और उन्हें 'महात्मा' शब्द से पुकारा। किन्तु उन्हीं श्रद्धानन्दजी की २३ दि. १९२६ में अब्दुल रशीद ने गोली मारकर हत्या कर दी। तब गांधीजी ने इस हत्या के विरोध में एक भी शब्द नहीं कहा। प्रत्युत श्रद्धानन्दजी को ही शब्दान्तर से दोषी बताया। श्रद्धानन्द जी का क्या यह दोष था कि अपने मूल आर्य हिन्दू धर्म से जो जबर्दस्ती मुसलमान बनाये गये थे, उनकी प्रार्थना पर उन्हें शुद्ध करके वापिस उनके मूल धर्म में दीक्षित किया था।

देश-विभाजन के समय पंजाब में, सिन्ध में, बंगाल में, नोआखाली में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए, जिनमें अधिकतम हिन्दू ही मारे गये। पर गांधीजी सदा हिन्दुओं की ही निन्दा करते थे।

उन्होंने दिनांक ६ अप्रैल, १९४७ को अपने प्रवचन में कहा था–'हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध क्रोध नहीं करना चाहिये, चाहे मुसलमान उन्हें मिटाने का विचार ही क्यों न रखते हों। अगर मुसलमान सबको मार डालें तो हम बहादुरी से मर जायें। इस दुनियाँ में भले ही उनका ही राज हो जाय'।

फिर २३ सितम्बर, १९४७ को अपने प्रवचन में फरमाया – 'मेरे पास रावलपिंडी से जो भाई आज मिलने आये थे।...। मैंने उनको कहा 'आप यहाँ आए क्यों, वहाँ मर क्यों नहीं गये, मैं तो इसी चीज पर कायम हूँ कि हम पर जुल्म हों तो भी हम जहाँ पड़े हैं वहीं पड़े रहें, मर जाएँ'।

ऐसी दब्बू नीति के कारण ही पवित्र भारत देश का विभाजन हुआ और ऐसी झुकाऊ, तुष्टीकरण की नीति के कारण आज भारत के अनेक भागों में विघटन जैसी समस्या उत्पन्न हो गई।

इस दब्बू नीति का ही परिणाम था, कि हमारे नेता अपनी पहली घोषणाओं के विपरीत आचरण करते रहे। इसके दो उदाहरण पर्याप्त हैं – (1) श्री गान्धीजी पहले आग्रहपूर्वक कहा करते थे, कि "भारत का कोई भी विभाजन मेरी लाश पर ही होगा" किन्तु बाद में गान्धीजी ने विभाजन-योजना स्वीकार करने की संस्तुति की।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठकों में श्री चोइथराम गिदवानी और लाला जगतनारायण ने विभाजन-योजना का विरोध किया था। श्री पुरुषोत्तम दास टंडन ने तो यहाँ तक कहा था –

"अपने चिर परिचित उद्देश्य 'अखंड भारत' का बलिदान करने की अपेक्षा अच्छा हो, कि हम अंग्रेजी राज को कुछ समय के लिये और सहन कर लें। हम, आवश्यकता हो तो, अंग्रेज और मुस्लिम लीग, दोनों के विरुद्ध एक साथ संघर्ष करें, परन्तु भारत की एकता और अखंडता की रक्षा अवश्य करें"।

किन्तु गांधीजी ने जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अब्दुल कलाम आजाद आदि की बातों में आकर विभाजन स्वीकार कर लिया।

(2) स्वराज्य प्राप्ति से पहले गांधीजी कहा करते थे कि – गोरक्षा का प्रश्न तो स्वराज्य-प्राप्ति से भी बढकर है। किन्तु स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गांधीजी ने गोरक्षा-हेतु अर्थात् गोहत्या बंद करने हेतु कुछ भी नहीं किया, अपितु गोहत्या-निरोध को असंभव और व्यर्थ बताया। प्रार्थना-सभा में प्रवचन करते हुए गांधीजी ने कहा था –

"आज राजेन्द्र बाबू ने मुझे सूचना दी है, कि उनके पास ५० हजार पोस्ट कार्ड और पच्चीस-तीस हजार के लगभग तार आये हैं, कि गोहत्या को कानूनन बन्द कर दिया जाय। इस विषय में मैंने पहले भी एक बार कुछ कहा था। पता नहीं इतने पोस्टकार्ड और तार क्यों भेजे गये हैं? इनका कोई लाभ नहीं। भारत में गोहत्या को रोकने के लिये

कानून नहीं बनाया जा सकता'। मैं अपनी इच्छा को उस मनुष्य पर कैसे लाद सकता हूँ, जो अपनी इच्छा से गोहत्या नहीं छोड़ना चाहता? हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं का ही देश नहीं। यहाँ पर मुसलमान, ईसाई और पारसी, सब लोग रहते हैं। हिन्दुओं का यह सोचना कि हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं का ही देश है बिल्कुल गलत है।"

घुड़की लगाने वाले अत्याचारियों के सामने झुक जाना और अपनी उचित बात पर दृढ़ न रहना, यह उस दब्बू नीति का ही परिणाम था।

जैसे अर्जुन आदि भाई अपने बड़े भाई युधिष्ठिर की हर उचित-अनुचित बात को मानते चले जाते थे। वैसी ही खतरनाक प्रवृत्ति पीछे भी रही। गान्धीजी ने १३ जनवरी, १९४८ को एक अनशन (उपवास) आरंभ किया। उन्होंने धमकी दी कि यदि उनकी सात मांगें पूरी न की गईं तो वे आमरण उपवास रखेंगे।

गांधीजी की सात मांगें :-

१. "हिन्दू मुसलमानों पर आक्रमण बंद कर दें।

२. वे ऐसा वातावरण बनायें कि एक भी मुसलमान असुरक्षा की भावना के कारण भारत न छोड़े ।

३. जो मुसलमान पहले ही भारत से पाकिस्तान चले गये हैं, उनको वापिस बुलाना चाहिये और अपने घरों में पुनः स्थापित करना चाहिये।

४. वे हिन्दू विस्थापित, जो पाकिस्तान से भारत आ गये हैं, उन्हें तुरन्त उन घरों को खाली करने को और असली मुसलमान मालिकों को सौंपने को कहना चाहिये।

५. जो मस्जिदें निष्क्रमित मुसलमानों द्वारा छोड़ दी गई हैं और अब जिनमें विस्थापित हिन्दू लोग बस गये हैं, तुरन्त खाली हो जानी चाहियें और सरकारी व्यय पर मरम्मत कराके, उन्हें मुसलमानों को सौंपा जाना चाहिये।

६. विभाजन-परवर्त्ती दंगों में मुसलमानों को हुई हानि का मुआवजा उन्हें मिलना चाहिये।

७. पाकिस्तान को रोकड़ बाकी का ५५ करोड़ रुपया देना चाहिये।"

गांधीजी की धमकी पर नेहरू सरकार के आदेश पर हिन्दुस्तान की पुलिस ने, उन असहाय हजारों हिन्दू-सिख शरणार्थियों को जो अपने घरों, सम्पत्तियों, माल-असबाबों और अनेक बच्चों और महिलाओं तक को पाकिस्तान में गंवा कर आये थे और

दिल्ली आकर, पाकिस्तान चले गये मुसलमानों की खाली पड़ी मस्जिदों में अस्थायी शरण ले ली थी, उनको जबर्दस्ती घसीट-घसीट कर मस्जिदों से बाहर निकाला जिनमें बूढ़े, बच्चे और महिलाएँ भी थीं। इन पहले से ही सताये हुए लोगों को खुले आकाश के नीचे, सनसनाती बर्फीली हवाओं में. गांधीजी की मांग पूरी करने के लिये सड़कों पर फेंक दिया गया।

गांधीजी की सातवीं मांग पर उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री सरदार पटेल ने गांधीजी को समझाया कि यदि पाकिस्तान को ५५ करोड़ रु. की राशि दी जायेगी, तो वह उसे कश्मीर में युद्ध ज़ारी रखने में सहायता करेगी और इस प्रकार वह भारतीय धन का दुरुपयोग भारतीय सैनिकों और कश्मीर के नागरिकों को मारने में करेगा। परन्तु गांधीजी ने, जो बुरी तरह मौलाना आजाद और अन्य मुसलमानों के प्रभाव में थे, गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल की बात नहीं मानी। परिणामस्वरूप मन्त्रिमण्डल की एक बैठक, सचिवालय में नहीं, अपितु उपवास करते हुए गांधीजी के बिस्तर के समीप हुई, जिसमें पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये की विशाल राशि देने का निर्णय हुआ। जे.बी. कृपलानी, (तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष) ने इस घटना का इन शब्दों में उल्लेख किया –

'उपवास की अवधि में मन्त्रिमण्डल की बैठक उनके बिछौने के समीप हुई और उसने निर्णय किया कि भारतीय रोकड़ बाकी के हिस्से के रूप में वचनानुसार ५५ करोड़ रुपये की राशि पाकिस्तान के हस्तगत कर दी जाए, यद्यपि पाकिस्तान इससे काफी अधिक रुपये का बांद में देनदार था। (गांधी, उनका जीवन और विचार, पृ. ३०१)

यह एक उदाहरण है। तथाकथित एक बड़े आदमी के 'अहम्' की तुष्टि के लिये; विपदाओं से जूझ रहे भारत के ५५ करोड़ रुपये की बड़ी राशि (जो आज ई.सन् २००७ में कम से कम 40 अरब रुपये के बराबर है) भारत के मन्त्रिमण्डल के प्रमादी (=बुद्धिमन्दता के शिकार) सदस्यों ने पाकिस्तान को दे दी !!

मूर्खतापूर्ण द्यूत की लत जो युधिष्ठिर को लगी थी, वह पीछे भी दुहराई जाती रही। सन् १९७२ में पूर्वी पाकिस्तान में वहाँ की जनता और पाकिस्तानी जुण्टा के बीच गृहयुद्ध छिड़ा, जिसकी लपटें भारत को भी जलाने लगीं, तब भारत की सेना ने, वहाँ दखल करके ९५ हजार पाकिस्तानी सैनिकों को बन्दी बनाया और भारत सरकार ने भारतीय जनता की गाढ़ी कमाई पर उन्हें मुर्ग मुसल्लम खिलाये। पर हमारी तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी शिमला में पाकिस्तानी प्रधानमन्त्री ज़ुल्फिकार अली भुट्टो के

हाथों बाजी हार गई। बिना कश्मीर की समस्या के समाधान के उन ९५ हजार सैनिकों को विदाई दे दी गई। कोई सच्चा भारतीय बुद्धिमान् मन्त्री होता, तो पाकिस्तानी कब्जे में गये कश्मीर को खाली करके उसे भारत के हवाले करने की शर्त्त पर पाकिस्तानी फौजियों को छोड़ता।

जैसे दुर्योधन ने विषदान और अग्निदान आदि भारी दुष्कर्म करने के बावजूद कभी रंच मात्र भी अपनी गलती नहीं स्वीकारी और महाविनाश का कारण बना। जैसे महापुत्रमोही धृतराष्ट्र ने अपना दोष अन्त तक नहीं माना और भीम आदि पाण्डवों को दोष देता रहा और गान्धारी ने भी पुत्रमोह के कारण अपनी त्रुटि न मानकर श्रीकृष्ण के मत्थे पुत्रों के विनाश का जिम्मा लगाया। वही स्थिति गत वर्त्तमान के नेताओं की रही। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे –

(1) भारतीय स्वतन्त्रता के समय के साथ ही चीन की नियत तिब्बत को हड़पने की थी, जिससे वह तिब्बत के बाद अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को भारत के भू-भाग पर भी फैला सके। सन् १९५० की तारीख २५ अक्टूबर को चीन ने तिब्बत पर आक्रमण करने की घोषणा कर दी। उस समय के.एम. पणिक्कर बीजिंग (चीन) में भारत के राजदूत थे, इधर कृष्णा मैनन भारत के रक्षा मन्त्री थे। ये दोनों कट्टर साम्यवादी थे। इन दोनों के बहकावे में रहते हुए जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में चीन के पक्ष को दुर्बल होने से बचाने के लिये, तिब्बत में भारतीय हितों की सुरक्षा की बलि चढ़ा देने की मूर्खता कर दी। नहीं तो चीनी आक्रमण से एक वर्ष पूर्व ही सितम्बर १९४९ में नेहरू ने स्वयं लिखा था – 'चीन के साम्यवादी तिब्बत पर आक्रमण करने वाले हैं'।

चीनियों ने तिब्बत पर आक्रमण करने के अपने निश्चय को कभी छिपाया नहीं था। फिर भी नेहरू ने चीन के नाम को, संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् की सदस्यता के लिये प्रस्तावित करने में प्रमुख रूप से रुचि ली और तिब्बत में भारतीय हितों की सुरक्षा की चिन्ता नहीं की। भोले भण्डारी नेहरू 'हिन्दी चीनी भाई भाई' के राग अलापते रहे और पञ्चशील की रट लगाते रहे। उधर चीन अपना पंजा फैलाता रहा। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने तब नेहरू को लिखा था – 'यद्यपि हम चीनियों को मित्र मानते हैं, किन्तु चीनी हमें मित्र नहीं मानते' 'स्वतन्त्र तिब्बत हमारा मित्र है और भारत की सुरक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण है। उसे सुरक्षित रखने के लिये सभी पग, यहाँ तक कि सेना का पग भी उठाये जाने के लिये विचार करना चाहिये'।

किन्तु नेहरू ने पटेल के पत्र की उपेक्षा कर दी। उसका परिणाम स्पष्ट है। लोगों को याद होगा, जब चीन ने भारत पर सन् १९६२ में आक्रमण किया और हजारों वर्गमील भू-भाग दबा लिया। तब बाद में संसद में बयान देते समय नेहरू ने यह कहते हुए सदस्यों को आश्वस्त करने का प्रयास किया था, 'कि कोई बात नहीं, चीन ने हमारा जो भू-भाग दबाया है, वह बर्फीला तथा बंजर है, वहाँ कुछ उगता ही नहीं है'' कितना बचकाना था, यह बयान! तभी कांग्रेसी सांसद श्री महावीर त्यागी ने तपाक से नेहरू जी को कहा था – 'आपके सिर पर भी कुछ नहीं उगता है तो, इसे भी बेकार समझें क्या' ?

यदि वास्तव में पटेल जैसे सच्चे मनीषियों की मानकर उस समय चीन को तिब्बत पर आक्रमण करने से रोकने के लिये भारतीय सेना का प्रयोग किया जाता, तो साम्राज्यवादी चीन को भारत से दूर रखने के लिये दोनों के मध्य में स्वतन्त्र 'तिब्बत' राष्ट्र का अस्तित्व अत्यावश्यक रूप से लाभप्रद होता। उस समय इस चीनी-प्रतिरोध में हमारी सेना अवश्य सफल भी होती। क्योंकि उस समय चीन स्वयं कोरिया में बुरी तरह उलझा हुआ था। वह अपनी शक्ति को संगठित करने में अभी पूरा सफल नहीं हो सका था। किंच उसके पास अभी अणु बम भी नहीं था। अणु-शक्ति तो चीन के पास सन् ६० के बाद आई है। एक विशेष बात यह थी कि विश्व-जनमत भी उस समय तिब्बत के पक्ष में और चीन के विरोध में था। तब The Economist ने लिखा था –

''सन् १९१२ से, चीन से पृथक् पूर्ण (स्वतन्त्र अस्तित्व) स्वतन्त्रता बनाये रखने के कारण तिब्बत का, एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता के लिये, बहुत ही शक्तिशाली दावा है। किन्तु यह भारत के लिये है, कि वह, नेतृत्व करे आगे बढ़े। यदि भारत, तिब्बत की भारत और चीन के मध्यवर्त्ती राज्य के रूप में उसकी स्वतन्त्रता (स्वतन्त्र अस्तित्व) का समर्थन करता है, तो ब्रिटेन और अमरीका निश्चय ही उसे औपचारिक कूटनीतिक मान्यता प्रदान करने में प्रसन्न होंगे''।

इतनी सब बातें अनुकूल होते हुए भी, नेहरू ने उचित कदम नहीं उठाया। चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो नेहरू ने राष्ट्र के नाम अपील की थी भर्राये हुए स्वर में– लगभग रोते हुए। अपनी करतूत से खुद तो रोये ही। भारतीय पीढ़ियों को भी इस विषय में रोने के लिये छोड़ गये। इसलिये चीन यदाकदा भारत को आँखें दिखाता है, घुड़कियाँ लगाता रहता है।

(2) अक्साई चीन (=अक्षय चिह्न) और लद्दाख का भी ऐसा ही मामला है।

नेहरू और कृष्णा मैनन पूरी तरह जानते थे, कि चीन लद्दाख और अक्साई चीन में अतिक्रमण कर चुका है। पर उन्होंने पञ्चशील के थोथे नारे को जीवित रखने के लिये भारतीय जनता से उस अतिक्रमण को अनेक वर्षों तक छिपाये रखा ।

भारतीय सेना के जनरल श्री थिमैय्या ने वर्षों पहले श्री नेहरू और कृष्णा मैनन को सूचित कर दिया था, कि चीनी लोग अक्साई चीन के उस पार सड़क बना रहे हैं और अतिक्रमण की पूरी तैयारी है। जनरल थिनैया ने सूचना-प्राप्ति के लिये दो लोगों को लगाया। पहले उसने 'सिडनी विगनल' नामक अंग्रेज पर्वतारोही को नियुक्त किया। उसे चीनियों ने बन्दी बना लिया था, किन्तु असंख्य भारी कठिनाइयों का सामना करते हुए और बर्फीले तूफानों में से गुजरते हुए वह भारत लौट आया। उससे अतिक्रमण के प्रमाण उपलब्ध हुए। थिमैय्या ने मद्रास सैपर्स (M.E.G.) के एक नवयुवक अफसर को भी चीनी आक्रमण का पता लगाने के लिये नियुक्त किया था। उसने भी चीनी अतिक्रमण की सूचना दी थी।

जब प्रमाणों के साथ, जनरल थिमैय्या ने एक विशेष सैन्य अधिकारी को, नेहरू के पास भेजा और उसने अतिक्रमण के प्रमाण प्रस्तुत किये, तो वहाँ पहले से बैठा कृष्णा मैनन, नेहरू की उपस्थिति में उस सैन्य अधिकारी पर, क्रुद्ध होकर चीख पड़ा कि यह सी.आई.ए. के प्रचार को प्रसारित कर रहा है।" बस, नेहरू जी उसके आगे दब गये।

इस प्रकार हमारे नेहरू सदृश नेताओं की भूलें छिपाई जाती रहीं। इतिहास से हमने कोई शिक्षा नहीं ली।

अब क्या करना है?

१. हम महाभारत से शिक्षा लेकर परस्पर के ईर्ष्या द्वेष का त्याग करें। परिवार, कुटुम्ब या समाज के किसी व्यक्ति की बढ़ती को देखकर; उसे हथियाने के लिये निन्द्य उपाय न अपनावें। स्वश्रम से स्ववृद्धि करें।

२. प्रान्तवाद, वर्गवाद, भाषावाद और जातिवाद के विष विकार से ऊपर उठकर अपनी पवित्र मातृभूमि - भारत देश के प्रति एक निष्ठात्मक भाव बनायें।

३. सब आर्य (हिन्दू) एक हैं। चाहे उनकी कोई जाति हो, कोई पेशा हो, सब समान हैं। हमारे में कोई अस्पृश्य नहीं है।

४. अपनी पवित्र वैदिक भारतीय संस्कृति, सभ्यता, उपासना-पद्धति, चिह्न एवं शुद्ध परम्पराओं के प्रति अनुराग रखें और उनका पालन करें।

५. जहाँ तक हो अपनी भाषा का प्रयोग करें। विदेशी भाषा सीखें, पर प्यार अपनी भाषा से हो।

६. नित्य व्यायाम, शस्त्राभ्यास, प्राणायाम और संयम के द्वारा वीरभावना वाले पुष्ट शरीर वाले बनें।

७. अधिक से अधिक वीर सन्तानों को जन्म दें और उनका निर्माण करें। जब तक समान आचार-संहिता देश में लागू नहीं होती, तब तक तो यह अत्यावश्यक है ही।

८. भाईयों में, परिवार में, कुटुम्ब में फूट न पड़ने दें।

९. देश-हित को स्वहित से ऊपर समझें।

१०. अत्याचार, आतंक, धमकियों के आगे कभी न झुकें।

११. केवल रक्षात्मक नीति न अपनावें, प्रत्युत दुष्टों पर आक्रामक नीति की पहल करें।

१२. भगवानों, युगपुरुषों, महापुरुषों के चित्रों की नहीं, चरित्रों की पूजा करें। उनके समान पराक्रमी, सज्ज्ञानी, धार्मिक बनें।

१३. अश्लील चित्रों, चित्रकारों, पत्रिकाओं, पुस्तकों, चलचित्रों और

कार्यक्रमों का बहिष्कार करें। स्वयं को और नई पीढ़ी को ब्रह्मचर्य की=वीर्यरक्षा की महत्ता को समझा कर दीर्घजीवी और बलिष्ठ बनें, बनावें।

१४. नारी-सम्मान को बढ़ावा दें।

१५. आपके सामने अत्याचार हो रहा हो, तो केवल मूकदर्शक न बनें।

१६. अन्याय, अत्याचार, आतंक, अधर्म का हर स्तर पर यथायोग्य रीति से विरोध करें।

१७. नई पीढ़ी में स्वदेशप्रेम कूट-कूट कर भरें। अपने देश के सच्चे इतिहास से, उसकी विजय गाथाओं से और वीर महापुरुषों के उदात्त जीवन-चरित से नई पीढ़ी को परिचित करावें।

१८. कोई कितना ही बड़ा अथवा प्रिय हो, उसकी भी उचित बात ही मानें, अनुचित बात नहीं।

१९. अभक्ष्य भोजन और पेय आदि से दूर रहें। मांस, मछली, अंडा आदि का और शराब, गांजा, भांग आदि नशीले पदार्थों का कभी सेवन न करें।

२०. गोरक्षार्थ पूरा प्रयत्न करें। यथासम्भव गोदुग्ध, गोघृत आदि का ही सेवन करने का नियम लेकर गोपालन को बढ़ावा दें।

२१. 'अनेकता में एकता' और 'विविधता में समानता' जैसे नारों को खान-पान, वेश-भूषा आदि विषयों तक सीमित रखकर; पूर्ण भावात्मक एकता को स्थापित करने का प्रयास करें। हमारा एक इष्टदेव परब्रह्म परमेश्वर। एक उपासनापद्धति ध्यान (=सन्ध्या)। एक धर्मपुस्तक वेद। एक भाषा संस्कृत। एक संस्कृति पञ्च महायज्ञ और षोडश संस्कार। एक लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को साधते हुए परोपकार। आदि को अपनाकर संगठित होवें।

लेखक की अन्य रचनाएँ

1. **दयानन्द–वेदभाष्य–भावार्थप्रकाश (पूर्वखण्ड)** – इसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत वेदभाष्य के समस्त संस्कृत भावार्थों का सत्यार्थप्रकाश के समुल्लासों के विषयों के अनुसार वर्गीकरण है। ऊपर के कॉलम में मन्त्र दिये हैं। बीच के कॉलम में मन्त्र–क्रम से संस्कृत भावार्थ और नीचे के कॉलम में क्रम से हिन्दी अनुवाद है। क्राउन साइज, पक्की जिल्द, पृष्ठ सं॰ 1072 मूल्य 350 रुपये मात्र।

2. **दयानन्द–वेदभाष्य–भावार्थप्रकाश (उत्तरखण्ड)** – पृष्ठ संख्या 808 मूल्य 300 रुपये।

3. **बुद्धिनिधिः** – बुद्धि में अपेक्षित सात गुणों की विस्तृत विवेचना। बुद्धि–विकास के लिये बारह उपायों का विवरण। मेधायाग। डिमाई साइज। मूल्य 80 रुपये।

4. **दयानन्द–दृष्टान्तनिधिः**– स्वामी जी द्वारा स्वग्रन्थों में प्रदत्त दृष्टान्तों का संकलन तथा अकल्पितमहादृष्टान्त–स्वरूप स्वामी–जीवनचरित। मूल्य 50 रुपये।

5. **पाणिनीयशब्दानुशासनम्** – पणिनि मुनि की पंचपाठी (अष्टाध्यायी, उणादिकोष, लिंगानुशासन, धातुपाठ, गणपाठ का एकत्र मुद्रापण। पृष्ठ 344 मूल्य 100 रुपये।

6. **नामनिधिः**– लगभग सोलह हजार से अधिक सुन्दर सार्थक नामों का वर्णक्रम से संग्रह। नामकरण–संस्कारविधि। अन्त में कठिन नामों के अर्थ। पृष्ठ 330 मूल्य 80 रुपये।

7. **वेदसाहाय्य–निधिः**– जीवनोपयोगी 32 विषयों पर चुने हुए मन्त्र, उनके अर्थ एवं विवरण। अत्युपयोगी। पृष्ठ 352 मूल्य 100 रुपये।

8. **दयानन्द–प्रश्नोत्तर–संवाद–निधिः**– दयानन्द–वाङ्मय में से प्रश्नोत्तरों और संवादों का अनूठा संकलन। पृष्ठ 314। मूल्य 95 रुपये।

9. **अष्टाध्यायी–प्रयोगदीपिका–वृत्तिः**– पाणिनीय अष्टाध्यायी के चार हजार सूत्रों के वेदादिग्रन्थों से संगृहीत उदाहरण–उद्धरण। अद्भुत ग्रन्थ। गुरुकुलों, सं॰ महाविद्यालयों और विद्वानों द्वारा अवश्यमेव संग्राह्य। डेमी वनफोर साइज। डबल कॉलम। 700 पृष्ठ। मूल्य 500 रुपये।

10. **भक्ति सत्संग कीर्त्तन** – सन्ध्या, हवन, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि के सभी मन्त्र तथा उनके शब्दार्थ। चुने हुए भजन। ओम्–संकीर्त्तन। पृष्ठ 104। मूल्य 32 रुपये।

11. **अन्त्येष्टि–संस्कार–शंका समाधान–सहित।** पृष्ठ 48। मूल्य 6 रुपये।

12. **क्या महाभारत युद्ध रोका नहीं जा सकता था ?** – (प्रेस में)।

13. **कामनानिधिः** – (तीन कामनाओं की पूर्ति कीजिये) अप्रकाशित।

भीष्म पितामह
द्रोणाचार्य
शल्य
युधिष्ठिर
धृतराष्ट्र
गान्धारी
अर्जुन